दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा निदेशालय

Directorate of Distance & Online Education

जम्मू विश्वविद्यालय

University of Jammu

जम्मू

Jammu

पाठ्य सामग्री

STUDY MATERIAL

एम॰ ए॰ हिन्दी

M.A. (HINDI)
SESSION 2023 ONWARDS

पाठ्यक्रम संख्या **Hin-304**
Course Code - Hin-304

भारतीय साहित्य

सत्र–तृतीय
SEMESTER - III
आलेख संख्या : **1-14**
Lesson No. : 1-14

Prof. Anju Sharma
Course Co-ordinator

इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/प्रकाशनाधिकार दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180006 के पास सुरक्षित है।

All copyright privileges of the Material vest with the
Directorate of Distance & Online Education University of Jammu, Jammu - 180 006

एम॰ए॰ हिन्दी **M.A. (HINDI)** पाठ्यक्रम संख्या **Hin-304**

M.A. HINDI

COURSE CONTRIBUTORS

-	**Prof. Neelam Saraf** Department of Hindi University of Jammu, Jammu	**Lesson 1 to 3**
-	**Dr. Sunita Sharma** Sr. Assistant Professor Guru Nanak Dev University, Amritsar	**Lesson 4 to 6**
-	**Dr. Bandana Thakur** Assistant Professor Department of Hindi University of Jammu, Jammu	**Lesson 7 to 10**
-	**Dr. Pooja Sharma** Lecturer in Hindi DD&OE	**Lesson 11 to 14**

Content Editing / Proof Reading :

- **Prof. Anju Sharma**
  DD&OE

© Directorate of Distance & Online Education, University of Jammu, Jammu, 2023

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DD&OE, University of Jammu.
- The script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DD&OE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

Printed at : Classic Printers / 2023 / 500

Syllabus of Master Degree Programme in Hindi Under Non CBCS

Semester 3rd

Course Code HIN-304	**Title : Bhartiya Sahitya**
Credits : 5	**Maximum Marks : 100**
Duration of Examination : 3 Hrs.	**(a) Internal = 20**
	(b) External = 80

Syllabus for the Examination to be held in 2022, 2023 & 2024

इकाई–एक

उपन्यास

महाश्वेता देवी : जंगल के दावेदार
आर. के. नारायण : गाइड

नाटक

गिरीश कर्नाड : ययाति

कहानी

रवीन्द्रनाथ टैगोर : रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियाँ (पोस्टमास्टर, काबुलीवाला, दहेज, कंकाल; कुल चार कहानियाँ)

इकाई–दो

महाश्वेता देवी साहित्यिक परिचय।

'जंगल के दावेदार' उपन्यास में सामाजिक चेतना।

'जंगल के दावेदार' के प्रमुख चरित्र।

भारतीयता की अवधारणा और गाइड।

'गाइड' उपन्यास की सोद्देश्यता।

'गाइड' के प्रमुख चरित्र।

इकाई–तीन

गिरीश कर्नाड का साहित्यिक परिचय।

गिरीश कर्नाड की नाट्यकला।

'ययाति' में मिथकीय चेतना।

'ययाति' के प्रमुख चरित्र।

इकाई–चार

रवीन्द्र नाथ टैगोर का साहित्यिक परिचय।

रवीन्द्र नाथ टैगोर की कहानियों की विकास–यात्रा।

निर्धारित कहानियों में बंगाल की पृष्ठभूमि।

निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र।

प्रश्न पत्र का प्रारूप

कोर्स कोड HIN-304 के प्रश्नपत्र का प्रारूप इस प्रकार होगा

मुख्य परीक्षा (External Exam) अंक = 80 समय = तीन घण्टा

(क)	इकाई एक में निर्धारित प्रत्येक पुस्तक में से एक–एक सप्रसंग व्याख्या पूछी जायेगी। विद्यार्थी को कोई तीन सप्रसंग व्याख्याएँ करनी होंगी।	6×3=18
(ख)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ तीन दीर्घ उत्तरापेक्षी प्रश्न	10×3=30
(ग)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ तीन लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न	6×3=18
(घ)	शत–प्रतिशत विकल्प के साथ तीन अति लघु उत्तरापेक्षी प्रश्न	3×3=9
(ङ)	पाँच वस्तुनिष्ठ विकल्परहित प्रश्न पूछे जायेंगे	1×5=5

विषय सूची

आलेख संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	महाश्वेता देवी का साहित्यिक परिचय	4
2.	'जंगल के दावेदार' उपन्यास में सामाजिक चेतना	16
3.	'जंगल के दावेदार' के प्रमुख चरित्र	33
4.	भारतीयता की अवधारणा और 'गाइड'	48
5.	'गाइड' उपन्यास की सोद्देश्यता	60
6.	'गाइड' के प्रमुख चरित्र	68
7.	गिरीश कर्नाड का साहित्यिक परिचय	92
8.	गिरीश कर्नाड की नाट्यकला	100
9.	ययाति में मिथकीय चेतना	109
10.	ययाति के प्रमुख चरित्र	118
11.	रवीन्द्रनाथ टैगोर का साहित्यिक परिचय	128
12.	रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियों की विकास–यात्रा	141
13.	निर्धारित कहानियों में बंगाल की पृष्ठभूमि	148
14.	निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र	159

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**
Semester-III **Lesson No. 1**

महाश्वेता देवी का साहित्यिक परिचय

1.0 रूपरेखा

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 महाश्वेता देवी का व्यक्तित्व

1.4 महाश्वेता देवी का कृतित्व

1.5 सारांश

1.6 कठिन शब्द

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप–

– लेखिका के जीवन के विविध पहलुओं से परिचित हो सकेंगे।

– लेखिका के जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वों को जान सकेंगे।

– लेखिका के रचना कौशल का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

किसी भी रचना को पूर्ण रूप से समझने के लिए सर्वप्रथम उस रचना के सृजनकर्ता के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को जानना व समझना आवश्यक होता है क्योंकि सृजनकर्ता का व्यक्तित्व उसकी कृति में झलकता है। वह अपने जीवन की घटनाओं व परिस्थितियों से प्रभावित होकर ही रचना की सृष्टि करता है। इसी उद्देश्य से महाश्वेता देवी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की परख भी उनके द्वारा रचित उपन्यास 'जंगल के दावेदार' को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

महाश्वेता देवी से पहले बांगला उपन्यास साहित्य में वस्तुवादी दृष्टि प्रखर रूप से नहीं मिलती। उपन्यासकर प्रायः उच्च मध्यवर्ग व शहरी परिवारों के पात्रों से कथासूत्र का निर्माण करते दिखते थे किन्तु लेखिका ने उपेक्षित, हाशिये पर स्थित जनजातियों को केंद्र में रखकर साहित्य रचना कर, नवीन स्वर का सूत्रपात किया। इन्होंने परम्परा से विपरीत अपने लिए नए मार्ग की स्थापना किस प्रकार की, उसका बोध इनके जीवन अनुभवों से मिल जाता है। इनके पिता स्वयं लेखक थे जिन्होंने अपनी लेखनी में निम्न तबके के पात्रों को स्थान दिया। इनके अतिरिक्त लेखिका के मामा, मौसी, चाचा भी कलाओं में सक्रिय तथा नाना जी आंदोलनकारियों के मुकदमें लड़ते थे। शांति निकेतन में शिक्षा ग्रहण करते हुए भी इन्होंने स्वाधीन इच्छा दायित्व बोध एवं सौंदर्य बोध की शिक्षा प्राप्त की। आरम्भ में यह रोमांस और प्रेम से परिपूर्ण आख्यान ही लिखती थीं किन्तु 1969 के बाद, आसपास के साम्यवादी रुझान तथा आदिवासी जीवन का प्रत्यक्ष दर्शन करने के उपरान्त इनकी लेखनी का लक्ष्य परिवर्तित हो गया।

1.3 महाश्वेता देवी का व्यक्तित्व

अविभाजित बांगलादेश के 'ढाका' जिले के 'नये भरेंगा' गाँव में एक मध्यमवर्गीय परिवार में महाश्वेता देवी का जन्म सोमवार 14 जनवरी 1926 ई. को हुआ। यह मनीष घटक एवं धरित्री देवी की प्रधान संतान थीं। उस समय इनके पिता मनीष घटक 25 वर्ष के और धरित्री देवी 18 वर्ष की थीं। महाश्वेता के पश्चात् उन्होंने आठ और सन्तानों को जन्म दिया। जिनके नाम हैं– शाश्वती, अनीश, आलोकितेश्वर, अपाला, शमीश, मैत्रेय, सोमा और सारी। बहु सन्तानों में पालित होने के उपरान्त भी लेखिका को माता–पिता, दादा–दादी, नाना–नानी का प्रेम मिला। बड़ी लड़की होने के कारण इन्होंने अपने छोटे–भाई बहनों की देखभाल में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है किन्तु माता–पिता द्वारा एक के बाद एक संतान को जन्म देने के कारण इनके मन में गुप्त रूप से वेदना का संचार भी हो रहा था।

बीसवीं सदी के आरम्भिक काल में गाँव में रहने वाले शिक्षित बंगाली समाज के परिवेश में अपनी आमदनी को सुस्थिर किए बिना ही बच्चों की शादी कर देना, संयुक्त परिवार में रहना तथा विवाह पश्चात्

लगातार मातृत्व के बोझ को ढोते रहना आम बात थी। लेखिका के माता–पिता मध्यवर्गीय सभ्य–शिक्षित समाज में रहने के उपरान्त भी उपरोक्त बंगाली समाज के परिवेश से बाहर नहीं थे। इनके पिता एक कवि और उपन्यासकार थे और माता भी लेखिका के साथ–साथ एक सामाजिक कार्यकर्ता थी। पिता का व्यक्तित्व खुशमिजाज और फक्कड़पन का मिला–जुला रूप था। वह अपने परिवार के सदस्यों को स्वरचित नाटकों में अभिनय कराते, बहनों को गाने एवं चित्र बनाने हेतु प्रोत्साहित करते। माँ के साथ तो उनका बहुत ही मित्रतापूर्ण संबंध था। लेखिका के पिता ने बच्चों का पालन–पोषण तो पूर्ण स्नेह से किया किन्तु शिक्षा के महत्व में उनकी उदासीनता साफ दिखाई देती है। अपनी आत्मजीवनी में लेखिका ने इस सत्य को स्वीकारा है– ''तुतुल (पिता मनीश) कौन क्या पढ़ता है या पढ़ेगा या वह पढ़ता भी है या नहीं– ये सब चिन्ता करने का दायित्व अपने पूरे जीवनकाल में कभी स्वीकार नहीं किया। यदि करते तो हमारा जीवन इस तरह ऊबड़–खाबड़ नहीं होता।'' इसके अतिरिक्त मनीष घटक शराब के भी बहुत आदी थे किन्तु इनके व्यक्तित्व के सारे अवगुणों को इनकी साहित्य लेखन की प्रतिभा ने छिपा लिया। वह बांगला साहित्य के इतिहास में पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने निम्न स्तर पर जीवन यापन करने वाले चोर, पाकेटमार, बस्ती में रहने वाले लोगों के जीवन को पूरी दक्षता एवं समग्रता से चित्रित किया। लेखिका के पितृवंश व मातृवंश दोनों तरफ के पुरखों में कोई भी आर्थिक रूप से सम्पन्न नहीं था। किन्तु बौद्धिकता और मानवीयता उनकी उपलब्धि रही है। इनके दादा सुरेश चन्द्र घटक चाहे गरीब पर विद्वान ब्राह्मण के पुत्र थे। शिक्षा के बल पर बंगाल सिविल सर्विस में एस.डी.ओ. हुए तथा एफ.ए. पास करने के बाद 18 वर्ष की आयु में विवाह हो गया किन्तु नये भरेंगा का घर उन्होंने अपनी नौकरी के पैसों से बनवाया। घर में अलग से पूजाघर था जहाँ देवी–देवताओं की पूजा की जाती थी। वहीं नाना नरेन्द्रनारायण चौधरी पेशे से वकील थे किन्तु स्वदेशी आंदोलनकारियों के विशेष समर्थक रहे इसलिए अमीरों के मुकदमे न लेकर स्वदेशी आंदोलनकारियों के मुकदमें ही लड़ते थे। नाना–नानी की प्रेरणा एवं निजी जातीयता बोध के चलते लेखिका स्वदेश प्रेमी कवि गोविन्ददास की सहायता करती तथा 'जयश्री' नामक स्वदेशी समाचार पत्र, दीपांलि संघ, नारी शिक्षा संघ जैसे स्वदेशी प्रतिष्ठानों के साथ भी उनका प्रत्यक्ष और घनिष्ठ संबंध था।

शिक्षा :–

इनकी स्कूली शिक्षा ढाका जिले के 'इड़ेन मांटेसरी स्कूल' से हुई। 1936 में इन्हें पाँचवी कक्षा में रविन्द्रनाथ के शांतिनिकेतन स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया। लेखिका को शांतिनिकेतन के असीम प्राकृतिक सौन्दर्य के मध्य स्वाधीनता और मुक्ति के उल्लास के साथ विकसित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसने इनके जीवन एवं व्यक्तित्व पर गहरा प्रभाव डाला। शांतिनिकेतन के संदर्भ में बताते हुए ये कहती हैं कि स्वाधीन इच्छा और स्वभाव प्रणवता में अभिव्यक्ति की आज़ादी, सख्त एवं दायित्वपूर्ण मनुष्य होने की शिक्षा तथा व्यक्ति के भीतर निहित सौन्दर्य बोध को जागृत करना यहाँ की मूल विशेषताएँ थीं। यहाँ इन्होंने क्षितीशचन्द्र राय,

हजारीप्रसाद द्विवेदी, सुधीर गुप्ता, कृष्णा कृपलानी, सुधीर राय के सान्निध्य में शिक्षा ग्रहण की। सन् 1938 के अन्त में माँ की बीमारी और परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ने के कारण इन्हें शांतिनिकेतन से वापिस बुलाकर 1939 में कलकत्ता में 'वेलतल्ला बालिका विद्यालय में भर्ती करवाया। इसी स्कूल से इन्होंने 1942 में मैट्रिक पास की। इसके बाद 1944 में 'आशुतोष कालेज' से इन्टरमीडिएट, 1945–46 में शांतिनिकेतन से अंग्रेजी भाषा में बी.ए. और फिर कोलकत्ता विश्वविद्यालय से सन् 1946 में अंग्रेजी साहित्य में मास्टर की उपाधि हेतु दाखिला लिया किन्तु हिन्दु–मुस्लिम दंगों एवं लूट–पाट के चलते विश्वविद्यालय बंद हो गया जिस कारण लेखिका की शिक्षा में बाधा उपस्थित हो गई। शिक्षा के प्रति इनकी रूचि ने इन्हें हार नहीं मानने दी। विवाह हो जाने के पश्चात् पारिवारिक दायित्व के चलते चाहे इनकी शिक्षा में कुछ वर्षों का अन्तराल आ गया लेकिन फिर भी इन्होंने 1963 में कोलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राईवेट परीक्षार्थी के रूप में एम.ए. अंग्रेजी की उपाधि प्राप्त की।

वैवाहिक जीवन :–

10 फरवरी 1947 में बांगलादेश के विख्यात जननाट्य (गणनाट्य) आंदोलन के प्रसिद्ध नाट्यकार विजन भट्टाचार्य (बिजोन) से महाश्वेता देवी की शादी हो गई। डेढ़ साल के भीतर ही इन्होंने 23 जून 1948 में बेटे नवारुण भट्टाचार्य को जन्म दिया। 1948 के ही मार्च महीने में भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के अवैध घोषित होने के कारण सांस्कृतिक मोर्चे पर क्या करें क्या न करें, स्थिति से सारा माहौल हतभ्रमित था। इसी वर्ष गांधी की हत्या से भी यह दम्पत्ति व्यथित होता है। यहाँ तक कि गांधी के शोक में निकाली गई मौन पदयात्रा में भी विजन–महाश्वेता भाग लेते हैं। नये सांसारिक जीवन को उत्कंठा ने ग्रस लिया था। सम्पूर्ण देश के लोगों की भाँति इस दम्पत्ति की मनःस्थिति खराब थी। विवाह पश्चात् लेखिका को आर्थिक विपन्नता का सामना भी करना पड़ा जो इनके दाम्पत्य जीवन को प्रभावित कर रहा था किन्तु इस आर्थिक विपन्नता के मध्य भी आनंदमय जीवन यापन और स्वप्निल आशावाद के परिपोषण से जीवन प्राणवन्त हो जाता, जो इनके जीवन की उपलब्धि मानी जा सकती है। सन् 1962 में इनका विवाह–विच्छेद हो गया जिसका महाश्वेता देवी ने कोई स्पष्ट कारण नहीं बतलाया है किन्तु 27 जुलाई, 1997 में पश्चिम बंगाल के विख्यात दैनिक 'आनंद बाजार पत्रिका' में एक अज्ञात प्रतिवेदन में लेखिका के विवाह–विच्छेद के संदर्भ में लिखा गया कि ''विशाल परिवार, रुग्ण सास–ससुर, पाँच भाई– तीन बहनों का यह संसार, बारह फुट के तीन कमरों में रहता था। इसी के बीच खाना–पकाना, कपड़े धोना, बच्चे की देखभाल करना तथा इसी के साथ अतिव्यस्त महाश्वेता को यहाँ–वहाँ नौकरी खोजना।... पहली बार जब पति का घर त्यागकर महाश्वेता आई, तो लड़के के लिए मन बहुत रोया था। विजन भट्टाचार्य के ऊपर किसी तरह का कोई क्षोभ नहीं था। ...महाश्वेता के लिए वे संकट से विदीर्ण दिन थे। उस सुप्रतिष्ठित परिवार की उस सुकन्दा को जीवन असहनीय लगा था क्या?''

इनका दूसरा विवाह असित गुप्त से हुआ था। कहा जाता है कि 1953–54 में 'झाँसी की रानी' के लिए इतिहास अध्ययन के दौरान इनका असित गुप्त के साथ घनिष्ठ संबंध रहा था किन्तु यह विवाह भी सफल नहीं रहा और 1976 में असित से भी उनका विवाह–विच्छेद हो गया।

कार्यस्थलीय जीवन :–

महाश्वेता देवी का कार्यस्थलीय जीवन भी अत्यन्त संघर्षपूर्ण रहा था क्योंकि आर्थिक रूप से सबल होने के लिए इन्होंने समय अनुरूप अनेक नौकरियाँ परिवर्तित की। 1948 में इन्होंने दक्षिण कलकत्ता के भवानीपुर में स्थित 'पद्मपुकूर इंस्टिट्यूशन' के प्रातः विभाग में शिक्षिका की नौकरी अर्जित की। इस समय यह श्यामबाज़ार के मोहनलाल स्ट्रीट में किराए के मकान में रह रही थीं। परिवार की सुनिश्चित आय न होने के कारण यह स्कूल मास्टरी में कम वेतन होने के बावजूद किसी सम्मानजनक सुनिश्चित आय की तलाश में लगी थीं। 1949 में यह केन्द्रीय सरकार के डेपुटी एकाउंटेंट जनरल, पोस्ट एवं टेलीग्राफ विभाग में अपर डिवीजन क्लर्क के पद पर नियुक्त हुईं। अपने पारिवारिक वातावरण में इन्होंने कम्युनिस्टों पर प्रशासनिक अत्याचार बहुत देखे हैं और यह स्वयं भी इस दंश को झेल चुकी हैं। क्योंकि 1950 में इन्हें मात्र कम्युनिस्ट होने के संदेह पर नौकरी से बर्खास्त कर दिया गया। 1957 में इन्होंने 'रमेश मित्र बालिका विद्यालय' में शिक्षिका के रूप में कार्य कर पुनः नौकरी के क्षेत्र में पांव रखा किन्तु यहाँ भी यह मात्र एक वर्ष ही कार्य कर सकीं। 1963 में अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् 1964 में इनकी यादवपुर के 'विजयगढ़ ज्योतिषराय कॉलेज' में अंग्रेजी व्याख्याता (लेक्चरार) के पद पर नियुक्ति हुई। इस नौकरी में वेतन (सेवातृत्ति) बहुत ही कम और अस्थिर (अनिश्चित) था। 1984 में इन्होंने लेखन पर ध्यान केंद्रित करने हेतु सेवानिवृत्ति ले ली।

समाजसेविका :–

अधिकांशतः लेखक या कलाकार स्वयं को राजनीतिक विवादों से विलग ही रखते हैं। राजनीतिक समझ रखने के उपरान्त भी राजनीतिक बयानबाजी से दूर रहते हैं किन्तु महाश्वेता देवी रचनाकार से पहले एक सामाजिक कार्यकर्ता थीं जिस समय पश्चिम बंगाल में वामपंथी पार्टियों की सरकार थीं और लंबे समय तक सत्ता की बागडोर उनके हाथ रहने के उपरान्त भी लेखिका को लगा कि वे अच्छा काम नहीं कर रहे हैं तो यह विपक्ष के मंच पर जा चढ़ीं। सत्ता के विपरीत खड़े होकर इन्होंने इस सरकार को यह एहसास दिलाने का प्रयत्न किया कि लोकतंत्र में लोक सर्वेपरि होता है और सरकारें आनी–जानी।

महाश्वेता देवी अधिसूचित, जनजातियाँ, आदिवासी, दलित, वंचित समुदाय की सहायता हेतु सदैव तत्पर रही हैं। वर्गभेद की भावना तो बचपन से ही इनके मन में नहीं मिलती। 1938–44 की काल–अवधि में इनका परिवार कलकत्ता के बालीगंज भवानीपुर इलाके के अभिजात मुहल्ले में किराये पर रहता था। इसी

समयावधि में एक बार इन्होंने भ्रांतिवश अपना नाम तपशिली जाति–उपजाति (Scheduled castes, Scheduled Tribe) की छात्राओं की सूची में लिखवा दिया। जिसके लिए इन्हें परिवार से फटकार भी मिली। 1941 में बंगाल के श्रेष्ठ साहित्यकार रविन्द्रनाथ की मृत्यु ने इन्हें विचलित कर दिया। विश्वभारती के लिए कुछ करने की इच्छा से इन्होंने अपने स्कूल के विद्यार्थियों से चंदा इक्ट्ठा करके 32 रुपये विश्वभारती के आचार्य कृष्ण कृपलानी को मनिआर्डर किया। 1942 में यह 'दक्षिण कलकत्ता किशोर बाहिनी' संगठन की सदस्य बनी जिसके अधिष्ठाता सुकांत भट्टाचार्य कम्युनिस्ट पार्टी के आदर्शों पर चलने वाले किशोर कवि थे। 1942 में ही यह मैट्रिक पास करके आशुतोष कॉलेज में भर्ती हुई यहाँ इनका छात्र फेडरेशन (S.F) द्वारा परिचालित छात्र संसद के कार्यकर्ताओं में गीता राजचौधरी, अलका मजुमदार और सुजाता बसु प्रमुख थीं। 1943 में जब बंगाल में खाद्याभाव के चलते अकाल की स्थिति पनप गई तो इस स्थिति ने लेखिका को विचलित कर दिया। वह स्वयं भी घर में दाल–भात के अतिरिक्त कुछ नहीं खाती थीं। इसी समय वह 'पीपल्स रिलीफ कमेटी' संगठन की सदस्य बनी और अनेक स्वेच्छासेवी कार्य किए। इस दौरान वह अलसुबह रेडक्रास के रसोईघर से खिचड़ी खरीदकर हाजरा पार्क पहुँचाती और भूख से विलख रहे लोगों में वितरण करती, छोटे बच्चों को दूध देती आदि कार्य इनके समाजसेवी होने के ही परिचायक है। अकाल का कारण साहुकारों द्वारा समस्त खादय पदार्थों को खरीदकर गोदामों में एकत्रित करना तथा अंग्रेजों का उत्तर–पूर्व भरत के रणक्षेत्रों में भोजन हेतु बड़ी मात्रा में खाद्यसामग्री इकट्ठी करना था। इसलिए लेखिका की सहानुभूति निम्न वर्ग के प्रति थी जो इन शोषकों के कारण मरण स्थिति में पहुँच चुका था। इसी का परिणाम है कि 1944 से लेखिका के व्यवहार में एक स्वाधीन युवती के लक्षण नज़र आए। राहतकार्य से वह कम्युनिस्ट पार्टी के भारी संगठनों की सदस्य के रूप में सामने आई। धीरे–धीरे कम्युनिस्टों के साथ इनकी घनिष्ठता और बढ़ती गई।

1965 में यह पलामू घूमने गईं। यहाँ आदिवासी जीवन से इनका साक्षात्कार हुआ। भारत के विभिन्न प्रांतों में बसे आदिवासी जनजाति के लोगों के साथ आत्मीय होना इनके क्षत–विक्षत जीवन में सांत्वना का काम करता था। हमेशा दूसरों की समस्याओं के समाधान खोजने में व्यस्त दिखती थी।

1.4 महाश्वेता देवी का कृतित्व

महाश्वेता देवी वैसे तो बंगाल की थीं और उनकी मूल भाषा बांगला थी किन्तु अपनी लेखनी के कारण यह हर भाषा और समाज में एक सम्मानित हस्ती रही हैं। इन्होंने कम उम्र में ही लेखन कार्य आरम्भ कर दिया। विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए लघु कथाएँ लिखकर भी इन्होंने साहित्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। 'झाँसी की रानी' इनकी प्रथम गद्य रचना है जो 1955 में असीत गुप्त के सहयोग से विख्यात बांगला साप्ताहिक पत्रिका 'देश' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई और 1956 में इसका प्रकाशन पुस्तक रूप में हुआ। यह इनकी श्रमसाद्धय रचना थी जिसके कारण इनकी विशेष प्रशंसा हुई। इस रचना की पृष्ठभूमि की तरफ

देखा जाए तो ज्ञात होगा कि लेखिका ने इसके लिए कितना परिश्रम किया है। लेखिका के मझले मामा हितेन चौधरी बम्बई के फिल्म उद्योग से जुड़े थे। लेखिका के पति विजन भी उन्हीं के प्रयास से बम्बई गए। बम्बई में विजन की नियुक्ति 'नागिन' फिल्म के चित्रनाट्य लेखक के रूप में हुई। इसी दौरान महाश्वेता भी बेटे नवारुण को लेकर बम्बई आ गईं। यहाँ आकर इन्होंने बड़े मामा सचिन चौधरी की लाइब्रेरी से पुस्तकें पढ़ना आरम्भ किया। सिपाही विद्रोह पर अनेक पुस्तकें पढ़ते हुए उन्हें झाँसी की रानी के जीवन ने विशेष प्रभावित किया। वेतन कम होने के कारण विजन सपरिवार कलकत्ता लौट आए। यहाँ आकर लेखिका ने असित गुप्त की व्यक्तिगत लाइब्रेरी व राष्ट्रीय लाइब्रेरी से उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय इतिहास से सम्बन्धित ऐतिहासिक ग्रन्थ पढ़े। थोड़े समय में ही मराठी भाषा सीखी और 'पारासमिस' द्वारा मराठी में 'झाँसी की रानी' पर लिखी जीवनी का बंगला में अनुवाद किया। 1953 में झाँसी की रानी के भतीजे चिंतामणि तासे के साथ साक्षात्कार करके उस समय के अनेक तथ्य संग्रह किए। इसके बाद झाँसी के हर अभिज्ञता को ग्रहण करने हेतु झाँसी से ग्वालियर तक की पद यात्रा और बुंदेलखण्डी भाषा में रानी की वीरता सम्बन्धित लोकगीतों का संग्रह किया। वह कहती है, ''इसको लिखने के बाद मैं समझ पाई कि मैं एक कथाकार बनूँगी।''

1957 में इनका प्रथम उपन्यास 'नटी' हुमायूँ कबीर द्वारा सम्पादित 'चतुरंग' पत्रिका में प्रकाशित हुआ। 1965 में वह पलामू घूमने गईं। यहाँ यह आदिवासी जीवन के सम्पर्क में आईं। आदिवासी जीवन और उनकी समस्याएँ लेखिका को सोचने पर बाध्य कर रही थीं। सम्भवतः 'जंगल के दावेदार' उपन्यास लिखने का बीज भी उनके अवचेतन में यहीं रोपित हुआ होगा। इससे पहले वह बंगाल के उच्च एवं मध्यवर्ग के शौकीन साहित्य प्रेमियों के लिए आत्ममुग्ध प्रेम पूर्ण आख्यान और उपन्यास लिख रही थीं जिनके नाम हैं– 'मधुरे–मधुर' (1958), 'युमना के तीर' (1958), 'एईटुकु आशा' (1959), 'तिमिर लगन' (1959), 'तारार आधार' (1960), 'रूपरेखा' (1960), 'बाइस्कोपेर बाक्स' (1960), 'लायलि आसमाने आयना' (1961), 'तीर्थशेसर संध्या' (1963), 'अमृत संचय' (1962), 'दिनेर पाराबारे' (1963), 'विपन्न आयना' (1961), 'बासस्टपे बर्सा' (1966), 'आधार मानिक' (1966) इत्यादि। इस समय तक पश्चिम बंगाल की सामाजिक और राजनैतिक दोनों स्थितियों में थोड़ा परिवर्तन आ चुका था। राजनीति में अनेक विभाजन हो चुके थे और वर्ग संघर्ष को देखते हुए लेखिका भी अपना मार्ग खोज रही थीं उसमें 1969 में सफल हुईं। 1964 में कम्यूनिस्ट पार्टी सी.पी.आई. परिवर्तित होकर सी.पी.आई.(एम) हो गई। 1967–69 के सामाजिक–राजनैतिक संकट के परिणामस्वरूप उदित 'नक्सल' पंथ ने लेखिका को आकृष्ट किया। भ्रष्ट राजनीतिक तंत्र ने युवाओं के भीतर जो आवेग उत्पन्न किया था उसी के वशीभूत होकर उन्होंने अपनी लेखनी में नक्सलवादियों के चैतन्य एवं निरीक्षण को लाना आरम्भ कर दिया। गांव भारत के हृदयस्पंदन का केन्द्र था और इसी गांव के हतभाग्य, निर्वासित, अवमानित एवं अवहेलित समाज को उन्होंने अपनी लेखनी का विषय बनाया। आदिवासी डोमे, चंडाल आदि के बीच सहानुभूतिपूर्ण हृदय लेकर जो कहानियाँ वह इनके जीवन से संग्रहित कर पाई उसे ही लेखनी में उतार दिया। इनके जीवन को गहराई से समझने के लिए यह

पुरुलिया बाकुड़ा, मेदनीपुर, बीरभूम से लेकर सिंहभूम, हजारीबाग, रांची तक के प्रत्येक ग्राम आदिवासी से परिचित हुईं। इन आदिवासियों के मध्य रहकर उनके समान जीवन व्यतीत किया और फिर व्यक्तिगत प्रयास से उनकी समस्याओं को समाज के सामने लाने का प्रयत्न भी किया। बांगला साहित्य के श्रेष्ठ कवि व समालोचक अध्यापक शंख घोष लेखिका के विषय में कहते हैं कि ''...भद्र समाज की रीति–नीति न मानने वाली, वही एकमात्र बोल सकती हैं कि– 'वर्ण, धर्म, जाति सब कुछ छोड़कर मैं भारत के निपीड़ित, दुःखी, संग्रामी मनुष्यों के साथ हूँ।' महाश्वेता दीदी सब समय ही सोचती हैं कि लेखकीय जीवन छोड़कर भी उनका इस शहर से बाहर एक और जीवन है, जो कभी पलामौ, कभी पुरुलिया तो कभी मेदनीपुर में है। हमेशा वे लेखकीय जीवन से बाहर बेगारों के पास, खेड़ियों (आदिवासी जाति) के पास और लोधों के पास अपने को खड़ी पाती हैं। ...अनेक आदिवासी उनके घर को अपना घर मानते हैं और महाश्वेता दीदी भी मानती हैं कि उनके हाथ–पैरों के छुवन मात्र से ही उनका घर अधिकतम प्रसार पा जाता है। हमारे साहित्य समाज में यही एक विभूति हैं, जिन्हें सच्चे अर्थों में सर्वभारतीय माना जा सकता है, जनजीवन के समस्त स्तरों में जिनका संचार है।''

वह स्वयं कहती हैं कि साधारण मानव जीवन के प्रति मेरा झुकाव आरम्भ से रहा है इसलिए मेरी लेखनी में भी उन्हें स्थान मिलता रहा। वह जनसाधारण की दृष्टि से ही इतिहास को देखने का प्रयत्न करती है। उनके अनुसार– ''मैं अन्तिम वाक्य तक मनुष्यों के लिए बोलना चाहती हूँ। उन मनुष्यों की बात, जिनके सीने की हड्डी उभरी है, जो दुःखी हैं, मेहनती हैं। बंगाल के गाँव में अभी भी वे मनुष्य रहते हैं, जो खाली देह, सिर्फ लंगोटा पहने आज भी अपने कंधे पर हल उठाये खेत जोत रहे हैं, आदिकाल से हमारे सामने यही एक चित्र हैं। ...इसलिए मेरे उपन्यासों में बार–बार घूम–फिरकर नाना आकृतियों, जातियों और भाषाओं के मनुष्यों की बातें चली आती हैं।'' पहले वह उन ऐतिहासिक चरित्रों को लेकर लिखती थी जिनका साहसिक व्यक्तित्व इन्हें 'इम्प्रेस' करता था किन्तु 1968–69 के बाद इनकी लेखनी में संग्रामी मनुष्यों का समावेश हुआ। जिन मनुष्यों को दैनिक जीवन के आवश्यक साधन भी उपलब्ध नहीं होते लेखिका उनके लिए कुछ प्रयास करने में विश्वास करती हैं। इनके द्वारा लिखी गई रचनाओं की तालिका इस प्रकार है– 'कवि बन्दय्घटि गयजीकर जीवन और मृत्यु' (1966), 'मध्यरातेर गान' (1967), 'दुस्तर' (1975), 'हजार चौरासी की माँ' (1976), 'धानेर शियेर शिसिर' (1976), 'अग्निगर्भ' (1976), 'अरण्ये अधिकार (जंगल के दावेदार)' (1977), 'स्वाह' (1977), 'मोहन पुरेर रूपकथा' (1978), 'मास्टर साब' (1979), 'मूर्ति' (1979), 'सुभागा बसन्त' (1980), 'अकलांत कौरव' (1980), 'शालीगरार डाके' (1980), 'श्री श्री गणेश महिमा' (1981), 'सूरज गागराई' (1982), 'उलसाहा' (1982), 'चोटि मुडा और उसका तीर' (1982), 'पलातक' (1982), 'विवेक विदाय पाला' (1983), 'स्वेच्छा सैनिक' (1984), 'सनातनी' (1984), 'आश्रय' (1985), 'वर्णमाला' (1985), 'शृंखलित' (1985), 'बिश–एक्किश' (1986), 'तितूमीर' (1986), 'नीलछवि' (1986), 'सत्य–असत्य' (1986), 'वेसृचनेर सेना' (1987), 'टेरोडाकटिकल, पुरन सहाय और बिरसा' (1987), 'ग्रामबांगला' (1989), 'बंदोबस्ती' (1989), 'कुडानि' (1989), 'अज्ञात परिचय' (1989), 'सती' (1990),

'संवाद' (1992), '375 आई.पी.सी.' (1992), 'क्षुधा' (1992), 'मार्डरेर माँ' (1992), 'ब्याधखण्ड' (1993), 'प्रति चौवन मिनट' (1993), '6 दिसम्बरेर परे' (1993), 'हिरों एकटि ब्लु प्रिंट' (1993), 'फिरे आसा' (1994), 'मिलुर जनये' (1994), 'मृत्यु संवाद' (1994), 'सोरानो सिड़' (1995), 'म्रु' (1995), 'विनीता मित्र' (1995), 'हाइराईज' (1996), 'जटायु' (1996), 'रेजिष्टर नं. 1034' (1996), 'फलकी भंडार गल्प' (1996), 'वेदनावालार आत्मकथा' (1997), 'रात कहानी' (1997), 'संध्यार कुहासा', 'सुभाग बसन्त', 'घरेफेरा', 'हरिराम महतो', 'धर्मघट और कान्ना', 'तारार आधार', 'बायस्कोपेर बाक्स', 'आधार मानिक', 'रुयाली'।

इनमें से 'अक्लांत कौरव', 'अग्निगर्भ' (नक्सलबाड़ी आदिवासी विद्रोह की पृष्ठभूमि में लिखी गई चार लंबी कहानियाँ हैं), 'आरोपी', 'उम्रकैद', 'कृष्ण द्वादशी', 'ग्राम बांग्ला', 'धहराती घटाएँ', 'चोट्टि मुंडा और उसका तीर', 'जंगल के दावेदार', 'जकड़न', 'जली थी अग्निशिखा', 'झाँसी की रानी', 'टेरोडैक्टिल', 'दौलति', 'नटी', 'बनिया बहू', 'मर्डरर की माँ', 'मातृछवि', 'मास्टर साब', 'मीलू के लिए', 'रिपोर्टर', 'श्री श्री गणेश महिमा', 'स्त्री पर्व', 'स्वाहा' और 'हीरो– एक ब्लू प्रिंट' आदि कृतियाँ बंगला का हिन्दी रूपांतरण हैं।

लेखक की सबसे बड़ी कसौटी और सफलता यह है कि उसके द्वारा रचित कृतियाँ दुनिया की विभिन्न भाषाओं में अनुवादित हैं। महाश्वेता देवी की रचनाएँ, 'हजार–चौरासी की माँ', 'अग्निगर्भ' और 'जंगल के दावेदार' को कला कृतियों के तौर पर जाना व पढ़ा जाता है। इनके उपन्यास 'रुदाली' पर कल्पना लाज़मी ने 'रुदाली' तथा 'हजार चौरासी की माँ' पर इसी नाम से 1998 में फिल्मकार गोविन्द निहलानी ने फिल्म भी बनाई है।

साहित्य में इनके योगदान को देखते हुए इन्हें 1979 में 'जंगल के दावेदार' उपन्यास पर साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया। देश के आदिवासियों के साथ उनके बीच रहकर, उनके लिए किए गए कार्यों की स्वीकृति के तौर पर भारतीय सरकार ने इन्हें 1986 में 'पद्म श्री' की उपाधि से विभूषित किया। 1997 में फिलिपिन्स द्वीपसमूह के मनिला द्वीप से नियंत्रित 'मैगसेसे' पुरस्कार तथा इसी वर्ष नेल्सन मंडेला के हाथों ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। इस पुरस्कार से प्राप्त 5 लाख रुपये इन्होंने बंगाल के पुरुलिया आदिवासी समिति को दे दिए।

28 जुलाई 2016 को बीमारी के चलते दो महीने अस्पताल रहने के पश्चात् कोलकता में इनका निधन हो गया। 14 जनवरी 2018 में इनके 92वें जन्मदिवस पर गूगल ने इन्हें सम्मान देते हुए इनका गूगल डूडल बनाया।

1.5 सारांश

1926 में एक अभिजात मध्य वर्गीय प्रतिभा सम्पन्न परिवार में महाश्वेता देवी का जन्म हुआ। इनके परिवार में लेखक, कलाकार, फिल्म निर्देशक आदि रहे जिनसे इन्हें प्रेरणा मिलती रही। प्रारम्भिक शिक्षा शांति निकेतन में और एम.ए. अंग्रेजी कोलकता विश्वविद्यालय से की। दायित्व, कर्तव्यबोध, सौन्दर्य बोध आदि मूल्य

जो उनमें व्याप्त हैं उनका मूल स्रोत शांति निकेतन रहा है। उस समय संरक्षणशील समाज था तथा लड़कियों को अधिक स्वतंत्रता नहीं मिलती थी किन्तु लेखिका इन बंधनों को न मानकर परस्पर अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व हेतु गतिशील रहीं। इनका मूल ध्यान गरीब शोषित मानव जीवन की तरफ रहा जो अभिशप्त जीवन जीने पर विवश था। उनके जीवन के प्रत्यक्ष दर्शन से ही इनकी दृष्टि में परिवर्तन आया जो इनकी रचनाओं में प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है। इनकी लगभग 64 रचनाएँ हैं जिनमें से प्रारम्भिक कृतियों को छोड़कर शेष में सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं का ही समावेश हुआ है। जिसके लिए इन्हें पुरस्कृत भी किया गया।

1.6 कठिन शब्द

1. सृजनकर्ता
2. हाशिये
3. साम्यवादी
4. सुस्थिर
5. सान्निध्य
6. अभिज्ञता
7. स्वप्निल
8. सेवानिवृत्ति
9. अभिजात
10. कम्युनिस्ट

1.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) महाश्वेता देवी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालें।

उ) ____

____

____

____

प्र2) महाश्वेता देवी का साहित्यिक परिचय दीजिए।

उ)

प्र3) महाश्वेता देवी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।

उ)

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. जंगल के दावेदार– महाश्वेता देवी।
2. आदिवासी भाषा और शिक्षा– सं. रमणिका गुप्ता।
3. झारखंड के आदिवासियों के बीच– वीर भारत तलवार।
4. आदिवासी विकास, उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ– एस.एन. चौधरी, मनीषा मिश्रा।
5. आदिवासी संघर्ष गाथा– विनोद कुमार।
6. आदिवासी कौन– सं. रमणिका गुप्ता।
7. आदिवासी विकास : एक सैद्धान्तिक विवेचन– डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा।
8. आदिवासी और उनका इतिहास– हरिश्चन्द्र शाक्य।
9. आदिवासी विकास से विस्थापन, सं. रमणिका गुप्ता।

....

'जंगल के दावेदार' उपन्यास में सामाजिक चेतना

2.0 रूपरेखा

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 उपन्यास का कथानक

2.4 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में सामाजिक चेतना

2.5 सारांश

2.6 कठिन शब्द

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप–

- 'मुण्डा' समाज को समझ सकेंगे।
- मुण्डा समाज के साथ हुए शोषण से अवगत होंगे।
- मुण्डा विद्रोह के कारणों से परिचित हो सकेंगे।
- मुण्डा विद्रोह में बीरसा की भूमिका से पूर्ण रूप से अवगत होंगे।

2.2 प्रस्तावना

मानव जाति की उत्पत्ति के समय से ही समाज किसी–न–किसी रूप में है क्योंकि सामाजिक जीवन की शुरूआत मनुष्य की कुछ मौलिक आवश्यकताओं से हुई है, जैसे यौन–इच्छा की पूर्ति, सन्तान के लालन–पालन की इच्छा इत्यादि। इसी प्रकार की इच्छाओं ने परिवार जैसे समूह को जन्म दिया। आगे चलकर मनुष्य की अन्य आवश्यकताएँ, जैसे– आर्थिक, भौतिक, मनोवैज्ञानिक आदि ने सामाजिक जीवन की अनिवार्यता को और भी अधिक सुदृढ़ बनाया। समाज का अस्तित्व व्यक्तियों के बीच पाए जाने वाली अन्तःक्रिया पर निर्भर करता है परन्तु एक बार समाज एवं उसकी संस्कृति का निर्माण हो जाने के पश्चात् ये मानव व्यवहार का नियन्त्रण करना प्रारम्भ कर देते हैं। व्यक्ति पर समाज के नियन्त्रण का स्तर बहुत कुछ समाज की राजनीतिक संरचना पर निर्भर करता है। उदाहरणस्वरुप, गणतन्त्रीय व्यवस्था में व्यक्ति की स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रता तुलनात्मक रूप से अधिक होती है। दूसरी ओर अधिनायकवादी शासन व्यवस्था में सदस्यों की स्वाधीनता एवं स्वतन्त्रता आवश्यक रूप से कम होती है किन्तु समाज चाहे जैसा भी हो, व्यक्ति अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व कभी भी पूर्णरूप से नहीं खोता। अधिनायकवादी व्यवस्था में भी कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ उठाते हैं ऐसे लोग जो व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ तो उठाते हैं, लेकिन वे साथ ही समाज में चेतना लाने का काम भी करते हैं। उन्हीं के प्रयासों से व्यक्तियों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना का संचार होता है। बुद्ध, नानक, कार्ल मार्क्स, न्यूटन, गैलीलियो, जेम्स वाट, गाँधी आदि ऐसे ही व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने नवीन विचारों एवं अविष्कारों से मानवीय समाज को काफी प्रभावित किया। इसी भाँति आदिवासी जातियों द्वारा शोषण के विरुद्ध और जंगल की मिल्कियत के छीन लिए गए अधिकारों को वापिस लेने के उद्देश्य से जो सशस्त्र क्रान्ति की गई उनमें बीरसा मुण्डा का नाम अविस्मरणीय है। 'जंगल के दावेदार' उपन्यास इसी बीरसा द्वारा चलाए गए उलगुलान आंदोलन में हँसते–नाचते–गाते, परम सहज आस्था और विश्वास से दी गई प्राणों की आहुतियों को चित्रित करता है।

2.3 उपन्यास का कथानक

महाश्वेता देवी द्वारा लिखित 'जंगल के दावेदार' उपन्यास 1895 से 1900ई. तक के मुण्डा विद्रोह के नायक बीरसा मुण्डा पर आधारित है। यह उपन्यास परोक्ष उपादान की नींव पर खड़ा है क्योंकि इस उपन्यास का मूल उत्स सुरेशसिंह रचित **'Dust Storm and Hanging Mist'** पुस्तक है जिसका उल्लेख लेखका ने उपन्यास की भूमिका में ही कर दिया है। परोक्ष उपादान की नींव का आधार लेकर महाश्वेता देवी ने समग्र उपन्यास को अपने अनुसार लिखा है। सम्पूर्ण उपन्यास प्रायः कथोपकथन शैली में रचित है। मुण्डाओं का विद्रोह समकालीन सामंतवादी व्यवस्था के विरुद्ध था इसलिए लेखिका 'जंगल के दावेदार' उपन्यास की भूमिका में ही पाठक का ध्यान इस ओर केन्द्रित करती हैं।

'जंगल के दावेदार' उपन्यास का आरम्भ बीरसा मुण्डा की मृत्यु के वर्णन से हुआ है और उसके मृत शरीर के क्रिया–कर्म के समाप्त होने के पश्चात् ही उपन्यास में उसके जीवित समय में किए गए संघर्ष की कथा आरम्भ होती है। 1895 से 1900 ई. के काल खण्ड की कथा में बीरसा की जेल में मृत्यु, उसका क्रिया–कर्म, जेल में बीरसा को अकेली कोठरी में रखना, अमुल्य के साथ बीरसा का मिशन में शिक्षा प्राप्त करना, कनु मुण्डा का बीरसा को शैशव से देखना, धानी मुण्डा का आक्षेप, बीरसा का भगवान बनना इत्यादि सन्दर्भ एक पारस्परिक क्रम के अनुच्छेदों में वर्णित न होने के उपरान्त भी इनमें एक संलग्नता दिखाई देती है और इस संलग्नता का मूल केन्द्र है बीरसा का जीवन संघर्ष।

उपन्यास का आरम्भ बीरसा की मृत्यु वर्णन से इस प्रकार हुआ है– "9 जून, साल 1900। राँची की जेल। सवेरे आठ बजे बीरसा खून की उलटी कर, अचेत हो गया। बीरसा मुण्डा–सुगाना मुण्डा का बेटा; उम्र पच्चीस वर्ष– विचारधीन बन्दी।" बीरसा मुण्डा, मुण्डा जाति को संगठित कर 'उलगुलान' आंदोलन चला रहा था क्योंकि उसका सपना मुण्डाओं को भात उपलब्ध करवाने का है इसी भात के कारण बीरसा पकड़ा गया था जिसका उल्लेख करते हुए लेखिका कहती है– "अधिकतर समय बीरसा की जोरें की शिकायत रहती है– 'मुण्डा केवल घाटो ही क्यों खाएँ ? दिकू लोगों की तरह वे भात क्यों न खाएँ ?' और भात राँधा था, इसलिए तीसरी फरवरी को बीरसा पकड़ा गया। बीरसा सो रहा था। औरत भात पाक रही थी। नीले आकाश में धुआँ उठ रहा था, बीरसा नींद की गोद में था; तभी लोगों ने उठता हुआ धुआँ देख लिया।" पुलिस द्वारा बीरसा के पकड़वाए जाने पर पाँच सौ रुपए का ईनाम रखा गया था जिस कारण किसी मुण्डा ने बीरसा को पकड़वा दिया किन्तु बीरसा उससे खफा नहीं होता। वह जानता है कि मुण्डा गरीब है और पाँच सौ रुपए बहुत ज्यादा हैं किसी मुण्डा के लिए। उपन्यास के पहले 18 पृष्ठों में बीरसा की मृत्यु के कारणों एवं मृतदेह के दहन का वर्णन हुआ है।

बीरसा की मृत्यु से शुरू हुआ उपन्यास पीछे की घटनाओं की तरफ बढ़ने लगता है। जिससे स्पष्ट होता है कि लेखिका इतिहास पुरुष बीरसा का चित्रण कर रही है इसलिए इतिहास की दलील को उद्घाटित कर इसमें विश्वसनीयता उत्पन्न कर रही हैं। बीरसा मुण्डाओं का भगवान था इसलिए उसकी मृत्यु के पश्चात् साधारण लोगों और मुण्डाओं में व्याप्त इस गणनायक के प्रति भगवान के विश्वास को खंडित करने के उद्देश्य से जेल सुपरिटेन्डेन्ट ऐंडरसन ने अन्य कैदियों को बीरसा की शिनाख्त करने के लिए उसकी लाश की बगल से होकर गुजरने का आदेश दिया, सभी कैदियों के हाथ–पाँवों में जंजीरें थीं। किसी ने बीरसा को नहीं पहचाना, किसी ने नहीं कहा कि यही हमारा बीरसा भगवान है किन्तु भरमी मुण्डा भाव–विह्वल होकर करुण गीत गाने लगा जिससे ऐंडरसन क्रोधित होता है। बीरसा के लिए भगवान सम्बोधन सुनकर ऐंडरसन क्रोध से भर जाता है इसलिए वह लोगों में व्याप्त इस धारणा को समाप्त करने के लिए ऐसा आदेश देता है। वह बताना चाहता था कि बीरसा भगवान नहीं क्योंकि वह मर चुका है और भगवान की मृत्यु नहीं होती। लेकिन अपने इस उद्देश्य

में सफल नहीं होता क्योंकि बीरसा ने सभी को पहले ही कहा था कि वह उसे पहचानने से इनकार कर दें और वह स्वयं भी इन लोगों को कभी नहीं पहचानेगा।

बीरसा का क्रिया–कर्म भी उनके परिवार के द्वारा नहीं होता क्योंकि सुपरिटेंडेण्ट ने कहा था कि उसका संस्कार जेल के मेहत्तर (सफाई वाले) करेंगे। किसी भी बीरसाइत को बीरसा का संस्कार देखने की अनुमति नहीं दी गई। अमूल्य बाबू जो चाईबासा के जर्मन मिशन में बीरसा का सहपाठी और मित्र था और अब इसी जेल में डिप्टी–सुपरिटेंडेण्ट होता है उसे भी बीरसा के संस्कार में जाने की अनुमति नहीं दी गई। अमुल्य, ऐंडरसन को बताता है कि मुण्डाओं में जलाने का नहीं समाधि देने का रिवाज़ है लेकिन ऐंडरसन नहीं मानता और रात के अंधेरे में जेले के मेहतर शिब्बन और धरमू द्वारा उसका दाह संस्कार कर दिया गया। शिब्बन भी बीरसा से प्रभावित था इसलिए वह कहता है– ''यह कैसा हो गया है रे? जात का आदमी, धरम का आदमी कन्धा देगा, कबर देगा। यह क्या हो रहा है।'' लेकिन अन्य सिपाही द्वारा शिब्बन को साहब का भय दिखाकर चुप करवा दिया गया। धरमू बीरसा के शरीर को जलाते हुए कहता है– ''उलगुलान में बहुत आग जलाई थी– आग उसे पहचानती है। देख कैसी तो जल रही है ?'' बीरसा को जलाने के लिए लकड़ी भी नहीं दी गई थी सिर्फ सूखे गोबर के कण्डे थे फिर भी आग ने आग को पहचाना और बीरसा को खुद में समेट लिया। जब चिता बुझी उस समय सिर्फ शिब्बन वहाँ था बाकी सभी सिपाही मेहतर चले गए थे। तभी बीरसा के उलगुलान का साथी मित्र आया उसने मुट्ठी–भर राख आँचल में बाँध ली और शिब्बन से कहा कि– ''जंगल में राख उड़ा देने से जंगल को पता चलेगा कि बीरसा उसे भूला नहीं। राख धरती पर गिरेगी; धरती पर पेड़ उगेंगे। वही पेड़ बड़े होंगे, साथी।'' और उसने भी शिब्बन से कहा कि ''उलगुलान का अन्त नहीं है। भगवान का अन्त नहीं होता।'' इस बात ने शिब्बन को भीतर तक हिला दिया और वह वहाँ से भागता हुआ जेल पहुँचा लेकिन उसके मुख से एक ही वाक्य उच्चरित हो रहा था कि ''उलगुलान का अन्त नहीं है। भगवान का मरण नहीं होता।'' किन्तु सिपाहियों द्वारा चाबुक चलाने पर उसकी आवाज़ धीमी पड़ी और फिर पूर्ण शांति। अर्थात् उसे मारा गया। बीरसा के मर जाने पर भी उसके साथियों द्वारा उलगुलान का अन्त न मानना और शिब्बन आदि का भी बीरसा पर इस भाँति विश्वास होना, बीरसा के संघर्ष का समापन न होने का सकेंत देता है।

जेल में धानी मुण्डा भी अन्य मुण्डाओं को मुण्डा जाति के साथ हुए शोषण की कथाएँ सुना रहा था। वह बताता है कि बीरसा के वंश के आदि–पुरुषों ने छोटा नागपुर की नींव डाली पर पहले वहाँ राजा आए फिर चारों ओर से लोग आए जिन्हें 'दिकू' कहा गया है उन्होंने मुण्डा लोगों को उखाड़कर उनकी ज़मीन–जायदाद पर अपना अधिकार कर लिया। ये लोग– महाजन, जमींदार, मिशनरी, जेल–कचहरी, पक्की सड़कें, रेलगाड़ी, बेनट (किरच, जो सैनिक–रायफल के आगे लगाई जाती है), बन्दूक, गरमी की तपन, सूखा, दुर्भिक्ष, मजदूर भरती करने वाले, बेगारी आदि इन सब ने मिलकर मुण्डाओं का शोषण किया। अब इनसे ही मुण्डा मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे हैं और इस संघर्ष का नेतृत्व किया सुगाना और करमी के बेटे बीरसा

मुण्डा ने। 1895 में बीरसा ने अंग्रेज़ों की लागू की गई जमींदारी प्रथा और राजस्व–व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई के साथ–साथ जंगल–ज़मीन की लड़ाई छेड़ी थी। बीरसा ने सूदखोर महाजनों के खिलाफ भी जंग का ऐलान किया। ये महाजन, जिन्हें वे दिकू कहते थे, कर्ज़ के बदले उनकी ज़मीन पर कब्जा कर लेते थे। यह मात्र विद्रोह नहीं था। यह आदिवासी अस्मिता, स्वायतत्ता और संस्कृति को बचाने के लिए किया गया संग्राम था।

सवताल और मुण्डा इन दो आदिम जातियों का जीवनसत्य एक ही ज़मीन पर पोषित है और यह सत्य है जंगल व जंगल के ऊपर निर्भरशील जीवन। इसी के चलते शोषण और उत्सादन का शिकार बना आदिवासी जीवन। इसलिए 1855 का सवताल विद्रोह 'दामिन–ई–कोह' एवं 1895–1900 का मुण्डा जातियों का 'उलगुलान' ये दोनों संग्राम वर्णन में एकाकार हो गए हैं। घटनाकाल, नेतृत्व एवं पद्धति में अलग होने के उपरान्त भी ये दोनों संग्राम शोषण और अत्याचार के विरुद्ध लड़ाई के अन्तर्गत ही है। 1855 के 'हुल' और 1895–1900 के 'उलगुलान' की विद्रोही परम्परा के मध्य और विद्रोह 'मुल्क की लड़ाई' का नाम भी आता है। मुण्डा सरदार एवं ईसाई मिशनरियों के मुण्डाओं के नेतृत्व में यह लड़ाई दस वर्ष तक चलती रही थी। यह लड़ाई बीरसा की बाल्यावस्था में हो गई थी लेकिन धानी मुण्डा जिसने हुल, सवताल तथा मुलकई लड़ाई में सहयोग किया था उसने शिशु बीरसा में भविष्य के नेता के लक्षण देख लिए थे। इसलिए वह बीरसा का बचपन से ही पीछा कर रहा था। वह सरदारों को भी कहता है कि– ''अब दुख किस बात का? बीस बरस का हो जाने दो, भगवान को पाओगे। यह भगवान मानुस को भुलाता नहीं, गोदी में झूलता नहीं, इसके हाथों में बलोया रहेगा, तीर–धनुक रहेंगे।''

बीरसा को उसके पिता ने मिशनरी स्कूल में भर्ती करवाया। जहाँ उसे ईसाइयत का पाठ पढ़ाया गया। किन्तु मिशन में फादर की चर्चाओं के द्वारा ईसाई धर्म के प्रति जो विश्वास बीरसा के भीतर आ रहा था, उन्हीं के द्वारा जब सरदारों को धोखेबाज और ठग कहा गया तो बीरसा के भीतर बहने वाले मुण्डारी रक्त में उबाल आ गया और वह पूर्ण साहस के साथ उनका प्रतिवाद करता है। बीरसा के इस नए रूप को देखकर फादर आदि घबरा जाते हैं और बीरसा को मिशन छोड़कर चले जाने की आज्ञा सुनाते हैं। बीरसा भी इस अपमानकारी मिशन के जीवन को छोड़कर चालकाड़ चला आता है। वहीं धानी उसे मुल्कई लड़ाई में सहयोग देने को कहता है लेकिन बीरसा इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देता है। इन दिनों बीरसा जंगल में पागलों की भाँति घुमता रहता था क्योंकि उसके मन में स्वयं को लेकर अनेक प्रश्न थे जैसे कि वह कहाँ से आया, क्यों आया, कैसे आया। आत्मजिज्ञासा की यह अशांत भावना ही उसे बनगाँव के जमींदार जगमोहन सिंह के मुंशी आनन्द पाँडे के पास ले आई। वहाँ वह ''जनेऊ पहना, चन्दन लगाया, तुलसी की पूजा की। रामायण–महाभारत–पुराण सब सुने, कुछ–कुछ पढ़े।'' लेकिन फिर भी उसका मन स्थिर नहीं हुआ। वहीं पर दो मुण्डा लड़कियाँ– गुंजा और राता उसकी बंसी सुन उसकी तरफ आकर्षित होती हैं और उसे विवाह प्रस्ताव

भी देती हैं लेकिन बीरसा इंकार कर देता है क्योंकि उसका जीवन तो किसी और ही राह की तलाश कर रहा था।

धीरे–धीरे बीरसा का ध्यान मुण्डा समुदाय की गरीबी की ओर गहरा रहा था इस पर भरमी आदि ने उसे यह सूचना दी कि पलामू, मानभूम और सिंहभूम में जंगल कानून लागू होने के कारण सभी मुण्डाओं को वहाँ से खदेड़ा जा रहा है तो बीरसा आक्रोश से भर गया, उसने चाईबासा जाकर जंगल–ऑफिस में अर्जी दी लेकिन कोई सुनवाई नहीं हुई। इससे बीरसा के भीतर और भी क्रोध पनप गया और उसे आभास हुआ कि अब स्वयं ही कुछ करना होगा। इतने में जंगल माँ का करुण स्वर बीरसा को भगवान बनने के लिए प्रेरित करता है और बीरसा मुण्डाओं का भगवान बन उनके उद्धार के लिए तैयार हो जाता है।

संख्या और संसाधन कम होने की वजह से बीरसा ने छापामार लड़ाई का सहारा लिया। रांची और उसके आसपास के इलाकों में पुलिस उनसे आतंकित थी। अंग्रेजों ने उन्हें पकड़वाने के लिए पाँच सौ रुपये का इनाम रखा, जो उस समय बहुत बड़ी रकम थी। बीरसा और अंग्रेजों के मध्य अंतिम लड़ाई 1900 में रांची के पास दूम्बरी पहाड़ी पर हुई। हज़ारों मुण्डा बीरसा के नेतृत्व में लड़े पर तीर–कमान और भाले कब तक बंदूकों और तोपों का सामना करते। अंततः अंग्रेज जीते पर बीरसा हाथ नहीं आया किन्तु जहाँ बंदूकें और तोपें काम नहीं आई वहाँ पाँच सौ रुपये ने काम कर दिखाया अर्थात् बीरसा की ही जाति के लोगों ने उसे पकड़वा दिया। बीरसा जब जेल में था तब साली आदि मुण्डा औरतें मिलकर बीरसा के उलगुलान आंदोलन के लिए कार्य कर रही थीं। धानी जेल से भागा था जिसे साली ने शरण दी और साली पुलिस को धोखा देकर तीर भी बीरसाइतों को पहुँचा देती थी। लेकिन जेल में बीरसा की मौत से 'उलगुलान' आंदोलन धीमा पड़ गया।

जेल में बीरसा के साथ जो हुआ उसने अमूल्य को भी हिला दिया था। अमूल्य मुण्डा नहीं था फिर भी बीरसा की लड़ाई को समझता था। इसलिए बीरसा की मृत्यु के पश्चात् वह जेकब जो मुण्डाओं का वकील था उसे पत्र के माध्यम से बीरसा की मृत्यु का सत्य बताकर स्वयं इस नौकरी से इस्तीफा दे देता है। जब जेकब उससे इस्तीफे का कारण पूछता है तो वह कहता है– "मुझे अब और कुछ छोड़ने को नहीं रहा! मैं अब और कुछ कर नहीं सकता। मैं न तीर छोड़ सकता हूँ, न जानता हूँ बलोया चलाना। मैं इतना ही कर सकता था।"

अमूल्य इस्तीफा इसलिए दे सका क्योंकि उसने बीरसा के साथ–साथ अन्य मुण्डाओं को भी सजा पाते देखा, मुण्डाओं के संघर्ष का ऐसा परिणाम देख वह सरकार की नौकरी नहीं कर पाया। सन् 1901 ई. में वह बोर्तोदि गया। यहाँ उसने साली को अभी भी संघर्षमय पाया। उसके पति डोन्का मुण्डा को फाँसी की सजा हुई और फिर अपील के परिणामस्वरूप सजा घटकर जन्म–भर कालापानी सुनिश्चित हुई जब अमूल्य ने उससे पूछा कि अब तुम कैसे रहोगी तब उसने मुस्कुराते हुए कहा था कि भगवान संघर्ष करना सिखा गए हैं,

उलगुलान का अन्त नहीं हुआ। साली के मुख से ऐसा स्वर सुनकर चुप रह गया था और फिर वहाँ से चालकाड़ चला आया। वहाँ उसने नदी के किनारे पत्थर पर बैठी बीरसा की माँ को बेटे का इन्तजार करते पाया जो रोज सुबह वहाँ आती थी और उसकी आँसू रहित आँखें दूर तक अपने बेटे को खोजती, वह पत्थर की मूर्ति–सी जान पड़ती है। ये सब देखकर अमूल्य को पथरीली धरती, जगल, पहाड़ आदि का स्वर भी सुनाई देने लगा था जो सिर्फ एक ही बात कह रहा है– ''हम जिस तरह चिरकाल से हैं, संग्राम–बीरसा का संघर्ष भी वैसा ही है। धरती पर कुछ समाप्त नहीं होता– मुण्डारी देश, धरती, पत्थर, पहाड़, वन, नदी, ऋतु के बाद ऋतु का आगमन संघर्ष भी समाप्त नहीं होता, इसका अन्त नहीं होता। वह बना रह जाता है, क्योंकि मानुस रह जाता है, हम रह जाते हैं।'' अमूल्य इसी आवाज़ को अब सुनना चाहता था क्योंकि उसका मानना है कि लगातार सुनते–देखते रहने से एक दिन उसे भी पूरा विश्वास होगा कि संघर्ष समाप्त नहीं होता।

2.4 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में सामाजिक चेतना

चेतना मनुष्य के अपने तथा आसपास के वातावरण के तत्वों का बोध होने, उन्हें समझने तथा उनका मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम है। 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में महाश्वेता देवी ने आदिवासी समाज में आई चेतना को मुखरित किया है।

इतिहास में तीन भाँति के महान व्यक्तियों का वर्णन है। पहले वे जो ईश्वर के अवतार माने गए हैं जैसे राम, कृष्ण आदि। दूसरे वे लोग हैं जिन्होंने अपनी व्यक्तिगत उपलब्धि और परिष्कार से भगवान की उच्च स्थिति प्राप्त की, जैसे रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद आदि। तीसरे वे हैं जिन्होंने जनसामान्य के कष्टों, असंतोष, सामाजिक, धार्मिक अथवा आर्थिक क्षेत्र में व्याप्त शोषण के उन्मूलन में स्वयं को समर्पित कर दिया। इन व्यक्तियों में महात्मा गांधी, अंबेडकर, बिरसा मुण्डा जैसे व्यक्ति आते हैं। 'जंगल के दावेदार' में महाश्वेता देवी ने इसी तीसरे वर्ग के व्यक्तियों से बीरसा मुण्डा के उलगुलान आंदोलन की घटनाओं को चित्रित कर आदिवासी समाज के संघर्ष को सामने लाया है। इसलिए उपन्यास में व्यक्त आदिवासी मुण्डा समाज में आई चेतना का अध्ययन करने से पहले मुण्डा समाज, मुण्डा विद्रोह और बीरसा की पृष्ठभूमि को जानना भी आवश्यक हो जाता है।

मुण्डा समाज :–

मुण्डा भारत के आदिवासी समाज की जनजाति है, जो मुख्य रूप से झारखण्ड के छोटा नागपुर क्षेत्र में निवास करती है। झारखण्ड के अतिरिक्त ये बिहार, पश्चिम बंगाल, ओडिसा आदि भारतीय राज्यों में भी रहते हैं। इसकी भाषा मुण्डारी है जो आस्ट्रो–एशियाटिक परिवार की एक प्रमुख भाषा है। इनका भोजन मुख्य रूप से अनाज, मांडयुक्त फल, जड़े, महुआ, मक्का और कंध–मूल हैं। वे सूती वस्त्र पहनते हैं। महिलाओं के पहनावे में साड़ी होती है जिसे उनकी भाषा में 'पाड़िया' कहा जाता है। यह साड़ी को एक विशेष ढंग से बांधती हैं। साड़ी को कमर में बाँधने के पश्चात् पल्लू को शरीर के ऊपरी भाग पर वक्ष को ढ़कने के लिए डाल दिया जाता

है। मुण्डा पुरुष अपने शरीर पर एक लम्बा वस्त्र धारण करते हैं जिसे हम साधारण–धोती के रूप में ले सकते हैं। उनकी भाषा में इस पहनावे को 'बोतोई' कहा जाता है।

इतिहासानुरूप छोटानागपुर घने जंगलों से आच्छादित था। 'कोल' जाति ने सर्वप्रथम यहाँ के जंगलों को साफ करके यहाँ रहना शुरू किया। यह कोल जाति 'किलि' या 'गोत्रों' में विभक्त थी। जो गोत्र गाँव का निर्माण करता, रहने की सुविधानुसार सभी कोल उसके शासन को मान लेते। उसी निर्माणकर्त्ता को मुण्डा अर्थात् शीर्षस्थानीय की पदवी से सम्मानित कर दिया जाता था। वास्तव में कोल जाति का मुण्डा नाम इस शब्द से ही बना है। जंगल को साफ कर मुण्डा जिस गाँव का निर्माण करते हैं उस गाँव को 'खुटकट्टि' बोला जाता है। गांव की सीमा निर्धारण की भी एक विशेष ही रीति थी। जंगल के मध्य प्रयोजन–अनुसार चार जगह आग जलाकर उन चारों जगहों के बिन्दु को सरल रेखा द्वारा मिलाने से जो सीमा बनती उसके भीतर पड़ने वाली सारी ज़मीन चाहे वह उपजाऊ हो या अनुपजाऊ, खनिज पदार्थ आदि सब पर खुटकट्टियों का अधिकार होता था। वे इसी ज़मीन से अपना गुजारा करते, उन्हें किसी को इस ज़मीन का लगान नहीं देना पड़ता था।

मुण्डा ग्राम व्यवस्था के चार अनिवार्य अंग हैं– सरना, ससान, आखड़ा तथा गिति–ओडा।

सरना :–

मुण्डा अपनी गाँव की सीमा पर स्थित जंगल के पुराने वृक्षों का संरक्षण करते थे। संरक्षण की इस पद्धति को ही सरना धर्म के नाम से अभिहित किया गया है। आदिवासियों का मानना है कि सरना में ही गाँव के देवता वास करते हैं इसलिए देवता के रूप में वे सरना को पूजते और बलि चढ़ाते हैं।

ससान :–

मुण्डों में किसी की मृत्यु होने पर उसके शरीर को शवदाह या समाधिस्थ करने के उपरान्त उस स्थान को चिह्नित करने या उसकी स्मृति बनाए रखने के लिए उस पर पत्थर लगा देते हैं। इसी क्रिया को वह 'ससान' कहते हैं। आदिवासियों के पूरे समाज का इस 'ससान' पर विशेष अधिकार होता है जिसे वह आजीवन पूजते हैं। यह इनका धार्मिक स्थान भी कहा जाता है। अर्थात् इनका धार्मिक स्थल कोई इमारत एवं भवन न होकर खुला आसमान होता है।

आखड़ा :–

शाम के समय अथवा उत्सव के दिन गाँवों के स्त्री–पुरुष जमीन के बड़े साफ–सुथरे भूखण्ड पर मांदल (एक तरह का वाद्य यंत्र) बजाकर नाचने–गाने का उत्सव करते हैं। इस भूखण्ड को ही आखड़ा कहते हैं और आखड़ा के नेता को मानकि।

गिति–ओड़ा :–

गाँव के अविवाहित युवकों के सोने के स्थान को गिति–ओड़ा कहते हैं। अविवाहित युवतियों के लिए गिति–ओड़ा या सोने की जगह की व्यवस्था वृद्ध विधवाओं के घर में अलग से की जाती है। यहाँ पर युवक वृद्धजनों से पुराणों की कहानियाँ सुनते हैं, आपस में पहेलियाँ बुझाते हैं और अपने अनुभवों को एक दूसरे से बांटते हैं।

समस्त आदिवासी प्रकृति के पूजक होते हैं और प्रकृति से जुड़ी प्रत्येक वस्तु व जीव को पूजते हैं। इनके देवता 'सूर्य भगवान' हैं, जिसे आदिवासी 'सिंबोङा' या 'सिंगबोंगा देवता' कहते हैं। 'सिंगबोंगा' आदिवासियों का भगवान है जिसने सम्पूर्ण विश्व बनाया और अपनी रोशनी से संसार में फैले अंधकार को मिटाकर उज्ज्वल किया है।

मुण्डा विद्रोह :–

आज़ादी की लड़ाई में भारत के विभिन्न हिस्सों से अनेक समुदाय के लोगों ने अपने–अपने स्तर से अंग्रेजों एवं पश्चिमी उपनिवेशवाद के विरुद्ध समय–समय पर संघर्ष कर अपने सौर का प्रदर्शन किया है। किन्तु हम मंगल पाण्डे, रानी लक्ष्मीबाई, राना फड़नवीस, कुँवर सिंह, रानी चेनम्मा आदि के सम्बन्ध में तो किताबों इत्यादि में पढ़कर जानते हैं, लेकिन कुछ ऐसे लोग और समुदाय भी हैं जिन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगा संघर्षपूर्वक विदेशी आक्रांताओं को हराने का प्रयास किया, लेकिन सामान्य जनता उनके विषय में नहीं जान पाई। ऐसा ही एक समूह आदिवासियों का है। झारखण्ड की जनजातियों ने वैयक्तिगत और सामाजिक दोनों स्तरों पर अंग्रेज़ों के साथ जंग छेड़ी थी। सिद्धू और कान्हू, नारायण मांझी, बीरसा मुण्डा, जतरा उरांव एवं बहुत से आदिवासी स्वतन्त्रता सेनानियों ने अपने पराक्रम एवं पौरुष से अंग्रेजों के मन में आतंक का साम्राज्य स्थापित कर दिया।

आदिवासियों का संघर्ष अट्ठारहवीं शताब्दी से चला आ रहा है। 1766 के पहाड़िया–विद्रोह से लेकर 1857 के ग़दर के पश्चात् भी आदिवासी संघर्षरत रहे। मुण्डा जनजातियों ने 18वीं सदी से लेकर 20वीं सदी तक कई बार अंग्रेजी सरकार और भारतीय शासकों, जमींदारों के खिलाफ विद्रोह किया। सन् 1895 से 1900 तक बीरसा मुण्डा का महाव्रिदोह 'उलगुलान' चला क्योंकि आदिवासियों को लगातार जल–जंगल–ज़मीन और उनके प्राकृतिक संसाधनों से बेदखल किया जा रहा था और वे इसके खिलाफ आवाज़ उठाते रहे। मुण्डा विद्रोह उन्नीसवीं सदी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण जनजातीय आंदोलनों में से एक है। यह झारखण्ड का सबसे बड़ा और अंतिम रक्ताप्लवित जनजातीय विप्लव था, जिसमें हज़ारों की संख्या में मुण्डा आदिवासी शहीद हुए थे।

1895 में बीरसा ने अंग्रेजों की लागू की गई ज़मींदारी प्रथा और राजस्व–व्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई के साथ जंगल–ज़मीन की लड़ाई छेड़ी। बीरसा ने सूदखोर, महाजनों के विरुद्ध भी जंग का ऐलान किया। ये महाजन जिनको वह 'दिकू' के नाम से संबोधित करते हैं, आदिवासियों को कर्ज देकर बदले में उनकी ज़मीन पर अधिकार कर लिया करते थे। इसलिए मुण्डा आंदोलन मात्र विद्रोह नहीं था बल्कि आदिवासी अस्मिता, स्वायतत्ता और संस्कृति को बचाने के लिए किया गया संग्राम था।

आज की भांति ही उस समय भी आदिवासियों का जीवन अभावों से ग्रस्त था। न खाने को भात था न पहनने को कपड़े। एक ओर गरीबी तो दूसरी ओर 'इंडियन फॉरेस्ट एक्ट' 1882 में उनके जंगल छीन लिए थे। जो जंगल के दावेदार थे, वही जंगलों से बेदखल कर दिए गए। यह देख बीरसा ने हथियार उठा लिए और तब बीरसा के नेतृत्व में 'उलगुलान' शुरू हो गया। सन् 1900 में बीरसा की गिरफ़्तारी और फिर मृत्यु से यह आंदोलन धीमा तो पड़ा लेकिन 'उलगुलान' का अन्त न हुआ।

बीरसा मुण्डा :–

बीरसा मुण्डा का व्यक्तित्व कई कारणों से महान कहा जा सकता है। पहला कारण तो यही है कि अधिक शिक्षित न होने पर भी वह महान् नेता की योग्यता सिद्ध कर सका। 26 वर्ष की आयु में ही उसने अपने पराक्रम से वह कर दिखाया जिसके लिए सारी जिंदगी गुजर जाती है। उसके द्वारा उठाए गए मुद्दे आज भी प्रासंगिक हैं क्योंकि आज भी आदिवासी अपने जल, जंगल और ज़मीन पर अधिकार प्राप्त करने के लिए संघर्षरत है। पहले संघर्ष अंग्रेजों से था आज अपनी ही सरकार से है।

1894 में नौजवान नेता के रूप में सभी मुण्डाओं को एकत्र कर बीरसा ने अंग्रेजों से लगान माफी के लिए आंदोलन चलाया। 1895 में उसे गिरफ़्तार कर दो साल की सजा सुनाई गई। दो साल सजा काटकर आने के उपरान्त भी वह शांत न बैठा और 1897 से 1900 तक मुण्डाओं और अंग्रेज सिपाहियों के मध्य युद्ध होते रहे किन्तु 1900 में बीरसा फिर गिरफ़्तार कर लिया गया और जेल में ही साजिश के तहत बीरसा की मृत्यु हो गई। आज भी बिहार, उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़ और पश्चिम बंगाल के आदिवासी क्षेत्रों में बीरसा मुण्डा को भगवान की भाँति पूजा जाता है।

'जंगल के दावेदार' उपन्यास में सामाजिक चेतना :–

जब तक व्यक्ति के भीतर चेतना का विकास नहीं होता तब तक उसमें सोचने–समझने की शक्ति नहीं आती। इसलिए किसी भी व्यक्ति, समूह, समुदाय या समाज को यदि अपने अधिकारों के लिए लड़ना है तो सर्वप्रथम उसमें चेतना का अंकुर होना आवश्यक है क्योंकि अपने अधिकारों की पहचान और उसे प्राप्त करने का संघर्ष, चेतना के अभाव में सम्भव ही नहीं है। एक व्यक्ति से आरम्भ हुई यह चेतना जब धीरे–धीरे समस्त

समूह या समाज में व्याप्त होती है तो उसे सामाजिक चेतना कहा जाएगा। महाश्वेता देवी कृत 'जंगल के दावेदार' उपन्यास मुण्डा समाज में आई चेतना और इस चेतना के फलस्वरूप मुण्डा समाज द्वारा किए गए संघर्ष का साहित्यिक के साथ ऐतिहासिक चित्रण प्रस्तुत करता है।

मुण्डा समाज ग्राम व्यवस्था पर आधारित था जो छोटा नागपुर इलाके में बसा था। जंगल को साफ कर इन्होंने अपने गाँव का निर्माण किया। इसलिए उस गाँव के मालिक ये स्वयं थे। उन्हें किसी को लगान नहीं देना होता था, किन्तु जंगल पर मूलतः अधिकार रखने वाले मुण्डा सरकारी नीतियों के चलते उस अधिकार से वंचित हो गए। उन्हें ज़मीन के लिए लगान देना पड़ा और लगान की बढ़ती राशि की पूर्ति हेतु वे ऋण लेने पर विवश हुए। ऋण न चुकाने के कारण वे अपनी ज़मीनों से बेदखल होते गए। आरम्भ में जो जंगल के मालिक थे शोषण के चलते गरीबी की गर्त में चले गए। बाहरी लोगों के आगमन से इनकी संस्कृति भी खतरे में थी। ईसाई मिशनरी मुण्डाओं को ईसाई बनाने में लगे थे। मुण्डाओं तथा उनकी संस्कृति को इन बाहरी लोगों द्वारा हेय समझा जा रहा था। इस तरह मुण्डाओं का अस्तित्व ही खतरे में था। ऐसे में वह अपना अधिकार कैसे पाते, कोई सहारा न पाकर मुण्डाओं ने विद्रोह करना उचित समझा जिसका नेतृत्व बीरसा मुण्डा ने किया। बीरसा मुण्डा ने ही मुण्डा समाज में अपने अधिकार पाने की चेतना लाई। बीरसा ने तो यह आंदोलन चलाया किन्तु बीरसा इस आंदोलन का नेतृत्व कर सकता है यह सपना धानी मुण्डा ने देखा। इसलिए बीरसा में अपनी जाति का उद्धार करने की भावना की जो चेतना आई है उसका श्रेय धानी मुण्डा को भी जाता है।

धानी वृद्ध है और अपने जीवन में अनेक लड़ाईयों में भाग ले चुका था। धानी के विषय में लेखिका बताती है– "जहाँ लड़ाई है, उसका अन्तर वहाँ है। उसकी बयस आठ सौ अट्ठासी चाँद हो गई। इस बीच वह उस पहली मुण्डा लड़ाई, हूल खारुआ की लड़ाई, सरदारों की मुल्की लड़ाई– सब जगह लड़ आया है।" धानी में अपने अधिकारों को पाने की चेतना है इसलिए अधिकारों के लिए जब भी कोई संघर्ष हुआ उसमें धानी ने अपना सहयोग दिया। अब उसे मुण्डा जाति में ही मुक्ति दाता भगवान के जन्म लेने की आशा है। इसलिए वह बीरसा का भी पीछा करता रहता है। धानी के इस कार्य से बीरसा की माँ चिंतित होती है और वह बीरसा को उससे दूर रहने को कहती है क्योंकि वह जानती है कि धानी मुण्डा जाति में ही किसी भगवान की खोज कर रहा था। धानी भगवान के विषय में जो बातें करता था उसके बारे में वह बीरसा को बताते हुए कहती हैं– "वही जाने किस भगवान को खोज रहा है। वह भगवान शायद मुण्डा बनकर जन्म लेगा। वह मुण्डा लोगों को उनके अपने गाँव देगा, दिलाएगा। उसके आने के बाद दिकू नहीं रहेंगे। उसके आने से सारे मुण्डा लोगों के बदन पर कपड़ा, हाँडी में घाटो, डिब्बे में नमक रहेगा। बर्तनों में रहेगा महुआ का कडुआ तेल तब मुण्डा राजा बनेंगे।" मुण्डा का ऐसा जीवन केवल धानी ही नहीं चाहता, बल्कि सब मुण्डा ऐसी उम्मीद के साथ जीवित हैं किन्तु सभी को यह बोध नहीं था कि ऐसा जीवन तभी सम्भव है जब वह एकजुट होकर आंदोलन करेंगे। धानी ने बीरसा के भीतर नेतृत्व की शक्ति को पहचान लिया था इसलिए वह प्रयास करता है कि बीरसा अपनी

शक्ति को पहचाने। वह उसे कहता है– ''बीरसा, तू कर सकता है। छोटा नागपुर तेरे आदि–पुरुषों का बनाया हुआ है। तू भगवान बन सकता था।'' इतना ही नहीं वह उसे मिशन छोड़ने का परामर्श भी देता है। वह बीरसा को मिशन की वास्तविक सोच से अवगत करवाता हुआ कहता है– ''तू वह मिशन छोड़ दे। साहब क्या कहते हैं– मुण्डा जंगली हैं, नंगे रहते हैं। सारे मुण्डा चोर और डाकू हैं। वह मिशन छोड़ दे।'' धानी द्वारा कहे यह शब्द भी बीरसा में चेतना लाने का प्रयास ही हैं। वहीं मिशन में एक पादरी डॉ. ए.नॅट्रट ने लोगों को लालच दिया कि यदि वे ईसाई बन उनके अनुदेशों का पालन करते रहें तो वे मुण्डा सरदारों से छीनी हुई भूमि को वापस करा देंगे। लेकिन 1886–87 में मुण्डा सरदारों ने जब भूमि वापसी का आंदोलन किया तो इस आंदोलन को न केवल दबा दिया गया बल्कि ईसाई मिशनरियों द्वारा इसकी भर्त्सना की गई जिससे बीरसा मुण्डा को गहरा आघात लगा और वह अन्य लड़कों से कहता है कि सरदार मिशन छोड़कर चले गए इसलिए वे सरदारों को धोखेबाज़ कह रहे हैं। बीरसा द्वारा मिशन की बगावत करने से फादर नॅट्रेट घबरा जाते हैं और इसी घबराहट में बीरसा से कहते हैं– ''सभी मुण्डा एक–से हैं। मिशन के पास आते हैं भिखारी की तरह, लेकिन अन्दर–ही–अन्दर सरदारों की बातें मानते हैं। सब मुण्डा बेईमान हैं।'' मिशन की इस वास्तविकता को देखकर बीरसा मिशन छोड़कर चला जाता है। यह वह दौर था जिसने बीरसा के भीतर बदले और स्वाभिमान की ज्वाला पैदा कर दी। अपनी जाति की दुर्दशा, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक अस्मिता के खतरे ने उसके मन में क्रांति की भावना उत्पन्न की।

सरकार के प्रति उसका विद्रोह तब सामने आता है जब उसे भरमी, दासों और मातारी से ज्ञात होता है कि जंगल–कानून लागू होने से सब मुण्डाओं को जंगल से खदेड़ा जा रहा है। तब बीरसा उन लोगों के साथ अर्जी लेकर जंगल आफिस चला गया। वहाँ उनके साथ जब उपेक्षित व्यवहार किया गया तब वह उनसे कहता है– ''तू–तू क्यों कहते तो? मुण्डा आदमी नहीं हैं? साहब को देखकर, 'आप' कहते हो? बनिया को देखकर 'तुम' कहते हो, मुण्डा देखकर 'तू' कहते हो?''...''ए दिकू! मेरा नाम बीरसा है। मैं साहब से नहीं डरता हूँ। ठीक ढंग से बात करो''... ''नहीं तो तुम पर कुचला–बाण छोड़ दूँगा।'' इन पंक्तियों में जहाँ सरकारी अफसरों की अमानवीय सोच का बोध होता है वहीं मुण्डाओं का प्रतिनिधित्व कर रहे बीरसा द्वारा इस व्यवहार का विरोध भी वर्णित हुआ है जो इस बात का द्योतक है कि अब मुण्डा अपने अधिकार और सम्मान के लिए लड़ना सीख गए हैं। वह मुण्डाओं को बताता है कि शहर में बैठकर कानून बनाने वाली सरकार मुण्डा–कोल–उरांव के बारे में नहीं सोचते। इस बात पर सब उससे प्रश्न करते हैं कि इस स्थिति में क्या किया जाए, तब बीरसा मुण्डाओं में चेतना का संचार करते हुए कहता है– ''तब क्या होता, खुद सोचो। कोई नहीं सोचेगा। हमेशा कोई और सोचेगा।... अपनी बात खुद नहीं सोचते, उससे ही तुम मरते हो, और मरते हो महुआ और हँडिया से। कैसा मद पीना सीखा है! ऐसे जीवन में आग लग जाए! जंगल में जाने का हक चला गया। तुम चेत उठे, भभक उठे– फिर थोड़ी देर बाद मद पीकर सब भूल जाओगे।'' बीरसा लोगों में चेतना

का संचार कर मुण्डाओं का अस्तित्व बचाना चाहता है क्योंकि वह जान चुका है कि जो जंगल मुण्डाओं की माँ है वहीं आज रो रही है। जंगल–माँ दिकू एवं कानून के हाथों बन्दी बनी है और उससे मुक्ति की कामना कर रही है। इसलिए बीरसा प्रण करता है कि वह जंगल–माँ को इन पापियों से मुक्ति अवश्य दिलाएगा। वह जंगल–माँ की पुकार पर ही मुण्डाओं का आबा बनने को तैयार हो जाता है और आदेशपूर्वक कहता है– ''दूँगा, सबको सुख दूँगा। हाँ, मैं भगवान बनूँगा, बीरसा भगवान! तब धरती का आबा बन जाऊँगा।...'' इस तरह बीरसा अपने संकल्प को पूरा करने के लिए गांव–गांव घूमकर लोगों में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक जागृति लाने में प्रयासरत होता है। इस संदर्भ में लेखिका कहती है– ''धर्म का आचार, तन्त्र–मन्त्र, जादू, रीति–नीति का बोझ छाती पर रहने से मुण्डा लोग सिर न उठा सकेंगे– इसीलिए एक सहज, सुन्दर, कर्मकाण्ड और रूढ़िगत विश्वासों के बोझ से रहित धर्म की आवश्यकता है। इसीलिए बीरसा ने भगवान बनकर धर्म में, आस्था में क्रांति लाना प्रारम्भ किया।''

बीरसा ने जंगलवासियों को एकजुट कर उन्हें अंग्रेजी शासन के खिलाफ संघर्ष करने को तैयार किया। ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले हिन्दुओं को उसने अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की जानकारी दी और अंग्रेज़ों के षड्यंत्र के प्रति सचेत किया। 25 वर्ष की उम्र में ही उसने जो क्रांति पैदा की वह अतुलनीय है। उसका कहना है कि, ''मुण्डा बड़े बन्धनों में फँसे हुए हैं दिकू लोगों ने मुण्डाओं को उधार–कर्ज–कोयला खान–रेल–जेहल–अदालत वगैरह के हज़ारों चक्करों में फाँस लिया है। अब हमें सब तरह से आज़ाद होना पड़ेगा। सारे विदेशियों को भगाएँगे। किसी को कोई लगान नहीं देंगे। सारे जंगल ले लेंगे। जैसे पहले लिये थे, वैसे ही अब लेंगे।'' बीरसा मुण्डाओं में जमींदार, महाजन, पटवारी, ठेकेदार आदि शोषणकर्ताओं के खिलाफ जंग छेड़नी की चेतना लाता है और उसी के प्रयास थे कि सब एकजुट होकर संघर्ष कर भी रहे थे। इनके इस संघर्ष से सभी शोषणकर्ता चिंतित होते हैं। इसलिए अंग्रेज सरकार ने इनकी गतिविधियों को रोकने के लिए 1895 में बीरसा को हज़ारीबाग केन्द्रीय कारागार में दो वर्ष गिरफ़्तार करके रखा किन्तु दो साल जेल में रहकर भी बीरसा के संकल्प में अस्थिरता नहीं आई। 1897 से 1900 तक मुण्डाओं और अंग्रेज सरकार के मध्य मुठभेड़ होती रही। 1897 में बीरसा और उसके चार सौ सिपाहियों ने तीर कमानों से लैस होकर खूंटी थाने पर धावा बोला। 1898 में तांगा नदी के किनारे मुण्डाओं की मुठभेड़ अंग्रेज सेना से हुई जिसमें अंग्रेज सेना हार तो गई लेकिन बदले में बहुत से आदिवासी नेताओं की गिरफ्तारियाँ हुईं।

जनवरी, 1900 में डोमबाड़ी आदिवासी पर एक और संघर्ष हुआ था, जिसमें बहुत–सी आदिवासी औरतें और बच्चे मारे गए तथा बीरसा के शिष्यों की गिरफ़्तारी भी हुई। सन् 1900 को ही 3 फरवरी को बीरसा भी चक्रधरपुर में गिरफ़्तार कर लिया गया। जेल में रहकर भी बीरसा अपने साथियों के मनोबल को बनाए रखता है। काल कोठरी में बीरसा के चलने की आवाज़ अन्य मुण्डाओं के जीवन का सहारा बनती है लेकिन एक दिन

जब सरकारी षड्यन्त्र द्वारा बीरसा की हत्या कर दी गई उस दिन मुण्डाओं का मनोबल टूट गया। किन्तु जो बीरसाइत थे वह अंग्रेजों की कोड़ों की मार से भी विचलित नहीं हुए क्योंकि खून से लथपथ होने पर भी वह एक ही बात दोहराते थे– ''भगवान ने कहा था कि जब तक माटी की यह देह नहीं छूटेगी, तुम जिन्दा नहीं रहोगे। टूट मत जाना। सोचना भी मत कि तुम्हें बीच में छोड़कर मैं चला गया। तुम लोगों को इतने, सारी तरह के हथियारों का उपयोग मैंने सिखा दिया है न! तुम उन्हें ही लेकर लड़ते रहना।'' बीरसा को मालूम था कि इस आंदोलन में कई जाने जाएँगी और वह स्वयं भी मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा, लेकिन वह अपनी मृत्यु के साथ इस आंदोलन का अन्त नहीं चाहता था इसलिए उसने सभी मुण्डाओं को पहले ही बता दिया था कि पकड़े जाने पर वह बीरसा से कोई भी संबंध स्वीकार न करें। क्योंकि बीरसा उलगुलान का अन्त नहीं होने देना चाहता था। इसलिए वह अपने प्राणों की आहुति के लिए तो तैयार था किन्तु अन्य मुण्डा जो इस आंदोलन में साथ थे उनको अपना दायित्व सौंपता है। यह बीरसा की चेतना–संचार का ही परिणाम है कि मुण्डा उसकी मृत्यु के पश्चात् भी भगवान के मरण को स्वीकार नहीं करते। बीरसा की राख को साथी अपने साथ ले जाते हुए शिब्बन से कहता है– ''कहा था कि जंगल में राख उड़ा देने से जंगल को पता चलेगा कि बीरसा उसे भूला नहीं। राख धरती पर गिरेगी; धरती पर पेड़ उगेंगे। वही पेड़े बड़े होंगे... उलगुलान का अन्त नहीं है। भगवान का मरण नहीं होता।'' अतः बीरसा की मृत्यु भी आदिवासी संघर्ष के निरन्तर चलते रहने की उद्घोषणा ही करती है क्योंकि जब तक आदिवासियों को उनका अधिकार नहीं मिलता, उनके अस्तित्व का संकट समाप्त नहीं होता तब तक यह संघर्ष निरन्तर चलता रहेगा। क्योंकि बीरसा ने चेतना की जो आग जलाई है वह अधिकार प्राप्ति के साथ ही शांत हो सकती है।

2.5 सारांश

बीरसा ने जो आंदोलन चलाया उसे उलगुलान कहा गया है। 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों (1895–1900) में मुण्डाओं ने दो बार विद्रोह किया किन्तु अंग्रेजों के पास भेदी, हथियार और सैनिक बल था इसलिए मुण्डा विद्रोह उनके समक्ष अधिक देर टिक नहीं पाया। मुण्डाओं में बाहरी लोगों के दमन को समाप्त कर 'मुण्डा राज' का जो सपना देखा वह 19 जून 1900 में बीरसा की मृत्यु के साथ ही टूट कर बिखर गया लेकिन उनकी उम्मीद अभी भी बनी हुई है। इसलिए उनका संघर्ष भी चल रहा है और सदैव चलता रहेगा जब तक वह अपना अधिकार प्राप्त नहीं कर लेते। हाँ, उनके आंदोलन और संघर्ष के रास्ते चाहे परिवर्तित हो पर वह निरन्तर गतिशील होंगे। लेखिका कहती है कि शोषण और दमन के विरुद्ध चेतना को उजागर करना लेखक का दायित्व है और बीरसा के उलगुलान आंदोलन को उपन्यास का विषय बनाकर उन्होंने अपने इसी दायित्व का निर्वाह किया है।

2.6 कठिन शब्द

1. अन्तःक्रिया
2. अधिनायकवादी
3. मिल्कियत
4. उलगुलान
5. शीर्षस्थानीय
6. उपनिवेशवाद
7. आक्रांताओं
8. रक्ताप्लवित
9. स्वायतत्ता

2.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) मुण्डा समाज पर टिप्पणी कीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र2) मुण्डा विद्रोह को स्पष्ट कीजिए।

उ) ____

प्र3) 'उलगुलान' आंदोलन में बीरसा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

उ)

प्र4) 'जंगल के दावेदार' उपन्यास में व्यक्त सामाजिक चेतना पर विस्तारपूर्वक चर्चा करें।

उ)

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. जंगल के दावेदार– महाश्वेता देवी।
2. आदिवासी भाषा और शिक्षा– सं. रमणिका गुप्ता।
3. झारखंड के आदिवासियों के बीच– वीर भारत तलवार।
4. आदिवासी विकास, उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ– एस.एन. चौधरी, मनीषा मिश्रा।
5. आदिवासी संघर्ष गाथा– विनोद कुमार।
6. आदिवासी कौन– सं. रमणिका गुप्ता।
7. आदिवासी विकास : एक सैद्धान्तिक विवेचन– डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा।
8. आदिवासी और उनका इतिहास– हरिश्चन्द्र शाक्य।
9. आदिवासी विकास से विस्थापन, सं. रमणिका गुप्ता।

……

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**
Semester-III **Lesson No. 3**

'जंगल के दावेदार' के प्रमुख चरित्र

3.0 रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 'जंगल के दावेदार' के प्रमुख पात्र

  3.3.1 बीरसा

  3.3.2 धानी

  3.3.3 अमूल्य बाबू

  3.3.4 साली

3.4 सारांश

3.5 कठिन शब्द

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.7 पठनीय पुस्तकें

3.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययनोपरान्त आप उलगुलान आंदोलन के प्रमुख पात्र बीरसा के चरित्र की विशेषताएँ तथा इस आंदोलन में बीरसा को सहयोग करने वाले प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

श्रेष्ठ रचना का श्रेय उसके चरित्र निर्माण को जाता है। चरित्र के माध्यम से ही साहित्यकार मानव–मन की प्रवृत्तियों को उद्‌घाटित करता है। चरित्र कथा को विस्तार देते हैं क्योंकि उनके माध्यम से घटित घटनाएँ एवं उद्‌घाटित भाव–विचार एक ओर यहाँ उसके चरित्र के गुण व दोष को हमारे सामने लाते हैं वहीं दूसरी ओर कथा को विस्तार देकर मुख्य उद्देश्य की पूर्ति भी करते हैं। इसलिए चरित्र के बिना कथा सम्भव नहीं। कथा में व्यक्त पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ ही रचना को उत्कृष्ट बनाती हैं। पात्रों के जीवन के उतार–चढ़ाव से ही पाठक के मनमस्तिष्क की रोचकता प्रभावित होती है। महाश्वेता देवी कृत 'जंगल के दावेदार' उपन्यास भी उत्कृष्ट चरित्र निर्माण के कारण ही श्रेष्ठ रचना बन पाई है। इस कृति को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलना इसकी श्रेष्ठता को ही प्रदर्शित करता है।

3.3 'जंगल के दावेदार' के प्रमुख पात्र

'जंगल के दावेदार' का प्रमुख पात्र बीरसा मुण्डा है जिसने उलगुलान आंदोलन चलाया था और बीरसा के इस आंदोलन में जिन व्यक्तियों ने सहयोग किया है उनमें धानी और साली प्रमुख हैं। अमूल्य बाबू मुण्डा न होते हुए भी बीरसा की परोक्ष रूप से सहायता करता है। इसलिए इन सबके चरित्र की विशेषताओं का अध्ययन करना अनिवार्य है।

3.3.1 बीरसा

बीरसा 'जंगल के दावेदार' उपन्यास का प्रमुख पात्र है। यह वही बीरसा मुण्डा है जो 19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में छोटा नागपुर में अंग्रेज़ी शासन और समाज के उच्च वर्गों द्वारा किए जा रहे शोषण के विरुद्ध 'उलगुलान' आंदोलन चलाकर विद्रोह का झंडा लिए खड़ा था। जिसका जन्म 1875 को बाम्बा में सुगाना मुण्डा और करमी के घर बृहस्पतिवार को हुआ इसलिए नाम रखा गया 'बीरसा'। बीरसा को जन्म से ही सब मुण्डा जाति से भिन्न मानते थे उसके शारीरिक सौंदर्य को देखकर सब कहते कि ''शक्ल बड़ी सुन्दर निकल गयी। मुण्डा लोगों के घर इतना लम्बा, सुगठित शरीर ऐसी आँखें देखने में नहीं आती।'' बीरसा के चरित्र की विशेषताएँ ही उसे मुण्डा जाति का नायक बनाती हैं इसलिए उसकी चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है।

विचित्र व्यक्तित्व

बीरसा बचपन से ही स्वप्नदर्शी था। मुण्डा लोगों की फटी गुदड़ी गृहस्थी उसे तकलीफ पहुँचाती थी इसलिए वह मुण्डा जाति को इससे छुटकारा दिलाना चाहता था। मुण्डा जाति में कोई भी आठ वर्ष का लड़का पढ़ने नहीं जाता था। बीरसा भी सभी की भाँति ''बकरियाँ चराकर, जंगल से काठ–पत्ते–फल–कन्द–शहद

लाकर घर में मदद करता।'' लेकिन बीरसा बड़ा होकर अपने परिवार की इच्छानुसार उन्हें खाना उपलब्ध करवाना चाहता था। बीरसा और उसके बड़े भाई कोम्ता को काम की खोज में जब उसके मामा निबाई मुण्डा आयूभातू अपने संग ले गए तब कोम्ता तो मामा के साथ कुण्डी बरतोली भूरा मुण्डा के खेतों में काम करने और गाय चराने चला गया लेकिन बीरसा को उसकी मौसी जोनी अपने पास रहने को कहती है तब वह कहता है– ''माँ से कहकर आया हूँ। मैं बड़ा हो गया हूँ। बड़ा बनूँगा। माँ को बोरा–भर नमक लाकर दूँगा, डब्बा–भर दाल और दाना ला दूँगा।'' यही नहीं वह शिक्षा भी प्रचारक बनने के लिए लेना चाहता है। जयपाल नाग की पाठशाला सालगा में थी और आयूभातू से सालगा पाठशाला का रास्ता दुर्गम था लेकिन नन्हा बीरसा किसी से कभी नहीं डरा। मुश्किलों का सामना करते हुए जंगल की राह पैदल सालगा से आयूभातू आता–जाता। छोटे से बीरसा के मन में स्वप्न बहुत बड़ा था इसलिए वह जानता था कि उसे पूरा करने के लिए उसे पढ़ना होगा क्योंकि उसका कहना था कि ''दिकू लोगों की भाषा सीखने से ही वह दिकू लोगों के हाथों से घर–जमीन बचा सकेगा। जानते सब थे, लेकिन चालकाड़ के मुण्डा सुगाना के लड़कों और लिखे–पढ़े जाने हुए जीवन– दोनों के बीच बहुत–सी दीवारें थीं– महाजन, ग्राम–प्रधान, पुलिस, दारोगा, हाकिम, पक्का रास्ता, बहुत–बहुत दीवारें थीं! उन सबको कैसे लाँघा जाए ? वह तो अभी भी छोटा था।'' बीरसा के स्वप्नों ने कभी उसे हार नहीं मानने दी। जंगल में आकर वह समाज तथा परिवार की बातें भूल स्वप्न देखने लगता है उसे वह जंगल अपना लगता और वहाँ की धरती माँ द्वारा मुक्ति की पुकार सुनकर वह विचलित होकर उसे मुक्त करवाने का स्वप्न खुली आँखों से देखता। सभी मुण्डा लड़के बंसी बजाते थे लेकिन बीरसा नाजाने किस साँस से बजाता था कि जंगल के पशु–पक्षी उसके पास जमा हो जाते। अपने बेटे के विचित्र व्यवहार से करमी भी डर जाती। वह पति से बीरसा के विषय में कहती है, ''पता नहीं। पेट का लड़का। फिर भी अनचीन्हा–सा लगता है। वह कोम्ता की तरह नहीं है, किसी मुण्डा लड़के की तरह नहीं है, वह अजीब लड़का है।'' माँ की ममता भी बेटे के अनोखे व्यवहार से चिंतित है।

लोकप्रिय

मात्र परिवार का ही नहीं बीरसा तो सभी का मन जीतने वाला चरित्र रखता था। आठ वर्ष की आयु में ही मामा संग ननिहाल जाकर मामी और मासी का सबसे प्रिय बन गया। जब मौसी की शादी होने वाली थी और वह बीरसा को संग ले जाने की बात करती है तब मामी कहती है कि तुम मत जाना तेरे बिना सारा आयूभातू सूना हो जाएगा। इतना ही नहीं शालगा की पाठशाला में शिक्षक जयपाल नाग का भी स्नेह प्राप्त करता है। वह भी कहता है– ''जाना मत, बीरसा। तुम–सा दूसरा लड़का पाठशाला में नहीं है। मैं जो जानता हूँ, जितना जानता हूँ, तुझे सब सिखाऊँगा!'' आयूभातू में समान उम्र के लड़कों में भी वह लोकप्रिय हो जाता है। जर्मन चर्च में पढ़ते समय भी वह सहपाठियों का प्रेम प्राप्त करता है। मिशन से छुट्टी करके जब बीरसा वापिस लौटता तो मुंडा लड़के उसकी प्रतीक्षा कर रहे होते थे क्योंकि बीरसा को वे 'पहान' मानते थे अर्थात

अपने दल का प्रधान एवं दलनेता। जब मुण्डा लड़के बीरसा को अमूल्य बाबू (जो बंगाली है और सब उसे दिकु समझते हैं) से सम्पर्क न रखने के लिए कहते हैं तो उस समय बीरसा द्वारा कहा गया वाक्य ''मैं उसे नहीं छोड़ूँगा, उसके लिए अगर तुम मुझे छोड़ते हो तो छोड़ दो।'' के पश्चात् सभी मुण्डा लड़के अपने सुझाव को त्याग देते हैं क्योंकि उनके अनुसार– ''तू हमलोगों में सबसे अच्छा है। तू अगर चाहता है, तो उसे दोस्त रखेंगे।'' बीरसा के एक बार कहने पर सभी मुण्डा लड़कों का मान जाना बीरसा की लोकप्रियता एवं नेतृत्व क्षमता का बोध करवाता है।

जाति बंधन से मुक्त

बीरसा चाहे मुण्डा था किन्तु उसने स्वयं को कभी भी जाति बंधन में बाँधकर नहीं रखा। न तो उसने किसी अन्य जीवन क्षेत्र से शिक्षा लेने से परहेज किया, न ही दिकु या अंग्रेजों के आचार–व्यवहार को ग्रहण करने में कोई आपत्ति दिखलाई। एक बार जब बीरसा के कर्तव्य शैथिल के कारण बीरसा के मौसा का एक बकरा उनकी जाति के शत्रु घासी मुण्डा के खेत में घुसकर उसकी रबी की फसल नष्ट कर देता है और धानी क्रोध में लाठी मारकर बकरे की टाँग तोड़ देता है। तब बीरसा हड्डी जोड़ने वाली एक लता लाकर उसका लेप बनाता है और टूटी हुई हड्डी को मिलाकर उसपर वह लेप लगा, रेंडी का पत्ता लपेटकर एक पतली लकड़ी से टाँग को बाँध देता है। इस उपचार के पश्चात् वह बकरे को एक स्थान पर घेरा बनाकर उसके भीतर बाँध देता है। इस उपचार को उसने दिकू लोगों के संसर्ग में रहकर सीखा है। मौसा द्वारा पूछने पर वह कहता है– ''दिकू लोगों के घोड़ों का पैर टूटने पर इसी तरह जुड़ता है। यह लता बड़ी अच्छी है।'' यही बिरसा भविष्य में कुल का एक ऐसा संस्कारक हो उठता है जो अभिज्ञता से आत्मोन्नयन की शिक्षा लेकर उसे अपने समाज एवं जाति में पूर्णतः फैला देता है।

दृढ़ निश्चयी

बीरसा एक दृढ़ निश्चयी पात्र है। उसने अपने जीवन काल में जो कार्य करने का सोचा, उसे दृढ़तापूर्वक पूर्ण किया है। जब वह चाईबासा के मिशन में भर्ती होने जाता है तब देर हो जाने के कारण मिशन के रेवरेंड साहब ने कहा कि अब भर्ती नहीं हो सकती किन्तु बीरसा दृढ़तापूर्वक कहता है– ''मैं लौटकर नहीं जाऊँगा।'' और वह अपने मित्रों के साथ मिशन के सामने पाकड़ के पेड़ के नीचे ही रात निकाल लेता है। सुबह साहब बीरसा के मित्रों को तो लौटा देते हैं किन्तु उसे भर्ती कर लेते हैं।

इसी तरह बीरसा की दृढ़ता तब भी सामने आई है जब मिशन के फादर नॅट्रेट, मुण्डा सरदारों को धोखेबाज़ कहकर बीरसा तथा अन्य मुण्डाओं को उनके आंदोलन में शामिल होने से रोकते हैं किन्तु बीरसा नॅट्रेट के मुख से सरदारों के लिए धोखेबाज़ शब्द सुनकर क्रोधित हो जाता है और आवेश में आकर मिशन भी छोड़

देता है। अमूल्य उसके भविष्य की चिंता करते हुए उसे साहब से माफी माँगने के लिए कहता है किन्तु बीरसा माफी नहीं माँगता। वह अमूल्य से कहता है– ''मुण्डाओं की पढ़ाई–लिखाई? मुण्डाओं का भविष्य? मुण्डा क्या बाबू हैं ? मुण्डा क्या दिकू हैं ? भविष्य की चिन्ता में रहकर पड़े–पड़े लात खाऊँ ?''

मिशन छोड़ने के पश्चात् वह बनगाँव के आनन्द पाँडे के वैष्णव आश्रम में चला गया। वहाँ मन की शांति के लिए वह प्रतिदिन तालाब के किनारे बंसी बजाता था। उसी बंसी को सुनकर गुंजा एवं राता दोनों बहनें बीरसा पर मुग्ध हो जाती हैं। राता तो ज़मीन–जायदाद आदि का लोभ दिखाकर बीरसा से शादी भी करना चाहती थी किन्तु बीरसा तो किसी अन्य सूक्ष्मतम अनुसंधान की खोज में था जिसे ये दोनों बहनें नहीं समझ सकती थीं। बनगाँव तो बिरसा के सत्यानुसंधान का एकांतवास पर्व था। इस समय उसका एक अलग ही व्यक्तित्व सामने आता है। सुनारा मुण्डा बीरसा के इसी रूप का उल्लेख करते हुए कहता है– ''बीरसा से सब डरते थे। ऐसा कौन मुण्डा लड़का है? मिशन में साहब से आमने–सामने झगड़कर मिशन को छोड़ आया? ब्राह्मण के घर जाकर गले में जनेऊ पहन लिया। बराबर अस्थिर, अशान्त, चंचल रहता है। क्यों किसी चीज से उसे सुख–शान्ति नहीं मिलती?''

खटंगा में मौसा जी से मार खाने के पश्चात् वह कुण्डी बरतोली में कोम्ता के पास चला जाता है। कोम्ता के पास जाने का निर्णय भी इसलिए लेता है क्योंकि मौसी उससे बहुत प्रेम करती थी और मौसा द्वारा बीरसा के साथ रुखा व्यवहार करने से मौसी और मौसा में अक्सर झगड़ा हो जाता। बीरसा इसी झगड़े का अन्त करने के उद्देश्य से उनके जीवन से चला जाता है।

मुण्डाओं का भगवान

बीरसा को जंगल प्रिय था इसलिए वह जंगल की प्रत्येक जानकारी भी रखता था। जंगल में ही बीरसा का वनदेवी से साक्षात्कार होता है जो उससे मुक्ति की कामना करती है। वनदेवी के विलाप को सुनकर ही बीरसा में मुण्डाओं का भगवान बनने की भावना उत्पन्न होती है। परिणामस्वरुप वह जंगल से बाहर निकल धर्मसंस्कार व मुक्तिदाता के रूप में स्वयं को प्रतिष्ठित करता है। वनदेवी ने उससे कहा था कि तुझे भगवान बनना पड़ेगा। भगवान बनकर स्वयं तो कष्ट पाएगा किन्तु दूसरों को सुख देगा। वनदेवी के ये शब्द सुनकर बीरसा चिल्लाते हुए कहता है– ''दूँगा, सबको सुख दूँगा। हाँ, मैं भगवान बनूँगा, बीरसा भगवान! तब धरती का आबा बन जाऊँगा। हाँ, मुझमें उन चुटिया और नागु के रक्त का रक्त है। मेरे किए मुण्डा जीवित रहेंगे– मेरे कलेजे पर चोट करके, हाँ, मैं अपने खून से जानता हूँ। ...सब मेरा है! यह सारा जंगल मेरा है! मैं धरती का आबा हूँ।'' बीरसा के इस आत्मोन्मोचन के पश्चात् चालकाड़ के प्रायः सभी लोग उसे पागल समझने लगे, माता–पिता भी बेटे के इस रूप से चिंतित होते हैं।

राँची जेल में बंदी होने पर भी बीरसा वहाँ के कमिश्नर के समक्ष स्वयं को 'भगवान' चिन्हित करता है। जब कमिश्नर उससे पूछता है कि तुमने मुण्डाओं को विद्रोह के लिए उकसाया है तो वह कहता है– ''मैं भगवान हूँ। मैंने उनसे धर्म की बातें कहीं।'' इतना ही नहीं जेल में अमूल्य बाबू के साथ जो संवाद होता है उस समय भी बीरसा के हाव–भाव उसके विचित्र व्यक्तित्व के द्योतक हैं जिसका वर्णन उपन्यास में इस प्रकार हुआ है– ''बीरसा धीरे से बोला, सिर हिलाया, कम्बल खींचकर चित हो लेटकर एक हाथ की कोहनी जमीन पर टेककर हथेली पर सिर रखा। उसकी प्रत्येक भंगिमा, सिर हिलाना, देखना, उँगलियाँ हिलाना– सब में अपार आत्मविश्वास, स्थिरता, व्यक्तित्व और... और... और... और एक जान, उस जान में वह कितनी सामर्थ्य लिए था, वही जाने!'' बीरसा के विशाल व्यक्तित्व को देखकर ही तो सभी मुण्डा उसे भगवान मानते थे और यह विश्वास रखते थे कि वह उन्हें जंगल का अधिकार वापिस दिलाएगा। जेल में भी बंदी मुण्डा बीरसा की जंजीरों की आवाज़ सुनकर ही हिम्मत बनाए रखे थे। जिस दिन बीरसा की मृत्यु हुई उस दिन सभी बंदी मुण्डा घबरा गए। उस समय धानी मुण्डा द्वारा कहे गए शब्द– ''जंजीरे घसीटो भगवान, थोड़ा चलो तो, हाय रे, उस जंजीर की आवाज़ सुनकर ही तो हम जिन्दा हैं रे।'' स्पष्ट करते हैं कि बीरसा मुण्डाओं के जीवन में भगवान से कम नहीं था, उनकी सारी आशाएँ इसी बीरसा भगवान पर टिकी थीं।

क्रांतिकारी

बीरसा में क्रांतिकारी रूप को भी देखा जा सकता है। मुण्डाओं में पैदा होकर भी वह उनसे भिन्न था। जिसका उल्लेख लेखिका के इन शब्दों में हुआ है– ''बीरसा इन्हीं विश्वासों में बड़ा हुआ। उसे पता है कि मुण्डा बनकर कई लाख मुण्डा जिस तरह का जीवन बिताते हैं, उसके बाहर के जीवन की बात सोचना भी महापाप है। लेकिन बीरसा वही महापाप कर रहा था। उसके खून में उसके अनजाने कहीं विरोध पनप रहा था, जमा हो रहा था।'' वह मुण्डाओं के ऐतिहासिक जातिगत विश्वास को बनाए रखकर ही उनमें आत्मविश्वास का संचार करता है। मुडाओं में आत्मविश्वास पैदा करने के कारण ही बीरसा तेजी से जनप्रिय हो जाता है। डोन्का अपनी पत्नी साली से कहता है, ''उसे देखकर उसकी बातें सुनकर लगता है कि मेरी छाती में बाढ़ आ गई है साली, जैसे पहाड़ टूटता है। उसके पास जाकर ही मुझे पता चला कि मुण्डा होने में कितना गर्व है।'' बनगाँव में सुगाना मुण्डा जब भरमी, दासो तथा मातरी को बीरसा के पास भेजता है तो इनसे हुई वार्तालाप से बीरसा सामाजिक एवं राजनैतिक घटनास्रोतों को जान पाता है। भरमी द्वारा जब बीरसा को बोध होता है कि सरकार ने सिग्रिड़ा गाँव से उन्हें उखाड़ दिया है तो बीरसा वहीं से सीधा चाईबासा जंगल–ऑफिस में अर्जी दे आता है। आफिस के बाबू लोग उन्हें अपमानित एवं तिरस्कृत करते हैं तो बीरसा तीर से जख्मी कर डालने की धमकी के साथ उन्हें मुण्डाओं से अच्छा व्यवहार करने को कहता है। वह जानता है कि मुण्डा लोगों को आत्ममर्यादा लड़कर हासिल करनी पड़ेगी क्योंकि सरकार द्वारा जो कानून बनते हैं वह मुण्डा, कोल, उराँव

लोगों के बारे में सोचकर नहीं बनते। इसलिए वह मुण्डाओं में विद्रोह का संचार करता है– ''मुण्डा लोगों को दुश्मनों का सामना करना होगा, नहीं तो सैकड़ों बरसों में भी देश को वापस नहीं पा सकेंगे। भयंकर लड़ाई होगी, तभी दुश्मनों का राज खतम होगा, नहीं तो नहीं। आज तमाम लोग हँसते हैं; हजारों मुण्डा लोगों के दिन रोने में बीत जाते हैं। अपना राज हो जाने पर ही मुण्डा हँस सकेंगे।'' बीरसा को अपने परिवार के सुख–दुख स्पर्श नहीं करते थे, उसकी भावनाओं के केन्द्र में तो मात्र मुण्डा समाज और जाति थी और वह उसे मात्र सरकार के शोषण से ही मुक्त नहीं करवाना चाहता था बल्कि जमींदार, जोतदार, दिकू से भी उनकी मुक्ति की कामना करता है जिसके लिए वह मुण्डाओं में विश्वास उत्पन्न करता है कि हमारी संख्या अधिक है और हमारे विद्रोह करने पर हम शोषणकर्ताओं से मुक्ति पा सकते हैं। वह नहीं चाहता था कि उसकी मृत्यु से उनका आंदोलन भी समाप्त हो, इसलिए वह मुण्डाओं को निर्देश देता है कि अदालत में मजिस्ट्रेट के सामने कोई मुझे न पहचाने। वह कहता है– ''मुझे ठग, धोखेबाज कहो, सब लोग गाली दो नुकसान नहीं है। लेकिन तुम सब बच जाओ। मुझे इसी से शांति मिलेगी।'' ऐसा वह इसलिए कहता है ताकि सभी मुण्डा जो जेल में बंद किए गए हैं, उन्हें आज़ादी मिल जाए और उसने जो आंदोलन चलाया है वह मुक्ति पाने से पहल समाप्त न हो।

अतः बिरसा इस उपन्यास का मुख्य पात्र है जिसका व्यक्ति जीवन, समष्टि जीवन में लीन हुआ है। वह मृत्यु के अन्तिम समय तक मुण्डा जाति के अधिकार के लिए आत्मनिवेदित रहा है।

3.3.2 धानी मुण्डा

धानी इस उपन्यास का वह पात्र है जिसने सन्थालों तथा सरदारों की मुलकई लड़ाई में भाग लिया था और मुण्डाओं के उद्धार के लिए बीरसा में मुण्डा जाति के मुक्ति दाता भगवान की छवि को देखा। वह छोटानागपुर क्षेत्र के इतिहास का बहुदर्शी है। लेखिका ने उसके माध्यम से ही मुण्डाओं के इतिहास को पाठकों के सामने लाया है। उपन्यास के आरम्भ में जब बीरसा और अन्य मुण्डा जेल में बंदी थे उनके साथ धानी मुण्डा भी होता है जो अन्य मुण्डाओं को मुण्डा के इतिहास की कहानियाँ सुनाता है। उन कहानियों और संवादों से मुण्डा इतिहास के साथ–साथ धानी के चरित्र की विशेषताएँ भी सामने आती हैं। जैसे जब बंदी मुण्डा उसकी बातें सुनकर उससे पूछते कि तुम्हें सब कैसे पता है तो वह कहता, ''नहीं तो क्या तुमको मालूम होगा? मैं क्या आज का मानुस हूँ रे ? सन्थालों ने जब हूल किया था, तब मैंने पाँच सौ चाँद पार कर दिए थे। मैंने किसे नहीं देखा ? सिद्धू को देखा, कानू को। भागनादिही जाकर मैं उनके हूल में शामिल नहीं हुआ ?, कुचले से विष बनाता था, साँप का विष निकाल लेता था। मेरी तरह विष बनाना किसे आता था, बता तो ?'' धानी के इस संवाद से स्पष्ट हो जाता है कि वह विष निकालने और कुचला बनाने में कुशल था।

सर्वमुखी शोषण में शोषित मुण्डाओं का जीवन उनके गानों में उद्घाटित होता है जिसे धानी द्वारा गाए गए गीत में देखा जा सकता है। जवानी में धानी जो गीत गाता था उसके एक अंश का अर्थ इस प्रकार है–

''बेगार करते–करते मेरे कन्धों से खून बहने लगा है। जमींदार का सिपाही मुझे रात–दिन डाँटता रहता है। मैं दिन–रात रोता रहता हूँ। बेगार करते–करते मेरा यह हाल हो गया है। घर नहीं है, तो मुझे सुख कौन देगा? मैं दिन–रात रोता रहता हूँ। आँसुओं की तरह ही मेरा खून नोनखरा (नमकीन) हो गया है।'' धानी का यह गीत उसी दीन–हीन दशा को स्पष्ट कर देता है। धानी की गल्प–कहानी से आदि जनजाति के जीवन जीने की परम्परा भी स्पष्ट होती है। वह सबको बताता है कि दिकू लोग क्षेत्र दखल करते हैं और मुण्डा एवं सवताल लोग आपस में लड़ते–मरते हैं और फिर अन्य क्षेत्रों में भागना पड़ता है। वह अपने युवा समय का अनुभव बताता है जब छोटानागपुर के राजा के भाई हरनाथ शाही ने अपने गाँवों दूसरे देश के महाजन–ठेकेदारों को बेच दिए जिस कारण मुण्डाओं को अन्य क्षेत्रों में भागना पड़ा। दिकू की प्रवृत्ति का बोध भी धानी के संवादों से इस प्रकार होता है– ''और देख, दिकू घोड़ा चाहता हे, पैसा मुण्डा देगा। दिकू को अपनी पालकी चाहिए, दाम मुण्डा देगा, फिर कन्धे पर ढोएगा! दिकू को जो चाहिए– मुण्डा सब देगा। दिकू के ठेकेदार को साहब की अदालत में जुर्माना होने पर रुपए जमा करेंगे मुण्डा लोग! और बाद में जबरदस्ती रुपए उधार देगा मुण्डा को, और बाद में उसे ही उखाड़ फेंकेगा!'' मुण्डाओं को दिकू से अवगत करवाने में धानी के इन संवादों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

धानी हार से हतोत्साहित होने वाला नहीं है इसलिए वृद्ध धानी मुण्डा सरदारों के आंदोलन के व्यर्थ हो जाने पर निराश नहीं होता, बल्कि मुण्डा जाति के आत्मजागरण के लिए वह एक समर्पित सिपाही की भूमिका निभाता है जिसका बोध उसकी गतिविधियों से हो जाता है। वह मुण्डा जागरण के लिए अंधेरी रातों में भी पथिक की भांति स्वतंत्रता के दीप को लेकर सत्य पक्ष की खोज में अकेला निकल पड़ा था। बीरसा द्वारा बार–बार तिरस्कृत एवं उपेक्षित होने के उपरान्त भी वह बीरसा के मध्य 'भगवान' के आत्मजागरण को जगाने का प्रयास नहीं छोड़ता क्योंकि उसे विश्वास था कि भगवान बनने के सभी लक्षण बिरसा में व्याप्त हैं, जो भगवान मुण्डा लोगों की ओर से मुलकी लड़ाई लड़कर, सब दिकूओं को भगाकर गाँव वालों की बस्ती बना देगा वह कोई और नहीं, बीरसा ही है। इसलिए वह बीरसा से कहता है– ''बीरसा, तू कर सकता है। छोटा–नागपुर तेरे आदि–पुरुषों का बनाया हुआ है। तू भगवान बन सकता है।''

धानी में रणकौशल को भी देख सकते हैं। साहबों के अत्याचारों से जब मुण्डा संत्रस्त और दिशाहीन होते हैं, उस समय धानी मात्र विद्रोह की सम्भावना को ही नहीं टटोलता, बल्कि इस विद्रोह में नई शक्ति का संचार करने की परिकल्पना भी करता है। बीरसा को भगवान बनने के लिए कहना तथा मिशन के प्रति बीरसा के मध्य द्वेष भावना को पैदा करना उसके रणकौशल का परिणाम है। वह बीरसा को कहता है– ''तू वह मिशन छोड़ दे। साहब क्या कहते हैं– मुण्डा जंगली हैं, नंगे रहते हैं। सारे मुण्डा चोर और डाकू हैं। वह मिशन छोड़ दे।'' धानी के इस संवाद से अपनी जाति के प्रति उसकी गंभीरता का बोध भी होता है।

1895 में जब बीरसा जेल में था तब बीरसा के भावावेश का प्रसार करने वाले अनुगामियों में वृद्ध धानी मुण्डा का स्थान प्रमुख है। बीरसा की अनुपस्थिति में जब दो साल फसल नहीं हुई, कर्ज–उधार नहीं मिला, लगान बढ़ गए, बेगारी का अधिक शोर मचा तो उस समय भी धानी ने मुण्डाओं को जमींदारों के घर से धान लेने की बुद्धि दी। जिस व्रिदोह की बीज परम्परा को संचारित करने का व्रत लेकर धानी बीरसा के उत्थान से मृत्यु तक शांत, धीर–गंभीर चित से लगा था उसका अवसान 9 जून 1900 ई. को हुआ जब बीरसा का शवदाह हो जाने के पश्चात् जेल में ही उसकी गोद में अट्ठारह वर्षीय बिरसारत लड़के सुनारा की मृत्यु हुई। सुनारा के अनुरोध पर वह निराशा के गहन अंधकार के मध्य भी उसकी अंतिम इच्छा को पूर्ण करने के लिए उलगुलान का गीत गाता है जिसका भावार्थ है– ''ओ भाई, ओ बहनों, ओ बच्चो, भागो, जान बचाओ! आँधी उठी है। ओ भाई ओ बहनो। आँधी धूल की छाती में, आकाश को ढके कुहासे में देखो, अपना देश वह छीन ले गए। ओ भाई, ओ बहनों! बाद में फिर राह नहीं मिलेगा रे। सब अँधेरा–अँधेरा हो रहा है। ओ भाई, ओ बहनो...!'' इस गीत को गाते जब धानी रूक गया तब सारे मुण्डा के मुख से एक साथ एक संगीत निकलता है जो इस बात का प्रमाण था कि इस दुख से उलगुलान का अंत नहीं, यह जागकर रहेगा। 91 वर्षीय धानी इस गीत के माध्यम से पुनः आशा को धारण किए अन्य मुण्डाओं में इसका संचार कर देता है।

अतः मुण्डाओं की स्वाधीनता की लड़ाई के स्वप्न में अपने बाल सफेद करने वाला धानी मुण्डा, बीरसा को मुण्डाओं के मुक्तिदाता 'भगवान' के आसन पर प्रतिष्ठित करने के लिए किशोर उम्र से ही छाया की भांति उसका पीछा करता है और अन्ततः उसके स्वप्न को हम पूरा होते भी देखते हैं जब बीरसा धर्म संस्कार का त्याग करके गाँव–गाँव तीर भेजना आरम्भ करता है तथा 'उलगुलान' आंदोलन के रूप में अपने विरोध की शुरूआत करता है। बीरसा तो उपन्यास का नायक है किन्तु उसे नायक बनाने में धानी मुण्डा की महत्वपूर्ण भूमिका रही है इसलिए धानी को भी उपन्यास के अहम पात्रों में गिना जा सकता है। वह पात्र जिसके बिना प्रमुख पात्र बीरसा के चरित्र को गति मिलना कठिन था।

3.3.3 अमूल्य बाबू

राँची के अनाथाश्रम में पला अमूल्य, चाईबासा के जर्मन मिशन में पढ़ता था। बीरसा के जर्मन मिशन में दाखिला लेने के उपरान्त अमूल्य की उससे मित्रता हो जाती है। इसी मिशन में वह अन्य मुण्डा लड़कों के सम्पर्क में भी आता है। उसके भीतर जातिगत भेद–भावना नहीं थी इसलिए वह सबको अपना समझता था किन्तु मुलकई लड़ाई के उत्ताप समय में अमूल्य को बंगाली होने के कारण मुण्डा युवकों की संकीर्ण मानसिकता के चलते उपेक्षित होना पड़ा। यहाँ तक कि वे बीरसा को भी अमूल्य से दूरी बनाने को कहते हैं– ''तू अमूल्य के साथ क्यों मिलता–जुलता है? वह बाबू है, दिकू बनेगा। वह मुण्डा लोगों का दुश्मन है। कोई बाबू लड़का किसी दिन मुण्डा लड़कों का दोस्त नहीं हुआ। हो ही नहीं सकता।'' अन्य मुण्डा तो अमूल्य का विरोध करते

हैं किन्तु बीरसा उनकी इस मानसिकता का प्रतिरोध करता है। अमुल्य को बीरसा की सहानुभूति तो मिलती है लेकिन पूर्ण विश्वास नहीं मिलता, जिसका बोध बीरसा द्वारा अमूल्य को कहे गए इन शब्दों से होता है– ''तुम आज अच्छे हो। जब मिशन से निकलोगे, जब डॉक्टर बनोगे, तब क्या अच्छे रहोगे? मेरे साथ बात करने में भी शरम आएगी!'' चाहे बीरसा तथा अन्य मुण्डा अमुल्य बाबू पर पूर्ण विश्वास नहीं कर पाते, फिर भी अमुल्य उनके प्रति कोई द्वेष भावना नहीं रखता।

उलगुलान आंदोलन के समय जब बीरसा को जेल हुई थी और उसे राँची जेल में बंदी बनाकर रखा गया था उस समय बीरसा से पूछताछ करने के लिए एक दुभाषिए व्यक्ति की आवश्यकता होती है तब इस कार्य के लिए जिस मेडिकल असिस्टेन्ट को बुलाया जाता है वह कोई और नहीं बीरसा का बंगाली मित्र अमूल्य बाबू ही था। जेल का कमिश्नर इस सत्य से अवगत नहीं था कि अमूल्य और बीरसा दोनों जर्मन मिशन में सहपाठी रह चुके हैं। दीर्घ समय के पश्चात् दोनों की यह मुलाकात हो रही थी यहाँ बीरसा उसे सरकारी अफसर के रूप में देखकर उसकी भर्त्सना दिकू कहकर करता है, वहीं अमूल्य उसके प्रति संवेदना रखता है। जब वह रात को उससे मिलने आता है तो बीरसा उससे रूखाई से पूछता है कि तुम क्यों आए, तो उस समय वह कहता है– ''तुम्हें देखने।... जिससे कि तुम बीमार न पड़ो, यह देखना मेरी खास डयूटी है। इसीलिए आया हूँ।'' इतना ही नहीं जब बीरसा उसे गुप्त रूप से सरकारी संचालन की जानकारी बताने को कहता है, तो वह सहमत हो जाता है और दो–चार दिन में ही मुण्डाओं के प्रति सरकार की रणनीति की जानकारी हासिल करके बीरसा को सब बता देता है।

अमूल्य व्यवहार से समाजसेवी मानसिकता वाला व्यक्ति था जिसका बोध लेखिका ने उपन्यास के आरम्भ में ही किया है– ''डिप्टी–सुपरिटेंडेण्ड, क्रिस्तान लड़का। अच्छी तनख्वाह पाता है। लेकिन राँची शहर में हमेशा मुहल्ले–मुहल्ले घूमता है, सबके साथ मिलता–जुलता है, समाज–सेवा करने जाता है।'' अमूल्य में जातिगत भेद–भावना नहीं थी इसलिए मुण्डाओं के प्रति भी उसका झुकाव था। यह मुण्डाओं के प्रति उसकी सहानुभूति ही थी जिसके चलते वह आदिवासी हमदर्द बैरिस्टर जैकब को पत्र भेजकर मुण्डाओं के साथ हो रहे अत्याचार की सूचना देने का जोखिम उठाता है तथा कलकत्ता के 'अमृतबाजार पत्रिका', 'द बेंगाली' और 'द हिन्दू पेट्रिएट' समाचार पत्रों में बीरसा के विद्रोह की खबरें भी भेजता है।

बीरसा को जेल में जहर देने से मृत्यु हुई थी किन्तु सरकारी विवरण में उसकी मृत्यु हैजे द्वारा बताई गई। अमूल्य इस सत्य को भी बैरिस्टर जेकब तक पत्र द्वारा पहुँचाता है– ''बीरसा के सम्बन्ध में सरकारी विवरण तैयार हो गया है। उसमें कहा गया है कि जेल से कचहरी जाने के रास्ते में बीरसा ने भी बाहर कुछ खा लिया था। लेकिन गार्ड और कैदियों से कड़ी जिरह करने पर पता चल सकता है कि बीरसा ने सिर्फ माथा और गर्दन धोने के लिए पानी मांगा था– और वह पानी भी हवलदार के लोटे से। पानी लेते–न–लेते कमर की जंजीर

खींचकर गार्ड ने कहा था : 'वक्त हो गया है' इसलिए बीरसा ने वह पानी भी इस्तेमाल नहीं किया।'' वह जेकब को यह भी बताता है कि बीरसा 30 मई से बीमार था और इस दौरान उसकी चिकित्सा और आहार, सबका निर्णय स्वयं जेल–सुपरिटेंडेण्ट ने किया है। अमूल्य द्वारा बीरसा की मृत्यु सम्बन्धी सारी जानकारी आदिवासी से सहानुभूति रखने वाले वकील जेकब को देना, उसके नेक दिल, संवेदनशील तथा मानवता प्रेमी व्यक्ति होने का परिचायक है। वह मुण्डाओं की जीत और इंसाफ की कामना करता था किन्तु मुण्डाओं की पराजय और बिरसा की मृत्यु ने उसे हताश कर दिया। उसका विवेक और मूल्यबोध मुण्डाओं से एकात्म हो चुके थे इसलिए वह नौकरी से त्याग पत्र दे देता है। जेकब द्वारा त्याग पत्र का कारण पूछने पर वह कहता है– ''क्यों, यह क्या मुझे भी खुद खाक–धूल पता है? मेरा कुछ भी तो नहीं है! मैं इसी शिक्षा–व्यवस्था, समाज–व्यवस्था का आदमी हूँ। यह व्यवस्था न तो देती है मौलिक मानवीय अधिकार, न सिखाती है विवेक–बोध। मुझे अब और कुछ छोड़ने को नहीं रहा! मैं अब और कुछ कर नहीं सकता। मैं न तो तीर छोड़ सकता हूँ, न जानता हूँ बलोया चलाना। मैं इतना ही कर सकता था!'' अमूल्य द्वारा कहे ये शब्द वास्तव में उसका अप्रत्यक्ष रूप से मुण्डाओं को दिया गया उसका समर्थन है।

3.3.4 साली

साली वृद्ध डोन्का मुण्डा की युवा पत्नी है जिसका डोन्का से अनमेल विवाह हुआ है। साली से पहले उसकी दो पत्नियाँ मर चुकी थीं। साली के पिता ने डोन्का के साथ उसका विवाह मात्र इसलिए कर दिया कि वह मुखिया था। उसके घर में साली को खाने, पहनने की सुविधा मिल जाएगी। एक अभावग्रस्त मुण्डा पिता के लिए अपनी बेटी के लिए इससे अच्छा वर और क्या हो सकता था किन्तु साली के सारे अरमान टूट गए– ''छुटपन से साली सुनती आई थी कि वह बहुत सुन्दर है। उसका ब्याह होगा, देखने लायक जमाई आएगा। लेकिन डोन्का के साथ ब्याह होने से मन में सुख नहीं रहा। ब्याह का कोई सुख न मिला। लेकिन पेट के लिए भात, पहनने को कपड़ा, सिर के लिए तेल का सहारा बड़ा सहारा था। बूढ़े वर का दुःख साली भूल गई।'' साली सुविधाओं के लिए अपने हृदय की वेदना तो भूल जाती है किन्तु डोन्का के बीरसाइत होने पर जब वह अन्य बीरसाइतों को अपने घर बुलाता और साली को भात राँधने के लिए कहता तो साली धीरे–धीरे क्रोध करने लगी। क्रोध का कारण डोन्का का अपने परिवार तथा खेतों को भूल पूर्ण रूप से बीरसा को समर्पित होना भी था।

डोन्का की अवज्ञा उसे अपने भाग्य को कोसने पर मजबूर करती है, ''उसने गालियाँ देना शुरू किया– अपने बाप को, डोन्का को, भाग्य को।'' डोन्का से रूष्ट होने पर जब वह बीरसा के सामने ही पति पर क्रोध करने लगती है तब बीरसा की सम्मोहिनी से वह डोन्का पर क्रोध ही नहीं करती बल्कि स्वयं भी बीरसा के लिए कार्य करती हैं। वह पति से कहती है, ''मैं भी कुसुम के फूल से कपड़े पीले रंग लूँगी। पति–पत्नी जिस तरह रहते हैं, वैसे नहीं रहूँगी ? मैं भी जाकर चालकाड़ से उसकी बातें सुन आऊँगी।''

साली बहुत ही साहसी और चतुर नारी थी। जब बीरसा जेल में था उस समय वह बीरसा के उलगुलान आंदोलन के लिए कार्य करती है। गर्भवती महिलाओं की तरह भरा–भरा शरीर लेकर अकेले जंगलों में घुम–घुमकर मुण्डाओं के लिए हथियार लाती थी। अपनी चतुराई से ही वह भरत दरोगा की आँखों में धूल झोंककर मानी पहानी को तीर हस्तांतरित कर देती है। साली को विश्वास है कि जो भी कठिनाई वे देख रहे हैं वह बीरसा के आने से समाप्त हो गई। वह इसी विश्वास के साथ जी रही थी। जब वह धानी से जंगल में तीर लेने आती है तब धानी उससे कहता है कि इतने अँधेरे में कैसे जाओगी। उस समय वह कहती है– ''अब अँधेरे में नहीं डरती। किसी भी चीज़ से नहीं डरती। पहले डरती थी। अब यही लगता– ये दिन भी दिन नहीं हैं, अब जो हो रहा है, जिस तरह दिन कट रहे हैं, सब मिट जाएगा! सत्य रहेगा केवल बीरसा के लौट आने का दिन। बीरसा के आने से सब बदल जाएगा!''

जेल से भागे धानी मुण्डा को जब साली शरण देती है तो शंकावश दारोगा उसका पीछा करता रहता था। दारोगा द्वारा की गई पूछताछ का साली निडरता एवं चतुराई से सामना करती है– ''कितनी बार बताया कौन, क्या, मुझे कुछ नहीं पता। मुझे क्या पता कि वह बीरसाइत हो गया।... पता होता तो घर में घुसने देतीं? धानी मिले तो मैं उसके पैर तोड़ दूँगी। तुम्हें तो बाद में खबर दूँगी।'' दरोगा के सामने धानी पर क्रोध करना और बीरसाइतओं से अपना कोई नाता न बताना उसके साहस और चतुराई का ही परिचय देता है।

बीरसा जब साली से उसका बच्चा माँगता है तो वह अपना नन्हा–सा बच्चा भी बीरसा को सौंप देती है जिसका नाम बीरसा ने परिबा रखा। साली बीरसा को बताती है कि ''पहले लोग बहुत हँसते थे। तुम औरतें! तुम जाकर भगवान का करोगी? पुलिस तो दो बरस से आदमियों के पीछे फिर रही है। हम औरतें काम करती थीं। अब कोई नहीं हँसता।'' साली का उक्त कथन स्पष्ट करता है कि जब पुरुष उलगुलान के लिए कार्य नहीं कर पा रहे थे तब ये औरतें इस उलगुलान का कार्य करती हैं।

अतः वृद्ध डोन्का की पत्नी साली अपने दाम्पत्य जीवन में चाहे अतृप्ति रही है किन्तु बीरसा के उलगुलान में शामिल होकर वह एक नये रूप में चरितार्थ होती है। इसलिए यौवन वेदना कहीं भी उद्घाटित नहीं हो पाती। उसकी क्रोध ज्वाला तो विरोधी अंग्रेजों के कार्यों के प्रति परिचालित हुई है।

3.4 सारांश

'जंगल के दावेदार' के मूल केंद्र में मुंडाओं के अस्तित्व का संकट और उससे मुक्त होने के लिए उनके प्रयास हैं बीरसा इस मुक्ति संघर्ष का केन्द्र है और धानी, साली, अमूल्य आदि उसके इस संघर्ष में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सहायता करने वाले पात्र हैं जिनके सहयोग के बिना बीरसा के उलगुलान आंदोलन को गति मिलना सम्भव न था। धानी ने तो बीरसा को मुण्डाओं का भगवान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

साली उस समय बीरसा के उलगुलान में सहयोग देती है जब अन्य मुण्डा पुरुष यह कार्य पूर्ण रूप कर नहीं पा रहे थे। अमूल्य मुण्डा न होने पर भी बीरसा को गुप्त रूप से सहयोग देता है। अतः यह सभी पात्र इस बीरसा के उलगुलान में अपनी अह्म भूमिका को अदा करते हैं।

3.5 कठिन शब्द

1. उलगुलान
2. दिकू
3. आत्मोन्नयन
4. सूक्ष्मतम
5. एकांतवास
6. जोतदार
7. मुलकई
8. हतोत्साहित
9. हस्तांतरित
10. आत्मोन्मोचन

3.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र1) 'जंगल के दावेदार' के प्रमुख पात्र का चरित्र–चित्रण कीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र2) वृद्ध धानी मुण्डा के चरित्र की विशेषताएँ बताइए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र3) साली एक साहसी नारी है। स्पष्ट कीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र4) अमूल्य बाबू का चरित्र–चित्रण करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

3.7 पठनीय पुस्तकें

1. जंगल के दावेदार– महाश्वेता देवी।
2. आदिवासी भाषा और शिक्षा– सं. रमणिका गुप्ता।
3. झारखंड के आदिवासियों के बीच– वीर भारत तलवार।
4. आदिवासी विकास, उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ– एस.एन. चौधरी, मनीषा मिश्रा।
5. आदिवासी संघर्ष गाथा– विनोद कुमार।
6. आदिवासी कौन– सं. रमणिका गुप्ता।
7. आदिवासी विकास : एक सैद्धान्तिक विवेचन– डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा।
8. आदिवासी और उनका इतिहास– हरिश्चन्द्र शाक्य।
9. आदिवासी विकास से विस्थापन, सं. रमणिका गुप्ता।

……………………………

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**
Semester-III **Lesson No. 4**

भारतीयता की अवधारणा और 'गाइड'

4.0 रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 भारतीय की अवधारणा और 'गाइड'

4.4 सारांश

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.6 पठनीय पुस्तकें

4.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप भारतीयता की अवधारणा को समझ सकेंगे और 'गाइड' उपन्यास में कौन सी भारतीय मान्यताओं को अपनाया गया है इसकी जानकारी भी प्राप्त कर सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना :

भारतीयता से अभिप्राय है– "भारतीय होने की अवस्था, भाव या भान। भारत की संस्कृति मूल्यों, मान्यताओं आदि के प्रति निष्ठा।" दूसरे शब्दों में भारतीय संस्कृति परम्पराओं, रीति रिवाजों इत्यादि का पालन करना ही भारतीयता है। इसमें अपने पूर्वज़ों की परंपराओं व लोकाचार, भाव, खानपान, रहन–सहन, शादी–ब्याह परिवार, संस्कार, पूजापाठ, अपने–पराये की भावनाएं आदि इन सब का अनुकरण शामिल रहता है। विविधता के बीच से सबको जोड़ने वाले नये संस्कारों की खोज और निर्माण, दरिद्रता और कंगाली से सम्पन्नता की ओर जाना, साथ ही ऊँच नीच के भेदभाव को मिटाकर समता स्थापित करना इत्यादि इसके

मूल में रहती है। वस्तुतः परिवर्तन के लिए सतत संघर्ष ही वास्तविक भारतीयता है क्योंकि इसी से समाज में सहृदयता का विकास होता है।

4.3 भारतीयता की अवधारणा और 'गाइड'

'गाइड' दक्षिणी भारत के सांस्कृतिक आंचल" को फहराता एक ऐसा उपन्यास है जिसमें वर्णित सामाजिक मान्यताएं, परंपराए, रीति–रिवाज, तीज–त्यौहार, लोक–विश्वास, कलात्मक विशिष्टताएं, खान–पान, रहन–सहन, धार्मिक आस्थाएं इत्यादि भारतीयता का परचम लहराती हैं। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित भारतीयता का अध्ययन सामाजिक मान्यताओं, परंपराओं, रीति रिवाजों, लोक विश्वासों, धार्मिक मान्यताओं एवं मानव भावनाओं के संदर्भ में किया जा रहा है :

सामाजिक मान्यताएं: सामाजिक शब्द समाज+इक प्रत्यय से बना है जिसमें समाज एक स्थान पर रहने वाले एक ही प्रकार का व्यवसाय आदि करने वाले लोगों के समूह का नाम है। यह एक ऐसा समूह है जिसमें सभी प्राणी एकत्र होकर रहते हैं, खाते–पीते, जीवन यापन की सुख सुविधाओं की उपलब्धि का प्रयास करते हैं और सामाजिक का अर्थ है समाज के लिए 'मान्यता' शब्द का शब्दिक अर्थ है मान्य होने का भाव, स्वीकृति का आदर्श। अतः सामाजिक मान्यता से अभिप्राय समाज में वहन करने वाले ऐसे गुणों की स्वीकृति जो पीढ़ी दर पीढ़ी थोड़े–बहुत युगानुरूप बदलती हुई समाज में प्रचलित रहती हैं। सामाजिक मान्यता ही समाज का ढांचा होती है और उस समाज विशेष की संस्कृति कहलाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में कुछ ऐसी मान्यताओं का उल्लेख हुआ है जो पूरे भारत में भी उसी रूप में मानी जाती हैं। भारतीय समाज में यह धारणाएं हैं कि यदि कोई बच्चा या बड़ा सही रास्ते पर न चले तो उसे किसी पीर पैगम्बर, गुरू, ऋषि–मुनि के आशीर्वाद की आवश्यकता है और उनका आशीर्वाद ही उसे सही दिशा दे सकता है। आलोच्य कृति में वेलान की बहन जब शादी करने से इंकार करती है तो वेलान राजू को पहुँचा हुआ संत मानकर उसे राजू के पास आशीर्वाद हेतु ले आता है और कहता है, "मैं अपनी बहन को ले आया हूँ" और उसने चौदह साल की एक लड़की को धकेलकर आगे कर दिया। फिर यह मान्यता भी है कि संत महात्मा का आशीर्वाद पाने हेतु कोई न कोई भेंट भी अवश्य ही समर्पित करनी चाहिए वेलान भी जब अपनी बहन को आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए लाता है तो वह स्वामी के लिए भेंट भी लाता है जैसे कि इस पंक्तियों से पता चलता है : ''राजू एक चबूतरे पर बैठ गया। वेलान ने उसके आगे केलों, खीरों, गन्ने के टुकड़ों, तले हुए काजूओं से भरी एक टोकरी और दूध से भरा एक ताम्बे का बर्तन रख दिया।" राजू ने पूछा, "यह किस लिए है ?" श्रीमान, अगर आप यह भेंट स्वीकार कर लें तो हमें बहुत खुशी होगी।" यही नही इस समाज में फसल की कटाई पर और तमिल के नये वर्ष के आरंभ होने पर भी देवताओं और ऋषि–मुनि, साधुओं का भाग निकाला जाता है। इसी प्रथा की ओर संकेत करती उपन्यास की यह पंक्तियां

उद्धृत हैं जैसे– जनवरी में फसल कटती थी जब उसके भक्त उसे गन्ना और गन्ने के रस में पकी चावल की खीर लाकर भेंट करते थे और जब वे फल और मिठाइयाँ लाकर देते तो समझ जाता कि तमिल का नया वर्ष शुरू हो गया है।" इससे पता चलता है कि नये वर्ष का आरंभ फल और मिठाइयाँ चढ़ाकर किया जाता था। इस समाज की यह मान्यता भी है कि केवल नेक और महान आदमी ही समाज में परिवर्तन ला सकते हैं इसलिए सूखे की स्थिति हो जाने पर वे कहते हैं – अगर यही एक भी नेक आदमी होगा तो उसकी खातिर इन्द्र देवता ज़रूर बरसेंगे, इससे सारी दुनिया को लाभ होगा।" इन लोगों की यह मान्यता भी थी कि बच्चों के छोटे–मोटे रोग भी स्वामी जैसे लोग चुटकी में दूर कर सकते हैं। इसलिए माताएँ उसके पास उन बच्चों को लेकर आती थीं जिन्हें रात को नींद नहीं आती थी। वह उनका पेट टटोलकर एक जड़ी पीसकर खिलाने का आदेश देता हुए कहता, "अगर बच्चे को आराम न हो तो फिर मेरे पास लाना"। लोगों में यह आस्था पैदा हो गई थी कि वह जिस बच्चे के सर को अपने हाथ से सहला देता है, वह चंगा हो जाता है।

वर्ण व्यवस्था संबंधी भी इस क्षेत्र की मान्यताएं पूरे भारत में किसी न किसी रूप में पाई जाती हैं। समाज में पंड़ितों का विशेष आदर था वे लोग कई प्रकार की भविष्यवाणियाँ करते थे और लोगों की भी उनके प्रति विशेष आस्था थी इसलिए प्रत्येक अवसर पर वे उनसे विचार–विमर्श भी करते और उनकी भविष्यवाणियों पर विश्वास भी करते थे। क्योंकि दक्षिण भारत की नृत्य परंपरा की अपनी गरिमा है इसलिए वहां पर देवदासियों की प्रजातियाँ भी उस समाज का अंग हैं और लोग उन्हें निम्न वर्ग से मानते हैं और समाज में उन्हें वेश्या का दर्जा दिया जाता है जैसे कि निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होता है – "मैं देवदासियों के एक परिवार में पैदा हुई थी, जिसने परम्परा से मन्दिरों में नृत्य करने के लिए अपने को उत्सर्ग कर दिया था। मेरी माँ, मेरी दादी और उनसे भी पहले उनकी माँ और दादी – सभी देवदासियाँ थी। जब मैं बच्ची थी, उस वक्त से ही गाँव के मन्दिर में नाचने लगी थी। तुम तो जानते हो हमारी जात को लोग किस नज़र से देखते हैं।" लेकिन लोग हमें वेश्या समझते हैं।" नाचने वालों के प्रति लोगों के किस तरह के भाव है इनका पता राजू की माँ के शब्दों से चलता है जैसे, "ओह नर्तकी ! हो सकता है, लेकिन नाचने वाली लड़कियों से कभी सरोकार न रखना। यह बड़ी खराब होती हैं। यहां तक कि राजू की मां उसे साफ–साफ शब्दों में कह देती है, "तुम अपने घर में एक नाचने वाली लड़की को नहीं रख सकते।" इस प्रकार जात–पात का बंधन न होते हुए भी वर्ग भेद इस समाज का अभिन्न अंग है।

इस समाज में भवन निर्माण बड़ा साधारण है एक कमरा और एक रसोई ही पूरे परिवार के लिए काफी थी। अधिकतर काम चबूतरे से लिया जाता था उपन्यास में साधारण समाज के भवनों का वर्णन इस प्रकार है, "हम सब तो एक ही कमरे में रहने के आदी थे और हमें इसमें कभी कोई बुराई नजर नहीं आई

थी। इसमें ज़्यादा की ज़रूरत भी नहीं महसूस हुई थी। मर्द मेहमान आकर बाहर के चबूतरे पर बैठते थे। अन्दर का कमरा माँ और उनसे मिलने के लिए आने वाली स्त्रियों के लिए रहता था। रात को सोने के लिए हम लोग कमरे में जाते थे। अगर मौसम ज़्यादा गर्म होता तो हमलोग चबूतरे पर सोते। वह बड़ा कमरा अन्दर जाने का रास्ता भी था बैठक, कपड़े बदलने और पढ़ने का कमरा भी था।" नहाने के लिए आंगन में खुली छत वाला स्नानगृह बना रहता था। प्रत्येक गांव में एक सांझा चबूतरा बना रहता था जहाँ पर पूरे गांव की राजनीति तय होती थी। निम्न पंक्तियों के द्वारा चबूतरे की सार्थकता स्वतः सिद्ध होती है – गाँव के बीचो बीच एक चबूतरे पर बैठकर लोग वर्षा के बारे मे बहस कर रहे थे। एक पुराने पीपल के पेड़ के गिर्द ईंटों का चबूतरा बना था। यह चबूतरा एक प्रकार से टाऊन हॉल का काम देता था। एक तरफ बैठकर मर्द स्थानीय समस्याओं पर सोच विचार करते थे, दूसरी तरफ सर पर टोकरियाँ ढोने वाली औरतें आराम करती थी, बच्चे एक दूसरे के पीछे भागते थे और गांव के कुत्ते सुस्ताया करते थे।

सारे समाज को एक दूसरे के साथ जोड़ने के लिए बैलगाड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। चाहे अब आधुनिकता के आगमन के साथ रेल सेवा के साथ यह क्षेत्र जुड़ गया था पर फिर भी सड़कों पर बसों के बजाए बैलगाड़ी अधिक चलती थी। भारत के इस दक्षिणी छोर का मुख्य व्यवसाय कृषि का था लोग अपने जीवन यापन के लिए मज़दूरी भी करते थे। लोगों द्वारा पैदा किया गया अन्न गांव से शहर की मंडियों में पहुँचाया जाता था। गेहूँ, चावल और नारियल की फसल भरपूर रहती थी। गांव के बच्चे स्कूल न जाकर मवेशी चराने का कार्य करते थे। दुकानदारी भी बड़े छोटी स्तर की होती थी। आजीविका हेतु गाइड का काम भी किया जाता क्योंकि बहुत से ऐसे दर्शनीय स्थल पूरे समस्त भारत के यात्रियों को आकर्षित करते जिनसे गाइड का धंधा भी अच्छा चल निकला था। आम लोग अच्छे स्कूलों में बच्चों को शिक्षा नहीं दिला सकते थे इसलिए कुछ पढ़े–लिखे वृद्ध घरों में ही बच्चों को शिक्षा देते थे जिन्हें 'चबूतरा' स्कूल कहा जाता था क्योंकि एक भ्रद व्यक्ति के घर के चबूतरे पर क्लासें लगती थी। लोग मेहनत से अपना परिवार पालते थे पर फिर भी भाग्यवादिता पर उनका पूरा विश्वास था। उपन्यासकार ने वेलान के माध्यम से इस बात पर प्रकाश डाला है जैसे वेलान ने अपना मस्तक छूकर कहा, "यहाँ जो लिखा है वही होगा। हम लोग उसे रोक भी कैसे सकते हैं।"

'अतिथि देवो भव' भारतीय समाज का एक शाश्वत नारा है जिसका पालन इस उपन्यास में भी हुआ है। इस समाज में लोग अतिथि की हर इच्छा तो पूरी करते ही थे इसके साथ ही उसकी हर सुविधा का ध्यान भी रखा जाता था। रोज़ी कथानायिका चाहे राजू के जीवन में इतना परिर्वतन लेकर आती है पर जब वह उसके घर आती है तो उसकी माँ उसके आतिथ्य में कोई कमी नहीं रखती जैसे कि उपन्यासकार ने लिखा है – "माँ रसोई में व्यस्त थी, लेकिन एक मेहमान का स्वागत करने की रस्म अदा करने के लिए किसी तरह बाहर निकल आई थीं। मेहमान तो मेहमान थी चाहे वह कोई 'रोज़ी' ही क्यों न हो।"

अतः सामाजिकता की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास भारत के हर क्षेत्र की सामाजिक मान्यताओं, विचारधाराओं और मूल्यों का प्रेषण करता है।

धार्मिक मान्यताएं :– धर्म का महत्व मानव संस्कृति में अद्वितीय है। धार्मिक विश्वास और श्रद्धा ही समूह में सुरक्षा और सहयोग की भावना को जन्म देते हैं। धार्मिक क्रियाओं में अतीन्द्रिय दैवी शक्ति के प्रभावों की अनुभूति तथा उनके प्रति विश्वास और मान्यताओं को किसी भी समय और समाज की धार्मिकता के रूप में जाना जाता है। धर्म मानव को श्रुति, स्मृति, सदाचार और संतोष का मार्ग दिखाने वाला भाव है। यह सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देता है। संयम नियम का पालन इसका मूल तत्व है। धर्म संबंधी विश्वासों को अपनाते हुए जीवन यापन करना धार्मिक मान्यताओं के अंतर्गत आता है। बहुधर्मी होते हुए भी भारत में धर्म संबंधी कुछ ऐसे विश्वास हैं जो पूर्ण भारत को एक कर देते हैं जैसे ईश्वर की सर्वव्यापक सत्ता पर विश्वास, तीर्थ यात्रा, अवतारवाद के प्रति आस्था, स्वर्ग–नरक के प्रति चिन्तन आदि। आर. के. नारायण कृत 'गाइड' उपन्यास में यह धार्मिक मान्यताएँ पाठकों को प्रदेश विशेष का नहीं अपितु ईश्वर के प्रति समस्त मानव जाति के भावों से परिचित कराती हैं जैसे समस्त समाज में यह भाव हैं कि यदि अपनी कमाई का कुछ भाग अपने आराध्य के प्रति समर्पित कर दिया जाए तो कमाई में भी बरकत होगी और ईश्वर का आशीर्वाद भी मिलेगा। जैसे कि वेलान से भेंट लेने के पश्चात् राजू ने धार्मिक भाव से टोकरी में रखी भेंट मूर्ति के चरणों में रखकर कहा, "यह इस देवता की पहली भेंट है। देवता को पहले भोग लगाकर हम लोग बचा–खुचा खा लेंगे। जानते हो ईश्वर को भेंट चढ़ाने के बाद खाने की चीजे कम होने के बजाय कितनी बढ़ती हैं।" राजू इस विश्वास को दृढ़ करने हेतु वेलान को देवक नामक व्यक्ति की कथा सुनाता है जो प्रतिदिन भीख मांगा करता था और अपनी कमाई को खर्च करने के पहले देवता के चरणों में रख देता था।

प्रातः काल नहा धोकर ईश्वर के सम्मुख नतमस्तक होने का भाव तो हम सब में एक सा है अतः यह हम अपने बच्चों को भी सिखा देते हैं ताकि उनकी ईश्वर के प्रति आस्था बनी रहे। इसके विषय में राजू वेलान से कहता है, "मैं कुँए पर जाकर स्नान करता, माथे पर पवित्र भस्म मलता फिर दीवार पर टंगी देवताओं की तस्वीर के आगे कुछ देर हाथ जोड़कर ऊंचे स्वर में प्रार्थना के गीत गाता।''

भारत में पीपल के पेड़ को धर्म की दृष्टि से बहुत महत्व दिया गया है फिर दक्षिण भारत में इस पवित्र पेड़ के नीचे धार्मिक मूर्तियाँ रखने का विधान भी है जिसके विषय में रचनाकार लिखता है, "एक पुराने पीपल के पेड़ के गिर्द ईंटों का चबूतरा बना था, जिसके नीचे पत्थर की मूर्तियां रखी थी। लोग अक्सर इन मूर्तियों को तेल लगाकर उनकी पूजा करते थे।" इसका अर्थ है कि मूर्ति – पूजा का प्रचलन इस समाज में भी था।

वहाँ के मंदिरों में दीवारों पर चित्रकला हुई रहती जिन पर रामायण, भागवत तथा शिव संबंधी कई

दृश्य अंकित रहते और इसके साथ ही मंदिरों में भी इन देवों की मूर्तियाँ स्थापित की जाती थी। राजू गाइड का काम करते हुए इन देवों की मूर्तियों और चित्रों का परिचय यात्रियों को देते हुए कहता है, "अगर आप गौर से देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि रामायण की सारी घटनाएँ दीवारों पर खुदी हुई है, मैंने उन्हें खम्भे पर बनी पत्थर की प्राचीन मूर्ति दिखाई जिसमें शिव भगवान गंगा को अपनी जटाओं में लपेटे हुए थे।" इस समाज में हिन्दू धर्म के अंतर्गत भगवान राम, कृष्ण और शिव की भक्ति की परंपरा थी तो दूसरी ओर ईसाई धर्म भी लोग अपना रहे थे। लोगों में ऐसी धारणा भी विद्यमान थी कि ईसाई धर्म से सम्बन्धित स्कूल लोगों को ईसाई बनाने की फिराक में रहते हैं और हिन्दू धर्म का अपमान करते हैं इसलिए वे अपने बच्चे इन स्कूलों में पढ़ाने से कतराते थे और कहते थे," मैं अपने लड़के को वहाँ नहीं भेजूंगा लगता है वे लोग हमारे लड़कों को ईसाई बनाने की कोशिश करते हैं और सारा वक्त हमारे देवी देवताओं का अपमान करते हैं"। इस समाज में हिन्दू धर्म और ईसाई धर्म के लोग रहते थे और अपने–अपने विश्वास तथा धारणानुसार अपने पादरी एवं गुरू या स्वामी को सर्वशक्तिमान तथा पारिवारिक सुख–शान्ति का मसीहा समझते जैसे कि राजू के छिप जाने पर जब वह मंदिर में नहीं मिलता तो उसके भक्त उसके विषय में कहते हैं – "वे महान व्यक्ति हैं। कहीं भी जा सकते हैं। उन्हें हजारों काम हो सकते हैं। उनके सामने कुछ मिनट बैठने से ही हमारे परिवार में कितना परिर्वतन आ गया है।"

स्वामी के प्रति उस क्षेत्र के लोगों की आस्था का और दृढ़–विश्वास का पता तब चलता है जब वे उसे उपवास करने के लिए विवश कर देते हैं। उनकी मान्यता एवं विश्वास है – "हमारे स्वामी जी वैसे पहुँचे हुए आदमी हैं। वे अगर उपवास करेंगे तो बारिश ज़रूर होगी।" व्यक्ति के कृत्य ही उसे महान बनाते हैं इसलिए राजू भी उन लोगों के विश्वासानुसार सोचता है – "राजू घुटनों तक गहरे पानी में खड़ा होकर आसमान की तरफ ताकेगा। दो हफ्तों तक मंत्रों का जाप करेगा और इसी बीच व्रत रखेगा –" लोगों का यही ख्याल है कि फिर बारिश जरूर होगी।" उसे पता है कि वह वास्तव में कोई स्वामी नहीं है पर उनके इस विश्वास के सम्मुख उसे झुकना ही पड़ता है। इस प्रकार मूर्ति के साथ – साथ यह समाज संत महात्माओं को भी महत्व देता है।

मूर्ति पूजा का प्रचलन भी इस क्षेत्र के लोगों को भारत की धार्मिक आस्था से जोड़ता है। लोग मूर्ति पूजा करने के लिए उन्हें स्नान करवाते फिर तेल लगाकर उनकी पूजा करते जैसे–"एक पुराने पीपल के पेड़ के गिर्द ईंटों का चबूतरा बना था, जिसके नीचे पत्थर की मूर्तियाँ रखी थी। लोग अक्सर इन मूर्तियों को तेल लगाकर उनकी पूजा करते थे।" जिस मंदिर में आकर राजू रूका था वहाँ पर भी एक विशेष मूर्ति थी जिसकी पूजा ग्रामवासी करते थे। यह चार बांहों वाले एक लम्बे देवता की मूर्ति थी जिसके एक हाथ में चक्र था और दूसरे हाथ में राजदण्ड था। मूर्ति का सिर बड़ें सुन्दर ढंग से तराशा गया था। मंदिरों में

शिव–पार्वती, सीता–राम तथा कृष्ण लीला सम्बन्धी दृश्य भी अंकित किए गये थे जिनका ये लोग अधिक से अधिक ज्ञान रखते थे।

रीति–रिवाज : समाज में काम करने की परंपरागत परिपाटी को तत्कालीन समाज के रीति–रिवाज के अंतर्गत माना जाता है। रीति–रिवाज एक विशेष कार्य की विधि का रूप है इसलिए इस कार्य के पीछे जाने–अनजाने, परोक्ष–प्रत्यक्ष कोई न कोई मूल मानवीय प्रयोजन रहता है। परंपरा से चले आने के कारण जनसाधारण की आस्था इनके साथ जुड़ी रहती है। वास्तव में रीति–रिवाज किसी कौम या जाति को परंपरागत रूप में मिले ऐसे प्रतीकात्मक नियम हैं जो जीवन प्रवाह को नियंत्रित करते हैं। अतः हर समाज में जन्म, विवाह तथा मृत्यु संबंधी कई रीति–रिवाज उपलब्ध होते हैं। गाइड उपन्यास में भी रीति–रिवाजों की एक अलौकिक छटा मिलती है। विवाह के संबंध में दक्षिणी भारत में यह प्रथा है कि भाई–बहन के बच्चों, चचेरे भाई–बहन के बच्चों का विवाह अधिक मान्य रहता है। इसलिए वेलान की बेटी का विवाह उसी की बहन के बेटे के साथ हुआ है। जैसे – "मेरी बेटी अपनी बहन के लड़के से ब्याही गई है। इसलिए कोई परेशानी वाली बात नहीं है।" दूसरी ओर वह अपनी छोटी बहन का विवाह अपने चेचेरे भाई के लड़के से तय करता है और राजू के पूछने पर उसे बताता है, "मेरे चचेरे भाई का बेटा बड़ा अच्छा लड़का है। शादी की तारीख भी पक्की हो गई थी।"

विवाह संस्कार एक मांगलिक कार्य है और पूरे भारत में इसे कल्याणकारी मानकर इसे सम्पन्न करने के लिए मुहूर्त निकलवाया जाता है वेलान भी इसके विषय में बताता है, ज्योतिषी से मैंने शादी का मुहूर्त भी निकलवा लिया है कि ये दिन बड़े शुभ हैं।" शादी के बाद देवी–देवता अथवा गुरू ऋषि–मुनियों का आशीर्वाद भी लिया जाता है। इसलिए वेलान अपनी बहन की शादी करवाने के बाद उसे स्वामी जी के आशीर्वाद हेतु मन्दिर में लेकर आता है जैसे कि इन पंक्तियों से पता चलता है – "देखते–देखते वेलान दूल्हा–दुलहिन और रिश्तेदारों की भीड़ के साथ मन्दिर में आ गया।" वहाँ पर विवाह के अवसर पर कन्या को दहेज देने की भी प्रथा है वेलान भी अपनी बहन को दहेज के रूप में कपड़े–गहने आदि देता है वह स्वामी से कहता है, "हम लोगों ने यह शुभ समाचार बिरादरी को बता दिया है और जल्दी ही हमारे घर में शादी का आयोजन होगा। पैसा, कपड़ा, गहना सब तैयार है। कल सुबह मैं बाजे वालों को बुलाकर तय कर लूंगा।" अतः सारी बिरादरी को बुलाकर बाजे गाजे के साथ इस शुभ कार्य को सम्पन्न किया जाता है।

दक्षिण भारत के इस मंगल प्रदेश के समाज में लड़की के घर बार–बार जाना भी अच्छा नहीं माना जाता। इस पर प्रकाश डालते हुए वेलान कहता है, "मैं अक्सर अपनी बहन से मिलने जाता हूँ और इस बहाने अपनी बेटी से भी मिल लेता हूँ। कोई बुरा नहीं मानता।" "आखिर कोई बुरा भी क्यों मानेगा, जब तुम अपनी ही बेटी से मिलने जाते हो।"

"अपने दामाद के यहाँ बार–बार जाना अच्छा नहीं माना जाता", ग्रामीण अजनबी ने बताया। अतः इस प्रकार की प्रथा भारत के कई भागों में आज भी इस तरह चल रही है।

भारत में नई बहू के आने पर घर में कोई नई चीज़ लाने पर अथवा प्रदेश में किसी नई चीज़ के आने पर नारियल फोड़कर उसका स्वागत किया जाता है। रेल के आने पर किए जाने वाले कृत्य का वर्णन इस प्रकार है। "स्टेशन को झंडियों और बन्दनवारों से सजाया गया था। शहनाई और बैण्ड बाजे बज रहे थे। रेल की पटरियों पर नारियल फोड़े जा रहे थे। इसी वक्त भक–भक करता हुआ एक इंजन आया, जिसके पीछे दो डिब्बे लगे थे।" इसी तरह त्यौहार अथवा उत्सव के अवसर पर भी ऐसे ही रीति–रिवाज़ देखने को मिलते हैं। विशेष अवसर पर मंदिर की सजावट का एक उदाहरण प्रस्तुत है – औरतों के जत्थे ने आकर दिन में ही मंदिर के फर्श धो–पोंछ दिए थे और उन पर आटे से विभिन्न पैटर्नों के सांतिये काढ़ दिए थे। उन्होंने हर जगह फूल और पत्तियों के बंदनवार टांग दिए थे।" इस प्रकार यह समाज अपनी एक विशिष्ट पहचान रखता है।

वस्त्राभूषण : वस्त्र व्यक्ति की सभ्यता, संस्कृति और मानव के स्तर को व्यक्त करने वाले होते हैं। शरीर को सजाने की दृष्टि से ही नहीं वरन् प्रकृति के अनुसार शरीर को ढकने के लिए वस्त्रों की विशेष महत्ता है। कुंवारी लड़कियाँ घाघरा चोली और आभूषण पहनती जबकि विवाहिताओं में लंहगा चोली तथा सुनहरी गोटा लगी साड़ियां पहनने की प्रथा थी। पुरूष लोग, धोती और जिब्बा पहनते थे तथा विशेष अवसरों पर रेशमी 'जिब्बा' और जालीदार धोती पहनते थे। मर्दों में भी सोने की बालिया पहनने का प्रचलन था। इस समाज का पहनावा तथा आभूषण समस्त भारत का दर्शन प्रस्तुत करते हैं।

खान–पान :– जीवनचर्या को नियमित रूप से चलाने के लिए भोजन प्राणियों की प्रारम्भिक आवश्यकता हैं। किसी भी सभ्यता एवं समाज के रहन–सहन का प्रभाव खान–पान एवं पाकविधि पर यथेष्ट रूप से रहता है। दक्षिणी भारत में भोजन में चावल और नारियल से बने पदार्थ बड़े चाव से खाए जाते हैं। पेय पदार्थों में कॉफी बड़े चाव से पी जाती थी। 'गाइड' उपन्यास में खानपान संबंधी दिनचर्या का अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि प्रातः काल उठते ही यह लोग सुबह इडली और कॉफी से दिन का आरंभ करते हैं। चावल–रायता भी इन्हें प्रिय था जैसे कि एक उदाहरण से पता चलता है जब राजू अपने पिता को खाने के लिए बुलाने जाता तो वे कहते, "जाकर अपनी माँ से कह दो, वे मेरा इन्तजार न करें। कटोरे में मुट्ठी भर चावल और रायता रख दें। नींबू के अचार का एक ही टुकड़ा रखें।" यह लोग नीचे बैठकर ही भोजन करते और सोने के लिए चटाई का प्रयोग करते थे। काजू भी वहाँ भरपूर मात्रा में होते हैं इसलिए

तले हुए काजूओं और मिठाई का प्रचलन भी विशेष था। चाय की अपेक्षा कॉफी अधिक मात्रा में लोग लेते थे। फलों मे केला अधिक चलता था गन्ने और खीरे का प्रयोग भी लोग खाने तथा एक दूसरे को उपहार देने हेतु करते। बच्चे दुकानदारों से पिपरमिंट, फल, पान तथा भुने हुए चने चाव से खरीदते थे, बर्तनों में पीतल तथा ताम्बे के बर्तन चलते थे। इस प्रकार इस क्षेत्र विशेष का खानपान विशेष होते हुए भी भारतीयता की झलक प्रस्तुत करता है।

लोकाचार एवं लोकविश्वास :– लोकाचार का अर्थ है लोक व्यवहार, जन समूह का आचार। कार्य करने की सामान्य विधियाँ लोकाचार कहलाती हैं। जबकि लोक–विश्वास परंपरागत रूप से स्वीकृत ऐसी धारणाएँ हैं जिन्हें मानव भावात्मक एकता के परिणाम स्वरूप अपने जीवन में अपनाता आया है। लोक–विश्वास अतीत की वस्तु न होकर जीवित वर्तमान की वस्तु है। इन्हें मनुष्य के विचारों और व्यवहारों पर सरलतापूर्वक देखा जा सकता है। मनुष्य जीवन के समान इनका क्षेत्र भी व्यापक है। भारतीय संस्कृति में इनका दायरा बहुत विशाल है। पर सामान्यतः इनका विभाजन सामाजिक और धार्मिक दो रूपों में किया जा सकता है। सामाजिक लोक विश्वासों के अंतर्गत मानव और मानवीय क्रियाओं पृथ्वी एवं वनस्पति जगत्, टोना–टोटका, पशु–पक्षी तथा भूत–प्रेत सम्बन्धी लोक विश्वास आते हैं जबकि धार्मिक लोक विश्वासों से विभिन्न देवी–देवताओं तथा धार्मिक मान्यताओं का प्रसंग रहता हैं। प्रस्तुत उपन्यास चूंकि नायक के जीवन संघर्ष से जुड़ा है इसलिए इसमें सामाजिक लोक विश्वासों को इतना अवकाश नहीं मिला है। फिर भी जानवरों तथा भूत–प्रेत संबंधी कुछ विश्वास इसमें प्रसंगवश स्थान पा गए हैं। जैसे भारत के किसी भी कोने में चले जाए गाय दूध न दें तो लोगों में यह विश्वास घर कर लेता है कि गाय या भैंस को नज़र लग गई है। इसलिए राजू का पिता जब भी गाय के दूध की बाल्टी लेकर लौटते तो हमेशा कहते, "आज इस भैंस को कुछ हो गया है आधा भी दूध नहीं दिया।" तब उसकी पत्नी इस पर कहती, "हाँ हाँ मुझे मालूम है, इसका दिमाग खराब हो गया है। मुझे मालूम है क्या करने से दूध उतारेगी।" इन शब्दों के माध्यम से वह दूध हेतु नज़र उतारने का संकेत अवश्य देती है।

इसी प्रकार दक्षिणी भारत के इस समाज में चुड़ैल संबंधी अंधविश्वास भी मान्य हैं। ऐसी स्त्री जिसकी दृष्टि से हानि का भय रहता है चुड़ैल, भूतनी अथवा डाकिनी कहलाती है। प्रस्तुत उपन्यास में वेलान की बहन जब विवाह के लिए हामी नहीं भरती और वह अपने साज श्रृंगार की ओर भी ध्यान नहीं देती तो वेलान शंका प्रकट करते हुए कहता है, "वह दिन भर कोठरी में बैठी कुढ़ती रहती है। समझ में नहीं आता क्या करूँ। हो सकता है उस पर कोई चुड़ैल सवार हो गई हो। बताइए उसका क्या इलाज करूँ। इसी प्रकार जो बच्चे दूध नहीं पीते या रात भर सोते नहीं हैं उनके प्रति भी इसी प्रकार की शंकाए तथा नज़र लगने संबंधी शंकाए लोगों को व्यथित करती हैं।

भूत–प्रेत संबंधी लोक विश्वास भी पूरे भारत में प्रचलित हैं। ग्रामीण भाषा में भूत का अर्थ उस निकृष्ट अथवा दुष्ट आत्मा से समझा जाता है जो मनुष्यों को दुःख पहुँचाता है। ऐसा भी लोक विश्वास है कि अतृप्त इच्छाओं को लेकर मरने वाले प्राणी, जिसका मृत्यु कर्म उचित रूप से न किया जाए भूत बनता है। इसी प्रकार प्रेत वह कल्पित शरीर है जो मृत्यु के बाद प्राप्त होता है। यह भूत–प्रेत चाहे साक्षात् रूप में कोई अस्तित्व नहीं रखते पर इनका नाम मात्र ही व्यक्ति को भयभीत कर डालता है अतः बच्चों पर इनका विशेष प्रभाव रहता है। 'गाइड' उपन्यास में भी जब राजू रात के समय अपने पिता को खाने के लिए बुलाने जाता तो पिता अपनी मंडली को छोड़कर नहीं आते थे। घर तथा दुकान के बीच पड़ने वाली दस गज की दूरी तय करते भय से राजू का शरीर ठण्डे पसीने से तर हो जाता क्योंकि उसे लगता कि जंगली जानवर और भूत–प्रेत अंधेरे से निकलकर मुझ पर टूट पड़ेगे।" इस प्रकार यह लोकाचार और लोकविश्वास समाज की परंपरावादी सोच का चित्र तो प्रस्तुत करते ही हैं इसके साथ ही लोगों के अल्प ज्ञान का संकेत भी देते हैं पर आधुनिकतावादी सोच के साथ इनमें आने वाले परिवर्तनों को भी लक्षित करते हैं।

मानवीय भावनाएँ :– मानव इस सृष्टि की अनुपम रचना है और मानव हृदय के सुख–दुःख, मानवीय सम्बन्धों की गहनता, संवेगों का सहसम्बन्ध व्यक्ति के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता है। माँ सृष्टि की अद्वितीय कला है। माँ बिना कहे अपनी संतान के मनोभाव को जान लेती है वह उसके सुखद भविष्य की कामना के साथ अपने अथक प्रयासों से संतान के जीवन में खुशी लेकर आती है। प्रस्तुत उपन्यास में राज जब रोज़ी के प्रेम में पड़ जाता है तो माँ उसे इस प्रेम के भंवर से बाहर निकालने का अथक प्रयास करती है। जब राजू उसकी बात नहीं मानता तो वह अपने भाई को बुला लेती है फिर भी जब सफल नहीं हो पाती तो घर छोड़कर भाई के घर चल देती है। वह यह सोचती है कि शायद उसके रूठ जाने पर उसका पुत्र सही राह पर आ जाएगा। राजू एक पुत्र होने के नाते इन सब बातों को समझता है, माँ के प्रति चिंतित भी रहता है पर रोज़ी के प्रेम में पड़कर अनदेखी अवश्य कर देता है। राजू एक भावुक हृदय का स्वामी है इसलिए जैसे–तैसे वह रोज़ी की दमित इच्छाओं को पूरा कर उसे खुशी देना चाहता है और इस बात में वह सफल भी हो जाता है। रोज़ी उर्फ नलिनी की ओर देखा जाए तो एक ओर तो वह अपने पति को सम्मान देती है उसकी इच्छा विरूद्ध न जाकर अपनी इच्छाओं को दबा देती है पर मार्को जब उसकी परवाह नहीं करता तो वह भी उससे तिरस्कृत होकर अपना नया जीवन लक्ष्य अपना लेती है। राजू के पकड़े जाने पर वह पूरी ताकत उसे छुड़ाने में लगा देती है। मानवीय भावनाओं का पता तब भी चलता है जब राजू स्वामी के रूप में समस्त मानव जाति के सुखद भविष्य की कामना करता है। वह बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था करता है। अपने भक्तों की इच्छा पूरी करने हेतु उपवास कर अपने जीवन को ताक पर लगा देता

है। इसके अतिरिक्त इस उपन्यास के अन्य पात्र वेलान तथा दूसरे लोग भी स्वामी की पूरी देखभाल करते हैं उसके दिखाए गए मार्ग पर चलकर जीवन–यापन करते हैं। अतः मानवीय संवेदनाओं की दृष्टि से 'गाइड' उपन्यास मानव मनोविज्ञान के नये धरातलों को व्यक्त करता है।

4.4 सारांश :

अतः भारतीयता की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास में जिन सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं का वर्णन हुआ है। वे पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस क्षेत्र में मनाये जाने वाले रीति–रिवाजों तथा परंपराओं का प्रचलन भारत के किसी भी क्षेत्र में पाया जाता हैं। दक्षिणी भारत के लोक विश्वास और लोकाचार भी किसी न किसी रूप में भारत के किसी भी कोने में मिल जाते हैं। अतः विविधता के बीच सबको जोड़ने वाले यह उपन्यास अपने आप में अन्यतम हैं।

4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न :

प्र1. भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में 'गाइड' उपन्यास का मूल्यांकन करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र2. भारतीयता की अवधारणा स्पष्ट करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

4.6 पठनीय पुस्तकें :

1. गाइड – आर. के. नारायण
2. भारतीय उपन्यास और आधुनिकता – वैभव सिंह

……

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**
Semester-III **Lesson No. 5**

'गाइड' उपन्यास की सोद्देश्यता

5.0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 'गाइड' उपन्यास की सोद्देश्यता

5.4 सारांश

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.6 पठनीय पुस्तकें

5.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप 'गाइड' उपन्यास की रचना के पीछे लेखक के उद्देश्य को पूर्ण रूप से समझ सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

जीवन में हर प्रकार की वस्तु, स्थान, व्यक्ति के नाम का महत्व अक्षुण्ण है क्योंकि नाम ही अमूक को मुखरित करने का प्रथम साधन है फिर साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि की रचना हेतु शीर्षक की आवश्यकता होती है। शीर्षक रचना का विशिष्ट आकर्षण होता है। वह उसका केन्द्र होता है और उसके सार की सूचना देता है। अतः यह आवश्यक है कि शीर्षक संक्षिप्त एवं सार्थक हो तथा प्रमुख पात्र, घटना, मनोवृत्ति समस्या अथवा स्थान से संबद्ध हो। उपन्यास जीवन के विस्तृत फलक को प्रस्तुत करने वाली विधा है। उपन्यासकार जीवन के बृहत अनुभवों को रचना में बांधने का प्रयास करता है तो उसी उपन्यास कला को उपयुक्त शीर्षक की आवश्यकता रहती है। शीर्षक से ही रचनाकार की सूझबूझ और

उन्नत उपन्यास कला के दर्शन होते हैं। उपन्यास के शीर्षक का नाम लेने पर यदि रचना का पूर्ण परिचय एवं उद्देश्य पाठक के सम्मुख आ जाए तो रचना उद्देश्यपूर्ण कहलाती है। सोद्देश्यता की दृष्टि से 'गाइड' उपन्यास का शीर्षक कितना सार्थक है ? यह प्रश्न विचारणीय है।

5.3 'गाइड' उपन्यास की सोद्देश्यता :

'गाइड' उपन्यास साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत आर॰ के॰ नारायण की सफलतम् कृति है जिस पर भारतीय सिनेमा जगत् ने 1975 में 'गाइड' नाम से फिल्म बनाई जिसने सफलता के शिखरों को चूमा है। प्रस्तुत उपन्यास का नामकरण रचनाकार ने व्यक्ति विशेष, घटना विशेष अथवा स्थान विशेष पर न करके कर्म विशेष अथवा व्यवसाय केन्द्रित रखा पर धीरे–धीरे यह शीर्षक व्यवसाय उन्मुखता से वृहदाकार होता गया और पूरी रचना की कथावस्तु का नायकत्व करता कथा नायक राजू दर्शकों को दर्शनीय स्थलों की यात्रा करवाता है वह उन्हें उन स्थानों के ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं स्थानीय महत्व से परिचित करवाता है इसलिए उस क्षेत्र में गाइड के नाम से जाना जाता है। 'राजू गाइड'। गाइड का अर्थ है – निर्देश करना, मार्ग दर्शन करना। रचना में उसका नाम ही 'गाइड' का पर्याय लगता है। उपन्यास में रोज़ी (कथा–नायिका) के प्रेम में पड़ जाने के कारण चाहे वह यह व्यवसाय छोड़ देता है पर फिर भी उसकी मार्गदर्शक प्रवृत्ति रचना में इस प्रकार व्याप्त रहती है कि बहुत अधिक विचार करने पर भी पाठक इसका कोई अन्य शीर्षक सोच ही नहीं सकता। शीर्षक की सोद्देश्यता के विचारणीय बिंदु निम्नलिखित हैं :

गाइड : एक व्यवसाय के रूप में :

उक्त उपन्यास में नायक राजू मलगुड़ी (दक्षिणी भारत) में भ्रमण करने वाले सैलानियों के लिए गाइड का काम करता है और उन्हें दिखाए जाने वाले प्रत्येक स्थान का व्यौरे वार यात्री की रूचि अनुकूल पूर्ण चित्र खींच देता है। वह अपने व्यवसाय की प्रवृत्ति तथा यात्रियों की प्रवृति के विषय में कहता है – टूरिस्ट गाइड बनकर मैंने एक बात यह भी सीखी थी कि भोजन की तरह भ्रमण के मामले में भी हर आदमी की अपनी अलग रूचि होती है। कुछ लोग जल–प्रपात देखना चाहते हैं, कुछ को खण्डहरों में दिलचस्पी होती है। कुछ लोग किसी देवता को पूजना चाहते हैं, कुछ लोग हाइड्रो इलेक्ट्रिक प्लांट में दिलचस्पी रखते हैं। कुछ लोगों को मेम्पी शिखर पर बने शीशों से ढके बंगले जैसी जगह पसन्द आती है जहाँ से वो सौ मील दूर के क्षितिज को और शिखर के पास घूमते जंगली जानवरों को देख सकते हैं। इनमें भी दो किस्म के लोग होते हैं। कवि स्वभाव के लोग तो प्राकृतिक सौंदर्य देखकर संतुष्ट हो जाते हैं और वापस लौटना चाहते हैं। दूसरे लोग प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द लेने के साथ–साथ वहाँ बैठकर शराब भी पीना चाहते हैं।

इन पंक्तियों में यात्रा पर आने वाले लोगों की मानसिकता का पता चलता है। एक अच्छा गाइड वही है जो यात्रियों की इस मानसिकता को ध्यान में रखते हुए ही अपना कार्य करता है। उसे उस क्षेत्र में आने वाले सैलानियों की इस मानसिकता का पूरा पता होना चाहिए तभी वह उनका सही मार्गदर्शन कर पाता है। राजू गाईड भी इस विषय में सजग है जैसे कि निम्नलिखित पंक्तियों से पता चलता है :–

''किसी टूरिस्ट के आते ही मैं यह देखता था कि वह सामान के लिए कुली बुलाता है या हर चीज़ को हाथों से उठाता था। आंख झपकते ही मुझे इन बातों पर गौर करना पड़ता था। स्टेशन से बाहर आकर वह होटल की तरफ़ पैदल जाता है, टैक्सी बुलाता है या एक घोड़ेवाले इक्के के साथ सौदेबाज़ी करता है, यह बातें भी मुझे देखनी पड़ती थी। उसकी हर गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करता और कोई सुझाव न देता और उसकी रूचि जानने की कोशिश करता था। मैं उसे बताता कि मलगुड़ी में ऐतिहासिक और प्राकृतिक सौंदर्य और आधुनिक विकास की दृष्टि से बहुत से स्थान दर्शनीय हैं वगैरह–वगैरह।''

गाइड का काम करते हुए वह अच्छी भूमिका निर्वाह कर सकता है जो अनुपलब्ध वस्तुओं को भी यात्रियों के लिए उपलब्ध करवा देता है। राजू भी गाइड का काम करने के साथ–साथ यात्रियों की रूचि को ध्यान में रखते हुए हाथी के झुण्ड को पकड़ने वाले दृश्यों को दिखाने, शेर दिखाने, नागराज को दिखाने की व्यवस्था भी कर देता था क्योंकि इसके लिए हाथी पकड़ने वालों तथा सपेरों के साथ रसूख बनाए रखना पड़ता है इस का वर्णन करते हुए राजू स्वयं बताता है कि जब हाथी पकड़ने का वक्त आता था तो सिर्फ उन्हीं लोगों को अहातों के फाटकों में से गुज़रने दिया जाता था जो मेरे साथ आते थे। मैं लोगों को छोटी–छोटी टोलियों में अपने साथ ले जाता और उन्हें यह समझाते–समझाते मेरा गला बैठ जाता "जानते हो, जंगली हाथियों के झुण्ड पर महीनों पहले से निगरानी रखी जाती है .....।" एक सफल गाइड वही बन सकता है जो यात्री की इच्छा और रूचि को ध्यान में रखते हुए उसे स्थानों का ज्ञान देता। राजू के विषय में रचनाकार लिखता है – "यदि कोई तीर्थ यात्री की रूचि लिए होता तो उसे हर पचास मील के इलाके में एक दर्जन मन्दिर दिखा सकता था। मेप्पी शिखर से लेकर सरयू के किनारे बने अनेक पवित्र स्थानों पर उसे स्नान के लिए ले जा सकता था। यदि कोई इस स्थान की प्राकृतिक छटा को देखना चाहता तो वह उन्हें सुरम्य प्रकृति की गोदी में बिठा देता और यदि कोई वहाँ की पुरातन संस्कृति, स्थापत्य कला, मूर्ति कला, पत्थर कला को पसन्द करता तो उनको पुरानी गुफाओं की सैर करवा देता। जैसे मार्को पुरातन कला के अध्ययन हेतु आता है और राजू एक अच्छे गाइड की तरह उसे उन सभी स्थानों पर घुमाने ले जाता है फिर चाहे वहाँ रात भर भी रूकना पड़ता है।''

गाइड : वैयक्तिक निर्देशन के रूप में

कथावस्तु तथा घटनाओं के संघटन की सामग्री प्रस्तुत कृति के नामकरण की वैयक्तिक मार्गदर्शन के संदर्भ में सार्थकता सिद्ध करती है। कृति का आरंभ ही राजू द्वारा बेलान को गाइड (निर्देशित करने) करने के साथ होता है। राजू से मिलने के पश्चात ही वेलान को लगता है कि उसके आशीर्वाद से ही उसके व्यक्तिगत जीवन की मुसीबतें कम हुई हैं। दूसरी ओर अपनी बहन को सही मार्ग पर लाने का श्रेय भी वह राजू को ही देता है। उसकी बहन जो शादी से इंकार कर चुकी थी जो दिन भर कोठरी में बैठी कुढ़ती रहती थी उसे ऐसा भी लगता था कि शायद उस पर कोई चुड़ैल सवार हो गई हो जब उसने इस विषय में राजू से बात की और कहा .... "तो मैं उस लड़की का क्या इलाज करूँ श्रीमान ?" उसे यहाँ ले आओ। मैं उससे बात करूँगा" राजू ने शान से कहा। फिर जब उसकी बहन राजू से मिल लेती है उसके पश्चात उसका जीवन ही बदल जाता है वेलान उसमें आए हुए परिवर्तन के विषय में बताते हुए कहता है, "आज सुबह हमारे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने बालों को तेल लगाकर सलीके से गूंथा था और चोटियों में फूल लगाए थे। वह खुश नज़र आ रही थी। कहने लगी, "मैंने इतने दिन आप लोगों को तंग किया। आप सब मुझे माफ कर दीजिए। मैं बड़े–बूढ़ों का कहना मानूंगी।" इस तरह से राजू के निर्देशानुसार वेलान अपने जीवन की समस्याएँ सुलझाने में सफल हो गया।

राजू कथानायिका रोज़ी को भी गाइड करता है। वह उसके मार्गदर्शन से ही एक सफल नृत्यांगना बनती है। मार्को से विवाह करने के पश्चात् जो उसकी प्रतिभा उससे खो गई थी उसको निखारने का कार्य राजू की देख रेख में ही हो पाता है। रोज़ी को गाइड करने के विषय में स्वयं राजू वेलान को बताता है– "मेरे जीवन और चेतना में रोज़ी ही एक यथार्थ रह गई थी। मेरे मन की सारी शक्तियाँ उसे अपने निकट रखने में लगी थीं, ताकि वह सारा वक्त मुस्कुराती रहे। इनमें से एक काम भी आसान नहीं था। मुझे सारा वक्त जोंक की तरह उससे चिपके रहने में बड़ी खुशी होती"

उसके हाथों को अपने हाथों में लेकर गम्भीर स्वर में कसम खाई "तुम्हारी खातिर मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ। तुम्हारा नाच देखने के लिए मैं अपनी जिंदगी भी कुर्बान कर सकता हूँ। तुम जो भी हुक्म दोगी, मैं करूँगा।" वह खिल उठी। नाच के जिक्र से उसकी आँखों में एक नये उल्लास की चमक आ गई। मैं भी उसके साथ बैठकर उसके दिवास्वप्नों में सहायता देने लगा।" राजू जब उसकी नृत्य में सहायता करता तो उसकी प्रतिक्रिया के बारे में वह बताता है – नृत्य बंद करके वह मेरे पास आई और अपने शरीर का सारा भार मेरे ऊपर फेंकती हुई उल्लास भरे स्वर में बोली, "कितने प्यारे हो तुम ! तुम मुझे एक नई जिंदगी दे रहे हो।" रोज़ी को एक अच्छी नृत्यांगनां बनाने के लिए वह उसके लिए प्रोग्राम भी तय करता है, पखावज

तथा अन्य वादकों का प्रबन्ध भी करता है यहाँ तक कि अपने घर में उचित जगह न होने के कारण किराये के मकान की व्यवस्था करता है। इसके अतिरिक्त उसके लिए स्थान – स्थान पर 'शो' की व्यवस्था करना और फिर उसके पश्चात् उसे सफलता तक पहुँचाना सब राजू की दिनचर्या के अंग बन जाते हैं। नृत्य करते समय दर्शकों की एवं मंच की देख–रेख भी उसी के हाथ में रहती है। इसके साथ ही वह उसे जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी गाइड करता है। रोज़ी से नलिनी बनी वह नृत्यांगना राजू का इस सबके लिए धन्यवाद करते हुए कहती, "मैं सात जन्मों में भी तुम्हारा कर्ज नहीं चुका सकती।"

प्रस्तुत रचना में राजू की माँ भी जीवन – अनुभवों के आधार पर राजू को तब – तब गाइड करती है जब – जब उसे लगता है कि वह जीवन के सही रास्ते से भटक गया है। उदाहारणतः जब वह माँ को रोज़ी के विषय में बताता है कि वह बहुत अच्छी है और नर्तकी है तो माँ उसे सावधान करते हुए कहती है, "इन नाचने वाली लड़कियों के साथ कभी सरोकार न रखना यह सब बड़ी खराब होती हैं।" इसके अतिरिक्त अन्य कई स्थानों पर वह अपने पुत्र का मार्गदर्शन करती है पर राजू पर जब इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो वह अपने भाई को बुला लेती है। वह भी उसे जीवन की ऊँच–नीच से परिचित करवाने का प्रयास करता है पर रोज़ी के प्रेम के कारण उसके जीवन की दिशा ही बदल जाती है। फिर भी संन्यासी बनने पर वह इन सभी विगत घटनाओं से सीखता है। इस प्रकार इस रचना में व्यक्तिगत रूप में भी गाइड करने के दायित्व का निर्वाह हुआ है।

गाइड : भक्तों के मार्गदर्शक रूप में

सन्यास एक ऐसी अवस्था है जिसमें त्यागी और विरक्त होकर सब कार्य निष्काम भाव से किए जाते है। राजू कारावास से बाहर आकर अपने पूर्व जीवन से सन्यास लेकर जब स्वामी की प्रसिद्धि पा लेता है वहाँ पर भी वह ग्रामीणों तथा उसके प्रति श्रद्धा रखने वालों का मार्गदर्शन करके एक गाइड की भूमिका निभाता है। वेलान के जीवन की समस्याएँ सुलझ जाने पर ग्रामीणों को लगा था कि उन पर भी स्वामी की कृपा होगी इसलिए वे रोज शाम को दिन – भर खेत में काम करने के बाद घाट की सीढ़ी पर बैठ जाते और लगातार राजू की तरफ देखते रहते फिर राजू चाहे उनसे संबोधित होता या नहीं। राजू चाहे प्रारम्भ में लोभवश ही सही उनका समय – समय पर मार्ग दर्शन करता है। वह मंदिर के हाल में लड़कों को पढ़ाने की योजना बनाता है, मास्टर का प्रबन्ध करता है और मास्टर को जिम्मेदारी देते हुए कहता है, "मैं लड़कों को साक्षर और अक्लमंद देखना चाहता हूँ" स्वामी राजू की इस परोपकारिता का असर मास्टर पर भी पड़ा। उसने कहा, "मैं आपके निर्देशन में कुछ भी करने के लिए तैयार हूँ।" जनता के हित के कार्य करते हुए

उनका मार्गदर्शन करते हुए उसकी ख्याति और प्रतिष्ठा इतनी बढ़ जाती है जिसकी वह स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था। ...... उसकी सभाओं में इतने लोग जमा होते थे कि मन्दिर के बरामदों और नदी के किनारे तक उन्हें बैठने की जगह न मिलती थी। रचनाकार ने राजू स्वामी के विषय में लिखा है :

''अब वह दुनिया का बन गया था। उसका प्रभाव असीम था वह सिर्फ भजन नहीं गाता था, या दार्शनिक उपदेश ही नहीं देता था, बल्कि अब बीमार लोगों को दवा–दारू भी बताता था। माताएँ उसके पास उन बच्चों को लेकर आती थीं जिन्हें रात को नींद नहीं आती थीं। वह उनका पेट टटोलकर एक जड़ी पीसकर खिलाने का आदेश देते हुए कहता, "अगर बच्चे को आराम न हो तो फिर मेरे पास लाना।" लोगों में यह आस्था पैदा हो गई थी कि वह जिस बच्चे के सर को अपने हाथ से सहला देता है। वह चंगा हो जाता है। खैर, लोग उसके पास अपनी पैतृक सम्पत्ति के बंटवारे के झगड़े को लेकर आते ही थे। इन कार्यों के लिए उसने दोपहर के बाद कई घंटे निश्चित कर दिए थे।"

अंततः अपने संन्यासी पन की रक्षा हेतु अपने भक्तों को अन्न और खुशियाँ देने के लिए वह बारह दिन का उपवास करता है जिसमें वह अन्न का परित्याग कर देता है। इसके कारण लोग उसे अपने जीवन का गाइड समझते हैं। अपने उपवास की प्रतिज्ञा के लिए वह न केवल उन ग्रामीणों में अपितु पूरे देश में एकाएक प्रसिद्धि पा जाता है। तथा उस समय वह समस्त भारत का मार्गदर्शन करता है। सरकार उसका मार्गदर्शन पाकर आगे के निर्णय लेती है। फिर अतंतः वह अपने श्रद्धालुओं के लिए अपने आप को न्यौछावर कर देता है।

5.4 सारांश :

इस प्रकार शीर्षक देने में आर. के. नारायण ने 'गाइड' को अपनी कथावस्तु और रूचि के अनुकूल पाकर पूर्ण घटनाओं को इसके साथ जोड़ा है। 'गाइड' नाम देकर उपन्यासकार अपने उद्देश्य में सफल हुआ है। इस प्रकार आदि से अंत तक यह रचना किसी न किसी रूप में पाठक को इतना प्रभावित करती है कि राजू गाइड यात्री गाइड से ऊपर उठते हुए, व्यक्तिगत गाइड और वैयक्तिक गाइड से सम्पूर्ण देश का गाइड बन बैठता है। शीर्षक संक्षिप्त, कौतूहलपूर्ण, नवीन और सार्थक भी है। उपन्यास की निम्नलिखित पंक्तियाँ इसकी सार्थकता और सोद्देश्यता को स्पष्ट करने में समर्थ है – यात्री आपस में एक दूसरे से उसकी सिफारिश करते हुए एक बार जरूर कहते थे, "अगर राजू तुम्हारा गाइड हुआ तो तुम सब कुछ जान जाओगे। वह न सिर्फ तुमको हर दर्शनीय स्थान दिखा देगा, बल्कि और सब बातों में भी तुम्हारी मदद करेगा।"

5.5 अभ्यासार्थ प्रश्न :

प्र1. 'गाइड' उपन्यास के शीर्षक की सोद्देश्यता को स्पष्ट कीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र2. 'गाइड' उपन्यास के उद्देश्य को किन विचारणीय बिंदुओं के सहयोग से समझ सकते हैं। विस्तार पूर्वक चर्चा करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र3. शीर्षक की सोद्देश्यता 'गाइड' उपन्यास के सन्दर्भ में स्पष्ट करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

5.6 पठनीय पुस्तकें :

1. 'गाइड' – आर. के. नारायण

……………………………

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**
Semester-III **Lesson No. 6**

'गाइड' के प्रमुख चरित्र

6.0 रूपरेखा

6.1 उद्देश्य

6.2 प्रस्तावना

6.3 'गाइड' उपन्यास का वस्तु–विन्यास

  6.3.1 कथावस्तु

  6.3.2 पात्र चरित्र–चित्रण

  6.3.3 परिवेश एवं वातावरण

  6.3.4 उद्देश्य

6.4 सारांश

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.6 पठनीय पुस्तकें

6.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप 'गाइड' उपन्यास के वस्तु–विन्यास को समझ सकेंगे। एक रचना में कथावस्तु, पात्र, वातावरण और उद्देश्य की क्या भूमिका रहती है, इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

6.2 प्रस्तावना :

वस्तु विन्यास दो स्वतंत्र शब्दों का सुमेल है जिसमें वस्तु का अर्थ है – विचार अथवा आलोचना का विषय, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि का कथानक, कथावस्तु। जबकि विन्यास का अर्थ है – किसी कृति में विचारों, भावों या बिम्बों के संयोजन का काम जिससे कलात्मक सौंदर्य आता है और जिससे विचार रचना का रूप धारण करते हैं। अतः वस्तु, विन्यास का अर्थ है – उस सारी कहानी का संयोजन करना जो उपन्यास के मूल आधार या ढाँचे में होती है। अरस्तु ने वस्तु विन्यास के विषय में कहा है कि उसमें कार्य व्यापार की एकता होनी चाहिए, अपने आप में परिपूर्ण होना चाहिए और उसका आरंभ, मध्य और अंत होना चाहिए। उपन्यास के वस्तु विन्यास में उसकी कथा, पाठ, परिवेश और उद्देश्य उसके महत्वपूर्ण तत्व हैं क्योंकि किसी न किसी उद्‌देश्य को सम्मुख रखकर पात्रों और परिवेश के माध्यम से ही रचनाकार उपन्यास की कथा का संयोजन करता है। उपन्यास का वस्तु–विन्यास ही पाठक को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसी के माध्यम से पाठक रचना के मर्म तक पहुँचने में सफल होता है।

6.3 'गाइड' उपन्यास का वस्तु–विन्यास

'गाइड' आर. के. नारायण कृत एक ऐसी सफलतम कृति है जिसमें उपन्यासकार ने एक ऐसे व्यक्ति के जीवन संघर्ष का वर्णन किया है जो मानवता की सेवा में अपने आपको समर्पित कर देता है चाहे गाइड के रूप में अथवा स्वामी के रूप में या कैदी के रूप में। इस उपन्यास के वस्तु विन्यास को स्पष्ट करने के लिए इसकी कथावस्तु, चरित्र, परिवेश और उद्देश्य पर विचार करना अपेक्षित है। इसी संदर्भ में इन सब पर भिन्न–भिन्न विचार किया जा रहा है।

6.3.1 कथावस्तु :

कथावस्तु उस कहानी को कहा जाता है जो उपन्यास के मूल में रहती है। 'गाइड' उन्यास की कथा के मूल में राजू नामक युवक के जीवन का संघर्ष है। उसका जन्म दक्षिणी भारत के मालगुडी एक ऐसे क्षेत्र के परिवार में होता है यहाँ कर्म को महत्त्व दिया जाता है। उसके पिता की छोटी सी दुकान थी जिसे झोंपड़ी वाली दुकान के नाम से जाना जाता था। उसका बचपन वहीं पर इमली के पेड़ के नीचे खेलते हुए बीतने लगा। समवयस्क बच्चों के साथ लड़ाई–झगड़े एवं गाली–गलौच करते हुए सुनकर उसके पिता उसे बूढ़े मास्टर के स्कूल में पढ़ने के लिए भर्ती करवा देते हैं। वे उसे क्रिश्चियन स्कूल में इसलिए नहीं भेजते क्योंकि उनके मन में यह विचार था कि वे लोग बच्चे को क्रिश्चियन धर्म सिखाते हैं। बूढ़े मास्टर के स्कूल से वह शहर के बोर्ड स्कूल के बोर्ड तक की पढ़ाई पूरी करता है। उन्हीं दिनों मद्रास से मालगुडी तक रेलवे लाइन बनती है उसके घर के पास ही रेलवे स्टेशन बनता है फलतः उसके पिता को रेलवे स्टेशन

पर दुकान खोलने की आज्ञा रेलवे अधिकारियों से मिल जाती है। पिता के साथ राजू जब दुकान पर आ जाता है तो उसके पिता उसे रेलवे वाली दुकान पर छोड़ स्वयं झोपड़ी वाली दुकान पर चले जाते हैं। अचानक पिता की मृत्यु के बाद वह झोपड़ी वाली दुकान बंद करके केवल स्टेशन वाली दुकान पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। दुकान करते हुए खाली समय में कई किताबें पढ़ता है जिनसे मन में नेक विचार पैदा होते और जिनमें आकर्षित करने वाला जीवन दर्शन रहता। धीरे–धीरे रेल में आने वाले यात्री जब राजू की दुकान पर आकर उससे पूछते "फलां जगह यहाँ से कितनी दूर है ?" या "फलां जगह पहुँचने के लिए किधर से होकर जाना पड़ता है ?" .... क्या यहाँ बहुत से ऐतिहासिक स्थान है ?" मैंने सुना है कि तुम्हारी सरयु नदी यहीं किसी पहाड़ी में से निकलती है जो बड़ी खूबसूरत जगह है।" इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए और अपनी सहायता करने वाली प्रवृत्ति के कारण वह दुकानदार से गाइड बन जाता है। इस काम में वह इतना प्रसिद्ध हो जाता है कि लोग उसे 'रेलवे राजू' के नाम से पुकारने लगते हैं। आरंभ में वह गाइड के काम को अपना शौक समझता था कुछ ही महीनों में जब वह अनुभवी गाइड बन जाता है तो वह अपने को पार्ट टाईम दुकानदार और फुल टाइम टूरिस्ट गाइड समझने लगता है। वह यात्रियों को उनकी रूचि अनुसार मलगुडी के बहुत से ऐतिहासिक, प्राकृतिक सौंदर्य वाले तथा आधुनिक विकास से जुड़े दर्शनीय स्थान दिखाता। यात्रियों की इच्छानुरूप वह सारे दर्शनीय स्थल घंटों में भी दिखा सकता था और दिनों में भी। इसके साथ ही वह यात्रियों के अन्य शौक भी पूरा करता था जैसे यदि कोई हाथी देखना चाहता तो हाथी दिखाता, अगर कोई शेर देखना चाहता या उसका शिकार करना चाहता तो उसकी व्यवस्था भी करता और अगर कोई नागराज को फन फैलाये देखना चाहता तो उसका इन्तज़ाम भी करता। इसी प्रकार वह यात्रियों की मनः स्थिति को समझकर ही उन्हें गाइड करता। इसलिए वह कहता था "टूरिस्ट गाइड बनकर मैंने एक बात यह भी सीखी कि भोजन की तरह भ्रमण के मामले में भी हर आदमी की अपनी अलग रूचि होती है। कुछ लोग जल प्रपात देखना चाहते हैं, कुछ को खण्डहरों में दिलचस्पी होती है। कुछ लोग किसी देवता को पूजना चाहते हैं, तो कुछ लोग हाइड्रोइलेक्ट्रिक प्लांट में दिलचस्पी रखते हैं। कुछ लोगों को मेम्पी शिखर पर बने शीशे से ढके बंगले जैसी जगह पसन्द आती है जहाँ से वे सौ मील दूर के क्षितिज को और शिखर के पास घूमते जंगली जानवरों को देख सकते हैं।" – जिन टूरिस्टो को राजू गाइड एक बार गाइड कर देता था वे यात्री आपस में एक – दूसरे से उसकी सिफारिश करते हुए एक बार जरूर कहते थे, "अगर राजू तुम्हारा गाइड हुआ तो तुम सब कुछ जान जाओगे। वह न सिर्फ तुमको हर दर्शनीय स्थान दिखा देगा, बल्कि और सब बातों में भी तुम्हारी मदद करेगा।" अतः बम्बई, मद्रास, लखनऊ और न जाने भारत के किन–किन हिस्सों में लोग उसके नाम से परिचित हो जाते हैं। राजू भी अपने ग्राहकों को उसी प्रकार भाँप लेता जैसे कोई सयाना ज़मीन देखकर बता देता है वहाँ कुँआ खोदने पर पानी निकलेगा या नहीं। टूरिस्ट गाइड का काम करते ही एक दिन राजू को मार्को नाम का यात्री मिलता है उसका लिबास ऐसे आदमी जैसा

था जो फौरन किसी सुदूर अभियान पर जा रहा हो। जिस क्षण राजू उसे मिलता है उसे ऐसा लगता है कि जिन्दगी भर के लिए उसे ग्राहक मिल गया है क्योंकि एक गाइड, आखिरकार, जिन्दगी – भर ऐसे आदमी के सम्पर्क में आने की ही तलाश में रहता है जो हमेशा एक स्वामी पर्यटक के लिबास में रहना पसंद करता हो। उसके आने के कुछ दिनों के बाद उसकी पत्नी रोज़ी मलगुड़ी को देखने की इच्छा से अपने पति मार्को के पास आ जाती है। वह आते ही राजू से प्रश्न करती है, "क्या तुम मुझे ऐसा नाग दिखा सकते हो जो बांसुरी के स्वरों पर अपना फन फैलाकर नाच सके ?" राजू उसकी इस इच्छा को पूरी करते समय इस बात से परिचित हो जाता है कि वह एक अच्छी नृत्यांगना है पर अपने पति की इच्छा का मान करते हुए वह नृत्य को भुलाने का प्रयास कर रही है जबकि उसके पति को उसकी कोई फिक्र नहीं है। वह स्वयं गुफा चित्रों एवं नक्काशी का अध्ययन करने वहाँ पर आया था और सारा–सारा दिन गुफाओं में ही पड़ा रहता था, रोज़ी होटल में रहते हुए सारा दिन उसकी प्रतीक्षा करती और इसी समय राजू से सहानुभूति प्राप्त कर वह उसके करीब आ जाती है। वह उसकी मनःस्थिति को भांपकर उसे नृत्य के अवसर प्रदान करता है क्योंकि देवदासियों के परिवार में पैदा होने के कारण नृत्य उसकी रग–रग में बसा था। नाच के जिक्र से उसकी आँखों में एक नये उल्लास की चमक आ गई और राजू उसके साथ बैठकर उसके दिवास्वप्नों में सहायता देने लगा। रोज़ी राजू के मार्गदर्शन में रोज नृत्य का अभ्यास करती, किताबें पढ़ती तथा सारा दिन नृत्य और उसके प्रेम में डूबी रहती। इन दिनों उसने अपने पति की ओर ज़्यादा ध्यान देना शुरू कर दिया था क्योंकि वो चाहती थी कि मार्को उसे नाचने की आज्ञा दे दे पर मार्को को जब राजू और उसके संबंध का पता चलता है तो वह एक दिन उसे वहीं मलगुड़ी में छोड़कर उसकी तरफ अनासक्त होकर वहाँ से चला जाता है। मार्को द्वारा परित्यक्त होने पर वह राजू के पास चली जाती है और राजू की माँ के न चाहने पर भी राजू उसे नृत्य जगत् की सम्राज्ञी बना देता है जिससे नलिनी का नाम सार्वजनिक सम्पत्ति बन गया क्योंकि उसके मशहूर होने की वजह उसकी प्रतिभा थी और जनता के लिए उसकी प्रतिभा को स्वीकार करना भी आवश्यक हो गया। अब राजू दिन रात रोज़ी उर्फ नलिनी (नृत्य जगत् का नाम) के नाच प्रोग्राम तय करता। वह स्वयं बताता है कि उसके पास एक नक्शा और कैलेण्डर रहता था। मैं पहले से ही सारा प्रोग्राम तय रखता था। बाहर से आने वाले निमन्त्रणों को पढ़कर उन लोगों को तारीखें बदलने का अनुरोध करता, ताकि एक यात्रा में बहुत सी जगहों पर नलिनी के प्रोग्राम हो सकें। मेरे पास तीन महीनें पहले के प्रोग्राम बुक रहते थे।" इस प्रकार इन प्रोग्रामों में आने वाली अपार धनराशि को वह धीरे–धीरे शराब और फ्लैट जूए में लुटा देता है। अंततः मशीनी बनी रोज़ी का भी नृत्य से मोह भंग होने लगता है और वह उससे शिकायत करती हुई कहती कि "मुझे यह सर्कस की जिंदगी अच्छी नहीं लगती। मैंने तो और ही सपने देखे थे।" इसी बीच मार्को की पुस्तक 'दक्षिणी भारत का सांस्कृतिक इतिहास' प्रकाशित होकर रोज़ी उर्फ नलिनी के पास आती है जिस पर सहायता के लिए राजू का भी आभार व्यक्त किया गया था। राजू उसे नलिनी

से बचाकर रखता है पर 'इलस्ट्रेटिड वीकल ऑफ बॉम्बे' में मार्को की तस्वीर और पुस्तक का रिव्यू पढ़कर वह उस पुस्तक को पढ़ने के लिए व्यग्र हो उठी। पर जब बाद में उसे पता चला कि वो पुस्तक राजू ने कहीं छिपाकर रख दी है वह काफी हताश होती है। तत्पश्चात् मार्को के वकील की ओर से एक पत्र आता है जिसमें रोज़ी के हस्ताक्षर बैंक में रखे गये गहनों को पाने के लिए अपेक्षित थे। उस पत्र में कहा गया था कि बैंक से गहने निकलवा कर बीमा करवा कर नलिनी को भेज दिए जाएंगे। राजू वह पत्र पढ़कर स्वयं ही रोज़ी की ओर से बैंक के फार्म पर हस्ताक्षर कर देता है। जाली हस्ताक्षरों के संदर्भ में मार्को उस पर केस कर देता है और राजू सलाखों के पीछे आ जाता है अपने इस जुर्म के लिए राजू को दो साल की सजा होती है। नलिनी एडवांस में तय किए गये सारे प्रोग्राम करके मलगुड़ी में रहने वाले लोगों से विदा लेकर मद्रास चली जाती है।

दो साल के बाद जेल से छूटने पर राजू घर न जाकर मंगला प्रदेश की ओर चला जाता है और वहां पर नदी के किनारे एक प्राचीन मंदिर में रहना शुरू कर देता है। वेलान (मंगल प्रदेश का एक ग्रामीण) उसे कोई महात्मा जानकर उसे 'स्वामी' के रूप में प्रसिद्ध कर देता है। मंगला गाँव के लोग उसके दर्शनों के लिए आते हैं। उन लोगों द्वारा लाई गई भेंटों से राजू अपने जीवन की गाड़ी आगे खींचने लगता है। अन्ततः अपनी नई पहचान स्वामी को स्थिर करने के लिए वह दाढ़ी रख लेता है और केश बढ़ा लेता है। दूसरों की सहायता करने वाली प्रवृत्ति होने के कारण वह गांव के बच्चों के लिए मंदिर में ही पढ़ने हेतु स्कूल की व्यवस्था करता है। ग्रामवासी अपनी समस्याओं से निजात पाने हेतु स्वामी (राजू) के पास आने लगते हैं। उपन्यासकार के अनुसार, "धीरे–धीरे उसके भक्तों की संख्या बढ़ती जाती है। उसके जीवन की व्यक्तिगत सीमाएँ बेमानी हो गई थीं और उसकी सभाओं में इतने लोग जमा होते थे कि मंदिर के बरामदों और नदी के किनारे लोग जमा होते थे कि मंदिर के बरामदों और नदी के किनारे तक उन्हें बैठने की जगह न मिलती थी। वेलान और कुछ अन्य लोगों को छोड़कर राजू को अपने असंख्य भक्तों के चेहरे तक याद नहीं थे और न वह जानने की परवाह ही करता था कि वह किससे बात कर रहा है। अब वह दुनिया का बन गया था उसका प्रभाव असीम था।" वह लोगों की हर सम्भव सहायता करता था और उसके भक्तों को भी पूरी आस्था थी इसलिए वह दिन रात उनसे घिरा रहता था। कुछ वर्षों के पश्चात मंगल प्रदेश में सूखा पड़ता है। जिससे जल अभाव के कारण जानवर भी मरना शुरू हो गये। जल समस्या के कारण ग्रामीणों में झड़प होती है वेलान के भाई द्वारा राजू यह संदेश भेजता है कि जब तक लड़ाई – झगड़ा छोड़कर वे नेक नहीं बनते "मैं भूखा रहूँगा।" पर राजू की इस घोषणा का वेलान के भाई द्वारा सही सम्प्रेषण नहीं हो पाता जिसके कारण मंगलवासी यह समझ लेते हैं कि जब तक बारिश नहीं आती तब तक स्वामी जी अन्न – जल ग्रहण नहीं करेंगे। वे ग्रामीण आपस का झगड़ा भूलकर स्वामी की चिंता करते हैं वे कहते हैं, "इस मंगल प्रदेश का सौभाग्य है कि हमारे बीच स्वामी जी जैसा महान व्यक्ति मौजूद है। वह महात्मा जैसा आदमी

है। हमारे स्वामी जी वैसे ही पहुँचे हुए आदमी हैं। वे अगर उपवास करेंगे तो बारिश जरूर होगी। हम लोगों पर अपने अगाध प्रेम के कारण ही उन्होंने इतनी यन्त्रणा झेलने का फैसला किया है। इससे उत्साह की लहर उमड़ पड़ी। ग्रामवासी मंदिर में आकर स्वामी की देखरेख में लग जाते हैं। पर राजू को जब सारी स्थिति स्पष्ट होती है। वह वेलान को अकेले बुलाकार अपने विगत जीवन का पूरा चित्र उसके सामने रखकर कहता है, "मैं संत नहीं हूँ। मैं भी औरों की तरह एक साधारण व्यक्ति हूँ। पर राजू के जीवन की पूरी कहानी सुनने पर भी कहता है, "स्वामी जी, पता नहीं, क्यों आपने मुझ तुच्छ दास को इतनी लम्बी कहानी सुनाई।" और वह यह कहकर स्वामी को आश्वस्त कर देता है कि उनका रहस्य उसके सीने में बन्द रहेगा। इस प्रकार न चाहते हुए भी वह विवश हो जाता है। उसी समय अखबार का एक संवाददाता सूखे की परिस्थितियों का जायजा लेने के लिए गांव में आया था तो उसे वहाँ स्वामी जी के उपवास का पता चला तो उसने उनके उपवास का समाचार हिन्दुस्तान अखबार' में 'सूखा दूर करने के लिए सन्यासी की तपस्या' शीर्षक से छपवा दिया। जिससे वह एकाएक प्रसिद्ध हो गया। आरंभ में न चाहने पर भी अंततः चौथे दिन वह उपवास करने का संकल्प कर लेता है। पत्रकार की कलम के चमत्कार से दूर–दूर से लोग वहाँ एकत्र होने लगे। स्पेशल रेलगाड़ी चलाई गई। मंगला में भीड़ इकठ्ठी हो गई। दुकानें खुल गई। इतनी भीड़ हो गई कि नियंत्रण करने के लिए पुलिस को तैनात करना पड़ा। व्रत के दसवें दिन एक अमेरिकन यात्री भी आता है वह स्वामी जी पर फिल्म बनाता है। सरकार ने स्वामी जी के स्वास्थ्य के लिए दो डॉक्टर नियुक्त कर दिए जिन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि स्वामी जी का ब्लड प्रेशर बढ़ गया है। बदन में पेशाब का जहर पैदा होने से इसका असर गुर्दे पर पड़ रहा है। इन्हें सेलाइन और ग्लूकोज़ देने का प्रयास किया जा रहा है पर वह लगातार इंकार कर रहे हैं। उपवास के अंतिम दिन राजू वेलान का सहारा लेकर किसी प्रकार नदी के पानी में खड़ा होकर प्रार्थना करता है और वेलान को यह कहकर "वेलान, पहाड़ियों पर वर्षा हो रही है। मैं वर्षा को अपने पांवो और टांगों पर आते महसूस कर रहा हूँ'' .... और बेहोश हो जाता है।

इस प्रकार उपन्यासकार ने पूर्वदीप्ति, वर्णनात्मक तथा कथात्मक शैली में पूरी कथा को सरल एवं प्रभावशाली भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि पाठक के सम्मुख पूरी कथा एक चलचित्र की तरह चलती है। पाठक न केवल राजू तथा रोजी के जीवन संघर्ष को ही जान पाता है बल्कि वह उन सब परिस्थितियों से भी परिचित होता है। जो राजू को ऐसा करने के लिए विवश करती हैं।

6.3.2 पात्र चरित्र – चित्रण

उपन्यास की कथावस्तु कैसी भी हो वह किसी न किसी पात्र पर आधारित रहती है। पात्रों में सजीवता, स्वाभाविकता की अभिव्यक्ति रचना के मूलभाव तथा घटना के अनुकूल रहनी चाहिए। डॉ॰ लक्ष्मी नारायण लाल पात्रों की सृष्टि के विषय में कहते हैं, "पात्र अतीत, वर्तमान, भविष्य तथा स्वदेश–विदेश जहां

के भी हों, उनकी सृष्टि में किसी प्रकार का संदेह न हो"। उपन्यास की कथावस्तु जिन पर आधारित होती है वही उसके पात्र कहलाते हैं। वस्तु विन्यास में उन पात्रों को जैसे रखा गया है। वह उनका चरित्र चित्रण है। रचनाकार को रचना के उद्देश्य तक पहुँचाने वाले साधन पात्र ही होते हैं। 'गाइड' उपन्यास के मुख्य पात्रों में राजू तथा रोज़ी आते हैं जबकि वेलान, गफ्फूर, मार्को तथा राजू की माँ गौण पात्रों में स्थान पाते हैं। पात्रों का चरित्र – चित्रण निम्नलिखित है–

राजू का चरित्र चित्रण

राजू आर. के. नारायण कृत 'गाइड' एक बहुचर्चित उपन्यास का नायक है। पहले 'टूरिस्ट गाइड' और फिर 'स्वामी' के रूप में कृति के आरंभ से लेकर अंत तक अपने अभिन्न व्यक्तित्व के कारण पाठकों को प्रभावित करता है। राजू का जन्म मलगुड़ी में एक साधारण परिवार में हुआ था। उसके पिता एक छोटे से दुकानदार थे। स्वतंत्रता पश्चात् रेलागमन के कारण जब मलगुडी में रेलवे स्टेशन बन जाता है तो उसके पिता को स्टेशन पर दुकान चलाने की आज्ञा रेलवे अधिकारियों से मिल जाती है। उसके पिता राजू को उस दुकान पर बिठाते हैं और स्वयं "झोपड़ वाली" दुकान संभालते हैं। पिता की अचानक मृत्यु के पश्चात् राजू इस कार्य को अच्छी तरह संभाल लेता है। घुमक्कड प्रवृत्ति का होने के कारण वह मलगुडी देश में घूमने आने वाले यात्रियों के लिए 'टूरिस्ट गाइड' का काम करता है और पूरे मलगुडी क्षेत्र में 'राजू गाइड' के नाम से प्रसिद्ध हो जाता है। गाइड का कार्य करते ही वह गुफा–चित्रों के अध्येता मार्को तथा उसकी पत्नी 'रोज़ी' से मिलता है। मार्को की रोज़ी (अपनी पत्नी) के प्रति अनासक्ति राजू को उसकी ओर आसक्त करती है और वह रोज़ी से प्रेम करने लगता है। प्रेम में पड़कर ही उसका जीवन कई दिशाओं में बढ़ने लगता है और 'टूरिस्ट गाइड' के स्थान पर वह 'स्वामी' के रूप में पहले मंगला प्रदेश और फिर दक्षिणी भारत व फिर पूर्ण भारत में अपने ज्ञान के कारण प्रसिद्ध हो जाता है। गाइड से स्वामी की यात्रा में उसके व्यक्तित्व की कई विशेषताएँ पाठकों को प्रभावित करती हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है

1) **व्यवसाय के प्रति समर्पित** : राजू एक बहुपक्षीय व्यक्तित्व का स्वामी है इसलिए अपनी आजीविका से जुड़े कार्य की ओर न केवल वह विशेष ध्यान ही देता है अपितु व्यवसाय संबंधी छोटी से छोटी जानकारी भी रखता है। पहले वह दुकानदार था बाद में गाइड बन जाता है। इसके विषय में वह स्वयं कहता है, "पहले मैं दुकानदारी को अपना पेशा और गाइड के काम को अपना शौक समझता था, लेकिन धीरे–धीरे मैं अपने को पार्ट टाइम दुकानदार और फुल टाइम टूरिस्ट गाइड समझने लगा।" फिर गाइड बनने के बाद उस पेशे से जुड़ी हर जानकारी रखता और यात्रियों की रूचि अनुसार उनके लिए हर प्रकार के प्रबन्ध भी करता जैसे कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है, "यह मत समझिए कि मुझे हाथियों में कोई व्यक्तिगत दिलचस्पी थी। टूरिस्टों को जो चीज पसंद आती वह मुझे भी पसन्द आती थी। मेरी निजी पसन्दगी

नापसन्दगी गौण चीज़ थी। अगर कोई शेर देखना चाहता था या शिकार करना चाहता था तो मैं उसका इन्तजाम करना भी जानता था। अगर कोई नागराज को फन फैलाये देखना चाहता था तो मैं उसका भी इन्तजाम कर देता था।" राजू अपने व्यवसाय में पूरी रूचि रखता था इसलिए वह कहता है कि टूरिस्टों को घुमाते – घुमाते मैं भी बहुत–सी बातें सीखता था और सीखते–सीखते कमाई करता था। इन सब बातों में मुझे बड़ा मज़ा आता था।

2) **कुशल मनोवैज्ञानिक** : राजू एक कुशल मनोवैज्ञानिक भी है। एक गाइड के रूप में वह यात्रियों की मनःस्थिति को सूक्ष्म दृष्टि से पहचान लेता है। लेखक ने उसकी मनोवैज्ञानिकता का परिचय इन पंक्तियों में दिया है, "किसी टूरिस्ट के आते ही मैं यह देखता था कि वह सामान के लिए कुली बुलाता है या हर चीज को हाथों से उठाता है। आँख झपकते ही मुझे इन बातों पर गौर करना पड़ता था। स्टेशन से बाहर आकर वह होटल की तरफ पैदल जाता है, टैक्सी बुलाता है या एक घोड़ेवाले इक्के के साथ सौदेबाज़ी करता है, ये बातें भी मुझे देखनी पड़ती थी। उसकी हर गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण करता और कोई सुझाव न देता। फिर मैं एक अर्थ में उससे सब कुछ कबूल करवा लेता था, और उसकी रूचि को जानने की कोशिश करता था।" इसी के आधार पर राजू कहता है टूरिस्ट गाइड बनकर मैंने एक बात यह भी सीखी कि भोजन की तरह भ्रमण के मामले में भी हर आदमी की अपनी अलग रूचि होती है। अतः इसके अतिरिक्त स्वामी बन जाने पर भी वह भक्तों के हृदय के भावों को सूक्ष्मता से ताड़ लेता है इसलिए वेलान उसकी प्रशंसा में कहता है, "महाराज आपने मेरे दिल की बात कैसे भांप ली ? आप जैसे महान आदमी के लिए यह आसान बात होगी, लेकिन हम जैसे क्षुद्र लोग कभी भी दूसरों के विचारों का अनुमान नहीं लगा सकते।'' रोज़ी की नृत्य संबंधी इच्छाओं को जानने में तथा उसके हृदय में मार्को के प्रति भावों को पढ़ने में भी राजू की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का पता चलता है।

3) **सामंजस्य पूर्ण व्यक्तित्व** : राजू का व्यक्तित्व परिस्थितियों के अनुकूल हर स्थान पर ढल जाता है। कैसी भी स्थितियाँ क्यों न हों वह उन्हीं में अपने आप को अभ्यस्त कर लेता है। अपने इसी गुण के कारण वह नृत्यलोक में, जेल में और भक्तों में श्रद्धा का पात्र बन जाता है। जेल जो कि लोगों को भयभीत कर देती है। उसे वहाँ पर भी आनन्द की प्राप्ति होती है। जैसे कि इन पंक्तियों से पता चलता है, "बुरी जगह तो नहीं है।" राजू ने जेल की चारदीवारी की ओर सर हिलाकर इशारा करते हुए कहा, "वहाँ लोग दोस्ताना ढंग से पेश आते हैं" गाइड का कार्य करते हुए भी वह अपने – आप को यात्रियों की रूचि के अनुकूल ढाल लेता है इसके विषय में वह स्वयं स्पष्ट करता हुआ कहता है, "यह मत समझिए कि मुझे हाथियों में कोई व्यक्तिगत दिलचस्पी थी। टूरिस्टों को जो चीज़ पसन्द आती थी। वह मुझे भी पसन्द आती थी।" रोजी के सहायक, तथा प्रेमी के रूप में जब वह उसके साथ रहने लगता है तो अपने आप को उसी

के अनुरूप ढाल लेता है उसकी दिनचर्या रोजी के साथ ही आरंभ होती है और उसके साथ ही खत्म। स्वामी बन जाने पर भी उसका यह गुण पाठकों को प्रभावित करता है। उपवास के चौथे दिन वह भोजन का विचार अपने मन से निकालकर अंततः जब परिस्थिति से समझौता कर लेता है तो उपन्यासकार उसके विषय में लिखता है, "इस इरादे से उसमें एक विशेष प्रकार की शक्ति आ गई। जीवन में पहली बार सम्पूर्ण भाव से वह पैसे और प्यार के बाहर अपनी शक्तियों को लगा रहा था। वह पहली बार ऐसा काम कर रहा था, जिसमें उसकी व्यक्तिगत दिलचस्पी न थी।" इस प्रकार राजू उपवास को तन मन से करने का सामंजस्य कर लेता है।

4) **निर्णायक** : राजू एक निर्णायक व्यक्तित्व के रूप में भी पाठकों को प्रभावित करता है। वह एक बार जो निर्णय ले लेता है। उस पर अडिग रहता है। जब रोज़ी मार्को को छोड़कर उसके घर आ जाती है। तो वह समाज की परवाह न करते हुए उसे अपने घर रखता है। उसके पड़ोसी, उसकी माँ तथा मामा व कई अन्य लोग इसका विरोध करते हैं पर वह अपने इस फैसले से पीछे नहीं हटता है जैसे कि इन पंक्तियों से स्पष्ट है, "मैं बढ़कर रोज़ी के पास गया, और दोनों की हैरानी की परवाह न करते हुए मैंने उसकी गर्दन में अपनी बांहे डालकर धीमे स्वर में कहा, "इन लोगों की बात मत सुनो। ये जो चाहें इन्हें कहने दो। कह–कह कर इन्हें अपनी जबान थकाने दो। लेकिन तुम यहाँ से कहीं नहीं जाओगी, रोज़ी। मैं यहीं रहूँगा और तुम भी यहीं रहोगी। जिन लोगों को यह इन्तज़ाम पसंद नहीं है, वे खुशी से यह घर छोड़कर जा सकते हैं। "इसी प्रकार जब वह एक बार मन से उपवास का निर्णय ले लेता है तो स्वास्थ्य खराब होने पर भी वह टस से मस नहीं होता। डॉक्टरों ने अपने बुलेटिन में लिखा था कि स्वामी जी के जीवन की रक्षा जरूरी है। आग्रह करके उन्हें उपवास तोड़ने के लिए राजी करें। जीवन को खतरे में न डालें। डाक्टरों ने स्वामी के पास बैठकर जब उन्हें समझाने का प्रयास किया तो अपने निर्णय पर दृढ़ रहते हुए उन्होंने इस पर मुस्कुरा दिया। अंततः वह बेहोश होकर गिर पड़ते हैं पर उपवास को टूटने नहीं देते।

5) **सच्चा प्रेमी** : कथानायक एक आदर्श प्रेमी के रूप में भी उभर कर सामने आता है। जब वह रोज़ी की ओर आसक्त होता है तो यह जानते हुए भी कि वह विवाहिता है उसे दिल से चाहने लगता है। वह उसकी इच्छाओं का ध्यान रखता है और उसकी इच्छानुरूप उसे भारत की सफल नर्तकी बनाता है। उसके प्रेम में पड़कर चाहे उसकी दुकान और घर भी उसके हाथ से निकल जाते हैं पर वह इसकी परवाह नहीं करता। उसकी माँ भी उसे छोड़कर चली जाती है पर वह अपनी प्रेमिका का दीवाना ही बना रहता है। वह रोज़ी से अपने प्रेमभाव व्यक्त करते हुए कहता है, "तुम्हारी खातिर मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ। तुम्हारा नाच देखने के लिए मैं अपनी जिन्दगी भी कुर्बान कर सकता हूँ। तुम जो हुक्म दोगी, मैं करूँगा।" एक अन्य स्थान पर जब रोज़ी उसे कहती है कि मैं तुम्हारे साथ बाहर क्यों जाऊँ तो वह उत्तर देता है,

"क्योंकि तुम्हारे बगैर जिन्दगी सूनी–सूनी लगती है।" "तुम इसी तरह चलो, किसी को बुरा नहीं लगेगा। भला इन्द्र धनुष को भी सजावट की जरूरत है ?" मार्को का पत्र जब रोज़ी के हस्ताक्षर करने के लिए आता है तो रोज़ी कहीं उससे अलग न हो जाए इसी भय से वह उसे पत्र न दिखाकर खुद ही हस्ताक्षर करके भेज देता है। जेल चले जाने पर भी वह किसी न किसी तरह रोज़ी का समाचार प्राप्त करता रहता है। और उसे इस बात का संतोष होता है कि वो कम से कम मार्को के पैरों में गिरी तो नहीं। इस प्रकार एक सच्चे प्रेमी के रूप में वह सदैव रोज़ी के कल्याण की कामना करता है। रोज़ी जब उसे यह बताती है कि वह देवदासियों के परिवार में पैदा हुई है जिसे निम्न वर्ग समझा जाता है तो वो वह कहता है, "तुम चाहे जिस जात या वर्ग में पैदा हुई हो, तुम उसके लिए गौरव और गर्व की चीज़ हो।" अतः प्रेम में वह जातपात एवं वर्गभाव को भी नहीं मानता।

6) **मार्गदर्शक** : राजू इस पूरे उपन्यास में एक मार्गदर्शक गाइड के रूप में पाठकों पर प्रभाव डालता है। उसका जीवन अपने तीनों पड़ावों पर गाइड, कैदी और स्वामी के रूप में गुजरा है पर तीनों स्थानों पर उसकी मार्गदर्शक प्रवृत्ति ही उसे विशेष बनाती है। एक गाइड के रूप में मलगुड़ी स्टेशन पर उतरने वाला हर यात्रा उसी से सारे दर्शनीय स्थल देखने का इच्छुक है क्योंकि वह यात्रियों की मनःस्थिति को भँाप लेता है और उनकी_इच्छानुसार ही उन्हें गाइड करता है। उन पहाड़ी स्थलों को देखकर लौटने वाला यात्री रातभर उस स्थान की तारीफें करता रहता। उसने बताया कि वहाँ पहाड़ की चोटी पर एक छोटा–सा मंदिर है। "पौराणिक कथाओं में पार्वती के यज्ञकुण्ड में कूदने की घटना लिखी है। जरूर यह वही जगह होगी।" जैसा यात्री होता और उस समय मेरा जैसा मूड उसी के अनुसार मैं ऐतिहासिक तिथियाँ बताता।" एक अच्छे गाइड की भूमिका निभाने के कारण ही यात्री उसकी प्रशंसा करते और अगर अपने पूरे परिवार के साथ न आए होते तो उन्हें साथ लाने की कसमें खाते जैसे कि इन पंक्तियों से पता चलता है, "उसे यही अफसोस होता कि वह अपनी बीवी या बेटी को साथ लेकर नहीं आया। उनकी बातों से ऐसा लगता, मानो उन्होंने अपनी बीवी या बेटी को किसी बढ़िया चीज से वंचित कर दिया हो। यात्री कसमें खाता कि अगले साल वह अपने पूरे परिवार को साथ लेकर वहाँ आएगा।" इसी प्रकार जेल में भी वह अपने मार्गदर्शक विचारों के कारण सबका प्रिय बन जाता है जैसे कि राजू के शब्दों में "हत्यारे, लुटेरे, गला काटनेवाले, सब मेरी बाते सुनते थे और मैं बातों से उनका अवसाद दूर कर सकता था। जब कभी आराम का मौका आता तो मैं उन्हें कहानियाँ और दार्शनिक बातें सुनाता। वे मुझे बडयार (गुरू कहकर पुकारने लगे, जेल में पाँच सौ कैदी थे और मैंने उनमें से अधिकांश लोगों के साथ आत्मीयता पैदा कर ली थी। नये कैदी जेल में आकर पहले कुछ दिन उदास और क्षुब्ध रहते। मैं उन्हें समझाता, "दीवारों को भूल जाओं तो तुम सुखी रह सकोगे।" अतः जिस प्रकार वह गाइड के रूप में मलगुडी में प्रसिद्ध हो जाता है उसी प्रकार गुरू के रूप में वह जेल में भी सबका प्रिय बन जाता है। स्वामी बन जाने पर तो राजू के जीवन की कायाकल्प

हो जाती है। वह एक ऐसे स्वामी के रूप में प्रसिद्धि पा जाता है जिसके दर्शन मात्र से ही लोगों के जीवन की दिशा बदल जाती है। अगर वह किसी को दो शब्द भी कह देता तो उस अमूक व्यक्ति को लगता कि उसे तो अलभ्य खज़ाना ही मिल गया है इसलिए बैठकर लोग (भक्त) उसका मुँह ताकते रहते कि उन्हें उसके शब्दों की बहुमूल्य मणियाँ प्राप्त होंगी। सब लोग आदरपूर्वक राजू की प्रेरणा की प्रतीक्षा करते रहते थे। उन्हें ऐसा भी लगता था कि स्वामी जी चाहे कुछ भी न कहे केवल उनकी कृपा दृष्टि भी हमारा जीवन बदल सकती है। पानी की कमी होने पर एक स्त्री उनसे प्रार्थना करती है, "न जाने दुनिया का क्या बनेगा। स्वामी जी आप हमें रास्ता दिखाइए।" मार्गदर्शन पाने हेतु उसकी सभाओं में असंख्य भक्त जमा होते थे कि मन्दिर के बरामदों और नदी के किनारे तक उन्हें बैठने की जगह न मिलती थी। रचनाकार इस विषय में लिखता है, "वह यह जानने की परवाह न करता कि वह किससे बात कर रहा है। अब वह दुनिया का बन गया था। उसका प्रभाव असीम था। वह सिर्फ भजन ही नहीं गाता था, या दार्शनिक उपदेश ही नहीं देता था, बल्कि अब बीमार लोगों को दवा–दारू भी बताता था। लोग उसके पास अपनी पैतृक सम्पत्ति के बंटवारे के झगड़े लेकर तो आते ही थे। इन कार्यों के लिए उसने दोपहर के बाद के कई घंटे निश्चित कर दिए थे।" अतः इस सबसे राजू के चरित्र के इस विशेष पक्ष का ज्ञान होता है।

7) **प्रकृति प्रेमी** :– राजू प्रकृति का भी चितेरा था। सारा बचपन उसका प्रकृति की गोद में ही गुजरा था। शायद उसके गाइड बनने के पीछे कहीं उसके मन में बसा प्रकृति प्रेम भी था। इससे उसे स्फूर्ति मिलती थी जैसे कि इन पंक्तियों से पता चलता है – "नीला आसमान, खिली हुई धूप, मकान के साये में बैठकर काम करना, ठण्डे पानी का स्पर्श, इससे मेरे भीतर एक शानदार भावना पैदा हो गई। ताज़ी खुदी हुई मिट्टी की गंध मुझे सबसे ज़्यादा खुशी देती थी।" यात्रियों को मलगुडी तथा मेप्पी शिखर का वर्णन करते हुए भी वह प्रकृति के रमणीय स्थलों का गुणगान करता था पीक हाउस के प्रकृति दृश्य इस प्रकार है, "पीक हाउस मेम्पी की पहाड़ियों के शिखर पर बना था – सड़क यहीं पर खत्म हो जाती थी। नीचे जंगल घाटी तक फैला था, और जिस दिन आसमान साफ रहता था, धूप में चमचमाती सरयू नदी की धारा दिखा देती थी। प्राकृतिक वातावरण के प्रेमियों और जंगली पशुओं को देखने के शौकीन लोगों के लिए वह स्थान स्वर्ग के समान था।"इसी तरह मंदिर में रहते हुए भी प्रकृति के मनोरम दृश्य उसे आकर्षित करते थे जैसे–"पेड़ों में हवा की सरसराहट और उमड़ते हुए दरिया से शाम की सभा और आकर्षक बन जाती थी। राजू को यह मौसम बहुत पसंद था क्योंकि चारों और हरियाली छाई रहती थी, आसमान में बादल तरह–तरह के खेल खेलते थे। राजू खम्भेवाले हॉल में बैठा–बैठा सारा दृश्य देखा करता था।" प्रकृति प्रेमी होने के नाते ही वह जेल में भी सब्जियाँ लगाता है। उनकी देखभाल करता था और उन्हें बढ़ते हुए देखकर उसे एक विचित्र–सा सुख अनुभव होता था जैसे – मैं क्यारियों में बड़े–बड़े बैंगन, फलियाँ और गोभी उगाता था। जब छोटी–छोटी कलियाँ निकलती तो मुझे बड़ी उत्तेजना होती। उन्हें बढ़ते हुए, शक्लें अख्तियार करते,

रंग बदलते और पत्तियाँ झड़ते हुए देखता।'' अतः उसे प्रकृति के हर नज़ारे से प्रेम था फिर चाहे इमली का पेड़ होता, पहाड़ होता, नदी का किनारा या जानवर आदि वह उनमें इस तरह रम जाता कि मानो संसार का असीम सुख इसी में है।

इसके अतिरिक्त राजू में भावुकता, सत्यवादिता, स्पष्टवादी, स्वार्थी, लालची, बनावटीपन में विश्वास रखने वाले, आदर्श विचारों वाला, भाग्य पर विश्वास करने वाले युवक के रूप में भी प्रभावित करता है। जब कहीं उसे लगता है कि अब उसका काम स्पष्टवादिता पर आधारित है तो वह सीधे–सीधे बात बताता था जैसे कि रोजी ने राजू से कहा कि वह काम छोड़ देगी और अपने पति के पास चली जाएगी तो मार्को उसे अपने पास रख लेगा। तब रोज़ी को वास्तविकता का आइना दिखाते हुए कहता है, "अगर सिर्फ नाचने की बात होती तो वह तुम्हें वापस ले लेता।" वास्तव में देखा जाए तो राजू इस उपन्यास 'गाइड' का केन्द्रीय पात्र है और उपन्यास का सारा कलेवर इसी के आस–पास घूमता है।

रोज़ी उर्फ नलिनी का चरित्र – चित्रण

रोज़ी उर्फ नलिनी 'गाइड' उपन्यास की नायिका है। वह देवदासियों के परिवार से सम्बन्ध रखती है। नृत्य की घुट्टी उसे विरासत से मिली है। वह अर्थशास्त्र में एम.ए है उसका विवाह मार्को नामक एक इतिहासकार से हुआ था जो पत्थरों की नक्काशी और चित्रों का अध्ययन करता है। रोजी ने अपने मन में नृत्य की अभिलाषा को दबाए रखा था पर जब वह गाइड राजू से मिलती है तो उसकी दबी हुई इच्छाओं को हवा मिल जाती है परिणामस्वरूप वह राजू के सहयोग और मार्ग दर्शन से भारत की एक प्रसिद्ध नृत्यांगना बन जाती है पर इन सब प्रयासों में उसका वैवाहिक जीवन अस्त–व्यस्त हो जाता है उस के चरित्र की कुछ विशिष्टताएं निम्नलिखित है :

1) **सफल नर्तकी** : रोज़ी एक सफल नर्तकी है। नृत्य का अभ्यास वह बचपन से करती आई थी वह स्वयं राजू को बताती है, "मैं जब बच्ची थी उस वक्त से ही गांव के मंदिर में नाचने लगी थी।" फिर भी जब उसने नाचना शुरू किया तो उसका सारा ध्यान अपनी मुद्राओं और पग संचालन पर रहता। उसने हर नृत्य के मूल भावों को सीखा ही नहीं अपितु दिन में लगभग आठ–आठ घंटे तक अभ्यास भी किया इसलिए जब वह स्टेज पर नृत्य करती तो दर्शक मंत्र मुग्ध हो जाते थे। नृत्य में उसका जीवन इतना रच बस गया था कि नाच के ज़िक्र से उसकी आँखों में एक नये उल्लास की चमक आ गई। नृत्य में प्रवीण होने के लिए वह नृत्य, संबंधी पुस्तकें पढ़ती थी जैसे कि उसकी दिनचर्या के संबंध में उपन्यासकार ने लिखा है, "वह नृत्यशास्त्र के प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन करती। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को पढ़ती, क्योंकि प्राचीन नाट्यकला के अध्ययन के बिना शास्त्रीय नृत्य के मूल रूप को बनाए रखना असम्भव था।" संगीत की किताबों से ज्ञान सीखने के लिए पंडितों की सहायता भी ली थी। नृत्य कला की बारीकियों और पेचीदगियों

को वह जानती थी। उसके नृत्यकला संबंधी ज्ञान का परिचय निम्नलिखित पंक्तियों से मिलता है वह कहती, "जानते हो पल्लवी क्या होती है ? उसमें सबसे अधिक महत्व ताल का होता है इसमें हमेशा, एक–दो, एक–दो, नहीं बल्कि तरह–तरह के ताल होते है।" फिर वह तोड़े सुनाने लगती, "ता–का–ता–की–ता–ता–का" मुझे बड़ा कौतूहल होता। "जानते हो इसे पाँच और सात की मात्रा में बांधने के लिए कितने अभ्यास की जरूरत होती है। उसे हर नृत्य का ज्ञान था इसलिए वह राजू से कहती है, "जानते हो एक युवती की बांह पर गुदे हुए तोते के बारे में भी एक नृत्य है, किसी वक्त मैं तुम्हे दिखाऊँगी अपने अभ्यास और नृत्यज्ञान के कारण दर्शक उसके नृत्य के इन्द्रजाली प्रभाव में खो जाते। अतः रोजी एकाएक नृत्य के क्षेत्र में फुलझड़ी की तरह चमकी। उसका नाम सार्वजनिक सम्पत्ति बन गया। उसके मशहूर होने की वजह उसकी प्रतिभा थी और जनता के लिए उसकी प्रतिभा को स्वीकार करना आवश्यक हो गया था।

2) **जिज्ञासु** : नलिनी उर्फ रोज़ी जिज्ञासु प्रवृत्ति की है और नृत्यज्ञान संबंधी उसकी जिज्ञासा परकाष्ठा तक पहुँची हुई थी। नृत्य के विषय में और जानने के लिए वह नृत्यशास्त्र के प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करती। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को पढ़ती क्योंकि प्राचीन नाट्यकला के अध्ययन बिना शास्त्रीय नृत्य के मूल रूप को बनाए रखना असम्भव था।" सूत्रात्मक शैली में लिखे हुए ग्रंथों को समझने के लिए पंडित की सहायता लेती है। इस प्रकार नृत्य में तो मानो उसके प्राण बसे थे इसलिए उससे सम्बन्धित हर छोटी–बड़ी बारीकी को जानने का प्रयास करती है। यहीं नहीं मार्को ने अपनी खोज में जब उससे खोज की हुई भीति–चित्र पर संगीत की स्वरलिपियों की बात की तो रोज़ी का आनन्दोल्लास देखने वाला था। वह जिज्ञासापूर्वक कहती है।, "संगीत की स्वरलिपियां। कितनी आश्चर्यजनक चीज़ें है। तुम मुझे वह भिति – चित्र दिखाओगे। ओह यह तो शानदार बात है। मैं उन स्वरों को गाने की कोशिश करूंगी। इसके अतिरिक्त राजू के साथ रहते हुए भी उसे मार्को के विषय में जानने की जिज्ञासा बनी रहती है। उसकी किताब आने पर वह उसके विषय में हर बात को जानने के लिए भी उत्सुक रहती है।

3) **पति के प्रति स्नेह रखने वाली** : रोज़ी अपने पति को बहुत चाहती है पर पति का लापरवाह रवैया उसे व्यथित करता है। वह सदैव उसके प्रति चिंतित रहती है जब वह राजू के प्रति आसक्त होती है तो अपने पति के बारे में भी चिंता प्रकट करती है। वह उसे मिलने के लिए गाड़ी मंगवाने के लिए राजू से कहती है पर राजू के यह कहने पर कि गाड़ी तो अब कल ही आएगी वह निराश हो जाती और कहती है, "जो भी हो, अखिरकार वह मेरा पति है। मुझे उसकी इज्जत करनी पड़ेगी। मैं उसे अकेला नहीं छोड़ सकती"। अपने पति की प्रशंसा करती हुई कहती है, "वह शरीफ है, हो सकता है वह बुरा न माने, लेकिन क्या बीबी का फर्ज़ नहीं है, कि वह अपने पति की रखवाली और मदद करे। चाहे उसका पति उससे कैसा भी सलूक करे।" यहाँ तक कि वह सदैव अपने पति को प्रसन्न रखने का प्रयास करती है। मार्को को जब रोज़ी और राजू के संबंधों का पता चलता है तो वह रोज़ी से निराश हो जाता है रोजी तब भी उसे एक

अच्छी पत्नी की तरह मनाने का प्रयास करती है वह पति सुख पाने के लिए मार्को से माफी मांगती है। और स्वीकार करती है कि "न जाने क्यों मैं उसे बहुत चाहने लगी थी। मुझे लगा कि वह अगर मुझे माफ करके वापस ले ले तो मेरे लिए यही काफी होगा पर अंततः वह इससे सफल नहीं हो पाती।

4) **सामंजस्यपूर्ण** : रोज़ी का व्यक्तित्व सामंजस्यपूर्ण है वह कैसी भी परिस्थितियों में अपने आप को ढाल लेती है। उसे इस बात की परवाह भी नहीं रहती कि कोई क्या कहेगा। जब मार्को उसे छोड़कर चला जाता है तो वह चुपचाप राजू के पास आ जाती है और उसके एक कमरे वाले घर में ही अपने को ढाल लेती है। शहरी होते हुए भी गांव वालों के सारे काम सीख लेती है। इसलिए खाना बनाना, सफाई करना, कपड़े धोना आदि उसे भार नहीं लगता। उसकी यह प्रवृत्ति उसके विवाह के अवसर पर भी पाठकों को प्रभावित करती है। वह राजू को बताती है कि "जब मार्को ने मुझे पसंद कर लिया तो मेरे परिवार की सभी औरतें बहुत प्रभावित थी और वे खुशी से फूली नहीं समाती थीं कि एक इतना धनी आदमी हमारे वर्ग में शादी करने आ रहा है, और यह तय हुआ कि अगर अपने परम्परागत हुनर को छोड़ना जरूरी हो तो यह त्याग इस सम्बन्ध के मुकाबले में बड़ा नहीं है।" इसलिए वह अपने शादीशुदा जीवन को सफल बनाना चाहती है। अपने सामंजस्यपूर्ण व्यक्तित्व के कारण ही वह एक सफल नर्तकी बन जाती है।

5) **प्रेमिका** : रोज़ी इस उपन्यास में एक प्रेमिका के रूप में भी पाठकों को प्रभावित करती है। इस रचना के आरंभ में तो लगता है कि वह प्रेमी राजू के प्रति पूर्णता समर्पित है। इसलिए वह उसे जेल में मुक्त करवाने का भी हर संभव प्रयास करती है। उसे अपने इस नये प्रेमी पर पूर्ण विश्वास था इसलिए उसकी हर बात को आँख मूंदकर मान लेती है। पर राजू के जेल चले जाने पर नाचना छोड़कर मलगुड़ी से मद्रास चली जाती है और चुप्पी साध लेती है। उसकी यह चुप्पी पाठकों को ठीक नहीं लगती और पाठकों को यह सोचने के लिए विवश करती है कि कहीं उसने राजू को केवल सीढ़ी के रूप मे तो प्रयोग नहीं किया।

6) **गृह कार्यों में निपुण** : रोज़ी में एक अच्छी गृहिणी के भी सभी गुण हैं। हर घर को अच्छी तरह संभाल लेती है। स्त्री सुलभ इन गुणों के कारण वह परिस्थितियों से सामंजस्य कर लेती है। राजू के घर रहते हुए वह उसकी माँ के गृहकार्यों में हर संभव सहायता करती है। सुबह तीन घंटे निरन्तर अभ्यास करने के पश्चात् "वह माँ की मदद करती, सफाई करती, झाड़ू देती, कपड़े धोती और घर की हर चीज़ को करीने से सजाती। रोज़ी पाक कला में भी निपुण थी इसलिए जब वह प्रसिद्ध नर्तकी भी बन जाती है तब भी वह खाना अपने हाथों से बनाती थी रचनाकार के शब्दों में, "जिस दिन डांस का प्रोग्राम होता वह शाम से पहले ही खाना तैयार कर लेती। हम चाहते तो रसोइया रख सकते थे, लेकिन वह कहती" दो जनों के लिए रसोइये की क्या जरूरत है ? मुझे अपने स्त्री सुलभ कर्त्तव्यों को भूल नहीं जाना चाहिए।" अतः वह संगीतकला, नृत्यकला, गृहकला तथा पाक कला में निपुण थी।

7) **कृतज्ञतापूर्ण** : रोजी के लिए जब भी कोई कार्य किया जाता वह सदैव उसके प्रति कृतज्ञ रहती। वह मार्को के प्रति भी कृतज्ञता का भाव रखती थी कि उसने उस पर पूरा भरोसा किया है वह कहती थी, "जो भी हो, उसने मेरे साथ अच्छाई की है, मुझे हर किस्म का आराम और आज़ादी दी है।" रोज़ी राजू के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती है जब वह उसे नृत्य की दुनिया में ले आता है जैसे कि इन शब्दों में पता चलता है। अपने शरीर का सारा भार मेरे ऊपर फेंकती हुई उल्लास – भरे स्वर में बोली, "कितने प्यारे हो तुम ! तुम मुझे नई जिंदगी दे रहे हो।" कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु वह किसी प्रकार की औपचारिकता का ध्यान न रखकर राजू से कहती, "मैं सात जन्मों में भी तुम्हारा कर्ज नहीं चुका सकती।" उसे लगता था कि राजू ने उसे किसी नई दुनिया से मिलवाया है इसलिए जब वह उसके साथ घूमती है तो भी उसकी आंखों में एक जिन्दादिली के साथ कृतज्ञता के भाव भरे रहते।

8) **ईमानदार** : रोज़ी इस उपन्यास में एक ईमानदार व्यक्तित्व के रूप में भी पाठकों को प्रभावित करती है। इसका पता तब चलता है जब राजू पकड़ा जाता है और उसे स्वयं सारे काम संभालने पड़ते हैं। वह नृत्य नहीं करना चाहती थी पर जिन लोगों से एडवांस लिया था उनके प्रोग्राम किये और जिनके प्रोग्राम पूरे नहीं कर पाई उनके पैसे लौटा दिए। मलगुड़ी छोडने से पहले बड़ी ईमानदारी तथा चतुराई से उसने अपने सारे कार्य पूरे किए थे। जैसे मणि उसके विषय में बताता है जाने से पहले उसने कायदे से अपने कर्जों की फेहरिस्त बनाई थी ओर उनका पूरा भुगतान किया था। यहीं नही राजू जब जेल जाने लगा तो भी उसने उसे पूछा था, "मेहरबानी करके मुझे बताओं कि तुमने कहाँ–कहाँ प्रोग्राम का वादा किया है, ताकि मैं उनके पैसे लौटा दूँ। "इस प्रकार अपनी ईमानदारी के कारण ही वह अपने नौकरों एवं परिचितों की दृष्टि" में आदरणीय थी।

9) **मद्‌दगार** :– ईमानदार व्यक्ति मद्‌दगार भी होता है। रोज़ी के चरित्र का यह पक्ष केवल राजू की सहायता के संदर्भ में ही प्रकाशित होता है। राजू पर जब केस चलता है तो जी जान से उस केस पर पैसा खर्च करके उसे मुक्त करवाती है। उसे जब पता चलता है कि राजू ने पहले ही सारे पैसे लुटा दिए हैं और अब केस लड़ने के लिए उसके पास कुछ भी नहीं है तो भी वह उसे विश्वस्त करते हुए कहती है, "इसका यह मतलब नहीं कि मैं तुम्हारी मदद नहीं करूँगी। अगर मुझे अपनी आखिरी चीज़ भी गिरवी रखनी पड़े तब भी मैं तुम्हें जेल से छुड़वा लूँगी।" और इसके लिए उसने अपने हीरे के गहने बेच दिए। सब शेयरों को खरीद के भाव पर बेचकर पैसा इकठ्‌ठा किया और एक बड़ा वकील मंगवाकर राजू का केस लड़ा। मलगुड़ी छोड़ने से पहले वह मणि को भी अपनी मदद हेतु हज़ार रूपया देती है। ताकि वह उन पैसों से फिर से अपना कोई नया काम कर सके।

10) **समर्पित व्यक्तित्व** : रोज़ी एक समर्पित भावना से परिपूर्ण नायिका थी। उसका यह समर्पण

उसकी कला के प्रति भी था और अपने प्रेम के प्रति भी। नृत्य के प्रति तो उसका समर्पण भाव देखते ही बनता है। और अपने उसी समर्पण से वह कुशल नृत्यांगना भी बनती है। वह प्रतिदिन एक साथ तीन–तीन घंटे अभ्यास करती और उसकी पेचीदगियों को समझती ं। ऐसा करते हुए वह अपने वातावरण के प्रति बेखबर रहती, उसका सारा ध्यान अपनी मुद्राओं और पग संचालन पर ही एकाग्र रहता था। नृत्य के लिए वह कई ग्रंथों का अध्ययन करती है। पुरानी संगीत लिपियां सीखती है। पशु–पक्षियों के आधार पर नृत्य का अभ्यास करती है। दक्षिणी भारत में वह अपने सर्प नृत्य के लिए भी जानी जाती है। गूदे हुए पक्षियों पर भी नृत्य होता है इसलिए वह कहती है – "एक युवती की बांह पर गुदे हुए तोते के बारे में भी एक नृत्य है।" नृत्य के प्रति उसका यह जुनून ही उसे पति से अलग कर देता है। उसके इस समर्पण का पता तब भी चलता है जब वह मार्को के साथ विवाह करने के लिए अपने कलाकार, संगीत एवं नृत्य के जीवन को तिलांजलि दे देती है। न केवल कला बल्कि धन का समर्पण भी वह समय आने पर करती है। राजू के केस के लिए वह अपने हीरे के आभूषण बेच देती है। खरीदे हुए शेयर भी खरीद के दाम पर बेच देती है तथा और वह सब भी जो राजू की रिहाई एवं केस के पैसे जुटाने में सहायक होता है।

11) **अगाध विश्वास करने वाली** : रोज़ी के चरित्र की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वह सामने वाले पर पूर्ण विश्वास करती थी एक पल के लिए चाहे वह राजू की माँ हो या मणि भी। उसे अपने पति पर भी विश्वास था कि राजू के साथ उसके संबंधों को जानकार वह उसे क्षमा कर देगा पर ऐसा नहीं होता है। दूसरी ओर वह राजू पर पूरा विश्वास करती है। उसे यह तक पता नहीं होता कि वह उसके नृत्य प्रोग्राम कहाँ के लिए तय कर रहा है कितने पैसे ले रहा है और उन पैसों का प्रयोग कहाँ कर रहा है। राजू उसे उसके प्रोग्रामों से परिचित करवाने के लिए जब कैलेण्डर उसके कमरे में टांग देता है। तो नलिनी उर्फ रोज़ी उसे लपेटकर राजू के हाथों में थमा देती है और कहती है, "इसकी कोई जरूरत नहीं। इन तारीखों को मैं किस लिए देखू। मुझे मत दिखाओ।" इसलिए राजू उसके अगाध विश्वास के विषय में कहता है, " वह मेरे हुक्म पर ट्रेनों में सवार होती और उतर जाती थी। पता नहीं उसने कभी यह भी गौर किया था या नहीं कि हम किस शहर में है, और कौन सी सभा या संस्था हमारा प्रोग्राम करवा रही है। हम मद्रास में हों पड़ता था मदूरै में या ऊटमण्ड जैसे पहाड़ी जगह में हो, इनसे उसे कोई फर्क नहीं, वह कभी यह जानने का प्रयास नहीं करती कि उसकी माहवार आमदन क्या है। राजू के कहने पर वह बिना देखे ही हर चेक पर दस्तखत कर देती थी। पर जब उसे अंत में पता चलता है कि इतने कार्यक्रम देने के बाद भी उसके पास कुछ भी नहीं तो वह निराश हो जाती है।

12) **पश्चाताप की भावना से परिपूर्ण** : रोज़ी एक ऐसी स्त्री भी थी जिसे अपने किए पर पश्चाताप भी था। पहले तो वह नर्तकी के जीवन को स्वीकार तो कर लेती है पर बाद में जब आंख खुलती है तो वह बहुत पश्चाताप भी करती है। उसे लगता है कि मार्को के साथ उसने सही नहीं किया है वह एक

प्रकार के अपराध बोध से ग्रसित रहती है। और पश्चाताप करते हुए कहती है, "मेरे साथ यही होना चाहिए था। अगर कोई और पति होता तो वहीं मेरा गला घोंट देता। उसने महीने तक मेरे साथ रहना बर्दाश्त किया मेरी करतूतों को जानते हुए भी।" जब उसे पता चलता है कि वह राजू के हाथों की कठपुतली बन चुकी है तो भी वह बहुत अफसोस करती है और कहती है मैं इस तरह की अकर्म की जिंदगी से तंग आ गई हूँ।" अतः वह एक बार तो नाचना बंद करने की घोषणा भी कर देती है। पर राजू की मद्द के लिए वह इस जीवन को फिर स्वीकारती है और अंततः राजू का निर्णय हो जाने के पश्चात वह इस जीवन को सदा–सदा के लिए अलविदा कह देती है।

13) **प्रबन्ध पटुता** : रोज़ी एक अच्छी प्रबन्धक भी थी। कलानिपुणता के साथ–साथ वह हर कार्य को बड़े सलीके से कर लेती थी। जब–जब वह शाम को शो देने के लिए जाती थी बड़ी अच्छी तरह वह अपने खाने–पीने का प्रबन्ध भी कर लेती थी। जब तक वह पूरी तरह व्यस्त नहीं थी हर चीज़ का रख–रखाव अपने हाथों से करती थी। राजू के घर जब नृत्य संबंधी बातचीत करने के लिए दो स्कूल के अधिकारी आए थे तो उस समय रोज़ी ने जो प्रबंध किया था वह सराहनीय था, "सुबह रोज़ी ने कमरे की चीजों को करीने से संभाल दिया था और पड़ोस से गुलमोहर के फूल लाकर उसे सजा दिया था। उसने एक गुलदस्ता पीतल के गिलास में सजाकर एक कोने में रख दिया। बिस्तरों को लपेट कर बक्सों, स्टूलों और दूसरी चीजों के साथ एक कोने में सरकाकर रख दिया। पुरानी चटाई को झाड़कर उसके फटे हुए कोने अन्दर को मोड़कर छिपा दिए। उसने गरम काफ़ी के प्याले तैयार रखे।" राजू के जेल चले जाने पर उसने बड़ी दक्षता से पैसा एकत्र किया। मणि को मद्रास भेजकर एक बड़ा वकील मंगवाया। पैसा जुटाने के लिए वह फिर से नाचने लगी। वह सजिन्दों के और रेल के इन्तजाम खुद करने लगी थी। वह इतनी सशक्त थी कि उसके शो पहले से भी अच्छे चल रहे थे। जैसे कभी दक्षिणी भारत के एक कोने में, उससे अगले हफ्ते लंका में, कभी बम्बई में और कभी दिल्ली में उसके शो होते थे। उसकी प्रबन्ध शक्ति के कारण उसका साम्राज्य सिकुड़ने की बजाय दिनों–दिन विस्तृत होता जा रहा था।" अतंतः बड़ी सावधानी से उसने सारा हिसाब किताब करके मद्रास जाकर अपना नया जीवन आरंभ कर दिया।

14) **स्वाभिमानी** : रोज़ी कृति के अंत में एक स्वाभिमानी स्त्री के रूप में भी पाठकों को प्रभावित करती है। उसका यह स्त्री सुलभ स्वाभिमान तब जागता है जब उसे राजू की ओर से धोखा मिलता है। लेखक के अनुसार उसमें एक प्रबल जीवन शक्ति थी जिसकी कीमत स्वयं उसने अभी तक कम आंकी थी। वह इतनी आत्मनिर्भर हो जाती है कि अपने सारे काम स्वयं करती है। उसके इस स्वाभिमान को देखकर राजू कहता है, "जिस तरह से वह सारा काम संभाल रही थी उसे देखकर यही लगता था कि मैं चाहे जेल में रहूँ या बाहर, उसका पति चाहे या न चाहे वह सब कुछ संभाल लेगी। उसकी जिंदगी में न मार्को के लिए जगह थी न मेरे लिए।" स्वाभिमानी होने के कारण ही मद्रास चले जाने पर भी उसने मार्को के पैरों

पर दोबारा गिरने की कोशिश नहीं की। वास्तव में स्वाभिमान के कारण मार्को के पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाती नहीं है जब वह उसे साथ लेकर नहीं जाता तो वह उसके पीछे न जाकर राजू के घर आ जाती है।

इस प्रकार रोज़ी इस उपन्यास की ऐसी नायिका है जो राजू के जीवन में उथल–पुथल मचा देती है। मृत्यु के प्रति विशेष मोह होने के कारण वह अपने पति से भी अलग हो जाती है पर जब इन्तहा हो जाती है तो फिर वह गुमनामी की दुनिया में लौट जाती है। वह एक ऐसी प्रेमिका भी है जो राजू के प्रति विशेष मोह रखती है उसे पाने के लिए वह उसके मामा और माँ के दबाव को भी सह जाती है और अंततः अपने प्रेमी को जेल से मुक्त करवाने के लिए वह अपना सब कुछ दाँव पर लगा देती है। राजू द्वारा की गई गलती के कारण वह उसको सदा–सदा के लिए त्याग देती है।

वेलान

वेलान एक ग्रामीण है। वह एक भोला – भाला किसान है। वह एक उच्चकोटि का भक्त है जो अपने स्वामी के लिए कुछ भी करने को तैयार है। उसे अपने स्वामी में पूरी श्रद्धा थी इसलिए राजू जब अपने विगत जीवन के विषय में बताता है तो भी वह विश्वास न करके उसे स्वामी के रूप में ही आदर देता है।

मार्को

मार्को इस उपन्यास में रोज़ी के पति के रूप में परिचय पाता है। वह एक चित्र विज्ञानी है और मलगुड़ी में गुफाओं के अध्ययन के लिए आता है और अपनी खोज के आधार पर "दक्षिण भारत का सांस्कृतिक इतिहास" पुस्तक छपवाता है। वह एक ऐसा पात्र है जो केवल गुफाओं में ही पड़ा रहता है। उसने विवाह केवल इसलिए किया है कि उसकी पत्नी उसकी देखभाल करें। उसे यह भी ज्ञान नहीं रहता कि दूसरों के मनोभाव क्या है ? उन्हें जीवन में उसकी आवश्यकता है कि नहीं। उसे केवल इतना ही पता है कि वह अपनी पत्नी की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है। रोजी के यह कहने पर भी कि नृत्य उसकी जिन्दगी है तो वह उसे कहती है, "क्या तुम मुझे नाचने की इजाज़त दोगे। ऐसा करने से मुझे बड़ा सुख मिलेगा"। तो उसे लगता है कि उसकी पत्नी शायद उसका मुकाबला करना चाहती है वह कहता है, "यह विद्या का क्षेत्र है, सड़क पर व्यायाम के करतब दिखाने का नहीं।" पर जब उसे पता चलता है कि रोज़ी और राजू में संबंध है तो वह कहता है, मुझे नहीं मालूम था कि उस होटल में ऐसे – ऐसे कलाप्रेमी जमा होते हैं। लोगों की नेक चलनी में विश्वास करके मैंने मूर्खता की।" और वह चुप्पी साध लेता है। अपनी पत्नी की ओर से उदासीन होते हुए उसे वही छोड़कर चला जाता है।

गफ्फूर

गफ्फूर इस उपन्यास में एक टैक्सी चालक तथा राजू का दोस्त है। वह अपने व्यवसाय में निपुण है। राजू जब रोज़ी के प्रति आकर्षित होता है तो वह राजू को ऊँच – नीच समझाने का प्रयास करता है पर राजू पर जब कोई असर नहीं होता तो वह अपना अलग रास्ता नाप लेता है। अंत में जब राजू स्वामी बन जाता है तो उसके प्रति संवेदना होती है।

राजू की माँ

राजू की माँ इस उपन्यास में एक सुघड़ गृहिणी के रूप में आती है। पढ़ी–लिखी न होने के बाद भी वह सामाजिक ऊँच – नीच का ध्यान रखती है। आतिथ्य भाव को जानने के कारण वह रोज़ी के आने पर उसका स्वागत करती है पर यह जानकर कि वह विवाहिता है उसे अपने पति के पास लौट जाने के लिए कहती है। वह अपने बेटे को गलत राह पर चलने से रोकती है पर जब वह उसकी बात नहीं मानता तो वह अपने भाई को भी बुलाती है। उसे राह पर लाने के प्रयास में वह घर छोड़कर अपने भाई के साथ चली जाती है। वह समय–समय पर राजू का व्यवसाय संबंधी तथा जीवन संबंधी मार्गदर्शन करती है। अंततः जब राजू को अदालत के कटघरे में देखकर क्रोधित हो जाती है और रोज़ी को इसका जिम्मेवार समझती और राजू को दुखी हृदय से कहती है–तुमने अपने और अपने परिचितों के माथे पर कैसा कलंक लगाया है ? जब तुम हफ्तों तक निमोनिया में पड़े थे तो मुझे डर लगता था कि कहीं तुम मर न जाओ लेकिन अब जो भुगतना पड़ रहा है, उससे तो तुम्हारी मौत ही अच्छी थी .....। अपने पुत्र के लिए ऐसी कामना वही माँ कर सकती है जो लोकलाज को मानती हो और जिसका हृदय अति संतुष्ट हो।

अतः वस्तु विन्यास की दृष्टि से देखा जाए तो उपन्यासकार ने पात्रों की भीड़ इकट्ठी न कर केवल गिने–चुने पात्रों के माध्यम से उपन्यास के क्लेवर की रचना की है और अपने इस प्रयास में वह सफल है।

6.3.3 परिवेश एवं वातावरण

कृति के वस्तु – विन्यास में परिवेश की भी महत्वपूर्ण भूमिका रहती है क्योंकि रचना के उद्देश्य और पात्रों के चरित्र परिवेश–वातावरण के अभाव में विकसित नहीं हो सकते। परिवेश–वातावरण से अभिप्राय है – "चारों ओर की वे सब बातें जिनका जीवन, विकास निर्वाह आदि पर प्रभाव पड़ता है।" उपन्यास में परिवेश तो कभी महत्वपूर्ण पात्र की भूमिका निर्वाह करता है और कभी रचनाकार के उद्देश्य को सजीवता देता है। प्रस्तुत उपन्यास 'गाइड' एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें जो घटनाएँ घटी हैं उसमें परिवेश भी उत्तरदायी है। इस कृति में तीन तरह का परिवेश अपना अस्तित्व रखता है। मलगुड़ी

क्षेत्र का, जेल का तथा मंगला के प्राचीन मंदिर का। राजू तथा रोज़ी के व्यक्तित्व निर्माण में इसकी भूमिका सराहनीय है। मलगुड़ी दक्षिणी भारत का एक पहाड़ी क्षेत्र है जो अपनी भौगोलिक और ऐतिहासिक संपदा के लिए यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र है। मलगुडी मेम्पी की पहाड़ियों पर बना पीक हाउस यात्रियों को बरबस ही यात्रा के लिए विवश करता है। राजू इसी क्षेत्र की अपार सम्पदा को देखते हुए दुकान के काम को पार्ट टाइम करके 'टूरिस्ट – गाइड' का व्यवसाय कर लेता है। वह उस स्थान पर आने वाले यात्रियों में अपनी सूक्ष्म एवं स्थूल दृष्टिकोण के कारण चर्चित हो जाता है। मार्को को इस स्थान की पुरानी गुफाएँ आकर्षित करती हैं ओर वो अध्ययन हेतु, मद्रास से अपनी पत्नी सहित वहां पहुँचता है। गाइड का कार्य निभाते हुए भी राजू रोज़ी के प्रेम में पड़ जाता है। दूसरा परिवेश सेंट्रल जेल का है जहाँ पर नकली हस्ताक्षरों के जुर्म में राजू के चरित्र के कई पक्षों को उद्घाटित करने में सफलता प्राप्त की है। राजू ने इस स्थान को सांसारिक ईर्ष्या – द्वेष तथा शत्रुता से मुक्त माना है। राजू के अनुसार – अगर यही जेल की जिंदगी थी तो और लोग इसे क्यों नहीं अपनाते थे। जेल के नाम से ही काँप उठते थे मानों वहाँ इंसान को ज़ंजीरों में रखा जाता हो, लोहे से दागा जाता हो और सुबह से लेकर शाम तक उसे कोड़े लगाए जाते हो। कैसे मध्ययुगीन विचार थे ये ? जेल से ज़्यादा अच्छी जगह कौन–सी हो सकती थी। नियमों का पालन करने पर यहाँ बाहर की दुनियां की बजाय ज़्यादा तारीफ मिलती है। मैं दूसरे कैदियों के साथ खाना – खाता था और उन्हीं के साथ सामाजिक जीवन व्यतीत करता था। पचास एकड़ के इलाके में मैं आज़ादी से घूम – फिर सकता था। नये कैदी जेल में आकर पहले कुछ दिन उदास और क्षुब्ध रहते थे। मैं उन्हें समझाता, "दीवारों को भूल जाओ तो सुखी रह सकोगे।" मुझे उन लोगों की बात सोचकर हँसी आती थी जो जेल विचार–मात्र में आतंकित हो उठते थे। दो साल बाद जब मुझे जेल से बाहर जाना पड़ा तो आंसुओं से मेरा गला रूंध गया। मेरी ख्वाहिश हुई कि काश मैंने इतना रुपया वकील पर बर्बाद न किया होता। उस जेल में स्थायी रूप से रहने में मुझे खुशी होती।" अतः जेल का परिवेश मूल्यों की शिक्षा दबे, एक दूसरे के साथ प्रेम से रहने की शिक्षा देता है।

मंगला प्रदेश का प्राचीन मंदिर भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। मंगल ग्राम नदी के किनारे स्थित है। नदी के दूसरे छोर पर एक प्राचीन मंदिर है। जहाँ पर चार बाहों वाले एक लम्बे देवता की मूर्ति थी जिसके एक हाथ में चक्र था और दूसरे हाथ में राजदण्ड था। काफी समय से यह मंदिर उपेक्षित पड़ा था। जेल से निकलने के पश्चात् जब राजू इस जगह पहुँचता है तो वह एकाएक स्वामी बन जाता है। दूसरों की सहायता का भाव लिए राजू एक स्वामी के रूप में पूरे भारत में एकाएक प्रसिद्ध हो जाता है। लेखक ने मंदिर नुमा परिवेश चित्रित कर ग्रामीणों की आस्था का वर्णन भी किया है। इसके माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि धार्मिक स्थल तथा इन स्थलों पर रहने वाले संत महात्मा किस प्रकार लोगों का मार्गदर्शन करते

हैं और उनके सुखों को विशेष महत्व देते है। ग्रामीणों की श्रद्धा उनके व्यवहार और स्वभाव के कारण एक आडम्बरी व्यक्ति भी स्वमीी के पद को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार परिवेश वातावरण की दृष्टि से गाइड उपन्यास की रचना सार्थकता लिए हुए है।

6.3.4 उद्देश्य

उद्देश्य को दृष्टि में रखकर ही उपन्यास की वस्तु रचना की जाती है। उद्देश्यपूर्ण रचना ही लेखक और पाठक के मध्य एक सेतु स्थापित करती है। 'गाइड' आर. के. नारायण कृत ऐसी कृति है जिसमें लेखक कई उद्देश्यों को एक साथ लेकर चला है। इसका मुख्य उद्देश्य है राजू के जीवन संघर्ष का वर्णन करना। एक साधारण परिवार में जन्म लेने के पश्चात् वह दुकानदारी संभालता है पर शीघ्र ही वह टूरिस्ट गाइड बन जाता है। इसी व्यवसाय में आकर वह टूरिस्ट रोज़ी की ओर आकर्षित हो जाता है। उसके सम्पर्क में आकर वह टूरिस्ट गाइड से उसे नर्तकी बनाने हेतु, उसका प्रेमी व सहायक बन जाता है। अधिक लोभ के कारण वह रोज़ी के हस्ताक्षार करने के अपराध में कारावास चला जाता है और वहाँ से छूटने पर वह स्वामी के रूप में ख्याति प्राप्त कर लेता है। इसी सारी यात्रा में वह किन–किन कठिनाईयों का सामना करता है इसका चित्रात्मक वर्णन इस रचना में किया गया है। रचना का दूसरा उद्देश्य है रोज़ी को एक सफल नृत्यांगना बनाना। इसमें लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि जन्मजात प्रतिभा को कभी दबाया नहीं जा सकता कयोंकि जैसे ही परिस्थिति थोड़ी अनुकूल होगी वह प्रतिभा स्वतः ही उभर आएगी। रोज़ी को नृत्य की घुटी अपनी माँ से मिली थी पर मार्को के साथ विवाह करवाकर वह नृत्य का परित्याग कर देती है। पर राजू के साथ मिलने पर और उससे प्रोत्साहन पाकर वह एक सफल नर्तकी बन जाती है। इसके लिए वह अपने दाम्पत्य संबंधों को भी ताक पर रख देती है।

रचनाकार का उद्देश्य पाठकों को मालगुड़ी के अप्रतिम सौंदर्य से परिचित करवाना है। दक्षिणी भारत का यह स्थान रचना में ऐसे वर्णित होता है कि पाठक उसके प्राकृतिक सौंदर्य से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इसलिए पढ़ने के बाद पाठक का मन भी उसे देखने के लिए लालायित हो उठता है। दक्षिण भारत के मलगुड़ी क्षेत्र की संस्कृति का वर्णन कर लेखक ने वहाँ के रीति – रिवाजों, लोक विश्वासों, खान–पान, त्योहार – उत्सवों पर प्रकाश डालकर भारत जो कि बहु संस्कृतियों का देश है उसके दक्षिणी आंचल की संस्कृति का परिचय दिया है। 'गाइड' उपन्यास के माध्यम से लेखक ने टूरिस्ट गाइड के व्यवसाय पर भी प्रकाश डाला है। यह एक ऐसा व्यवयास है जिसमें गाइड का बहुर्मुखी ज्ञानी होना आवश्यक है। अतः बहुत से पढ़े–लिखे लोग इस व्यवसाय में भी आ सकते हैं। इसके अतिरिक्त राजू और रोज़ी के प्रेम संबंधों पर प्रकाश डालते हुए विवाहेतर संबंधों पर भी प्रकाश डाला है और इसके परिणामों से भी परिचित करवाया है। इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने लोगों की धार्मिक आस्था पर भी प्रकाश डाला है। हमारे

भारत की यह त्रासदी भी है कि भारतीय किसी भी संत – महात्मा पर ऐसे विश्वास कर लेते हैं कि मानो वही उनके जीवन के सुख–दुख के लिए जिम्मेदार हैं। राजू मंगल वासियों को बता भी देता है कि वह कोई महात्मा या संत नहीं है पर वे लोग उस पर ऐसी आस्था रखते हैं कि वास्तव में उसे स्वामित्व वरण करना पड़ता है।

6.4 सारांश :

इस प्रकार वस्तु विन्यास की दृष्टि से उक्त उपन्यास के सभी तत्व मिलकर इसे सार्थकता प्रदान करते हैं। लेखक ने इस उपन्यास में एक ऐसे परिवेश को जीवंत किया है जो पात्रों को अपना विकास करने में सहायक है।

6.5 अभ्यासार्थ प्रश्न :

प्र1. वस्तु–विन्यास की दृष्टि से 'गाइड' उपन्यास का मूल्यांकन कीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र2. 'राजू' का चरित्र–चित्रण करें।

उ) ____

____

____

____

प्र3. रोजी उर्फ नलिनी के चरित्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

उ)

प्र4. 'गाइड' उपन्यास के परिवेश एवं वातावरण पर टिप्पणी कीजिए।

उ)

प्र5. 'गाइड' उपन्यास के उद्देश्य पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

6.6 पठनीय पुस्तकें :

1. 'गाइड' – आर. के. नारायण

……

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**

Semester-III **Lesson No. 7**

गिरीश कर्नाड का साहित्यिक परिचय

7.0 रूपरेखा

7.1 उद्देश्य

7.2 प्रस्तावना

7.3 गिरीश कर्नाड का साहित्यिक परिचय

7.4 सारांश

7.5 कठिन शब्द

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

7.7 पठनीय पुस्तकें/संदर्भ

7.1 उद्देश्य

1. गिरीश कर्नाड की जीवन यात्रा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
2. एक नायक, निर्देशक के रूप में गिरीश कर्नाड को जान सकेंगे।
3. गिरीश कर्नाड के कृतित्व से अवगत हो सकेंगे तथा इनके नाटकों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

7.2 प्रस्तावना

गिरीश कर्नाड हिन्दी और कन्नड़ नाटक साहित्य के बहुचर्चित, मेधावी एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यक्तित्व हैं। सिनेमा के क्षेत्र में इन्होंने काफी नाम कमाया है। एक सफल अभिनेता के साथ–साथ कर्नाड एक अच्छे निर्देशक और नाटककार भी हैं।

इतिहास पुराण, जातक और लोककथाएँ गिरीश कर्नाड के लिए सर्वाधिक समृद्ध, उत्प्रेरक और आकर्षक कथा बीज के स्रोत रहे हैं। नई दृष्टि एवं संवेदना के वहन के लिए वे अपनी रचना का शरीर अतीत से चुनते हैं। अपने नाटक, अभिनय व निर्देशन द्वारा साहित्य क्षेत्र की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों को हासिल कर उन्होंने नाटक साहित्य के गौरव को बढ़ावा ही नहीं दिया बल्कि भारतीय आधुनिक नाटक रंगभूमि को एक नई दिशा प्रदान की है।

7.3 गिरीश कर्नाड का साहित्यिक परिचय

गिरीश कर्नाड ने 1961 से नाट्य–लेखन प्रारम्भ किया।अपनी सुदीर्घ कला साधना द्धारा उन्होंने कई नाट्य–कृतियों का सृजन किया। इन्होंने अभिनेता, निर्देशक तथा स्क्रीन लेखक के रूप में भारतीय सिनेमा को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सृजनात्मक प्रतिष्ठा प्रदान की है। समकालीन विद्रूपताओं और विसंगतियों को उभारने के लिए कर्नाड इतिहास पुराण, पुरातन कथाओं का उपयोग करते हैं। आइए, इनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व का परिचय प्राप्त करें :

जन्म,परिवार ओर शिक्षा –प्रसिद्ध नाटककार, नायक, निर्देशक गिरीश कर्नाड का जन्म महाराष्ट्र के 'माथेरान' नामक गांव में 19 मई 1938 ई.में हुआ। इनका जन्म एक सम्पन्न तथा सुसंस्कृत परिवार में हुआ। इनकी माता कृष्णबाई एक नर्स थी और पिता रघुनाथ कर्नाड डाक्टर थे। गिरीश कर्नाड अपने जन्म के संबंध में कहते हैं कि 'सारस्वत ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने वाले हम ना तो पूर्ण कन्नड़ हैं और न ही मराठी। लेकिन इन दोनों भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान हमें प्राप्त हुआ'। कर्नाड कन्नड़ और मराठी भाषाओं को अपना कर भी किसी जात–सम्प्रदाय को अपने जीवन में नहीं अपनाते। ऐसे में मुक्त वातावरण में अपना विद्यार्थी जीवन बिताने का सुयोग कर्नाड को मिला। उनकी स्कूली शिक्षा शिरसी से शुरू होती है। उनसे बड़े भाई बहनों ने गुजराती, मराठी और अंग्रेजी से शिक्षा पायी तो गिरीश और उनकी छोटी बहन ने कन्नड़ और अंग्रेजी माध्यम से। सन् 1943 से 1947 तक शिरसी म्युनिसिपल प्राथमिक स्कूल में उनकी शिक्षा हुई। इसके उपरान्त मारिकांबा हाई स्कूल में शिक्षा शुरू हुई। उन्होंने 10वीं और 12वीं की परीक्षा धारवाड़ में पूरी की। बाद में कर्नाटक कॉलेज से बी.ए. (इकोनामिक्स, गणित, स्टेटिस्टिक्स) प्रथम श्रेणी में पास किया। गिरीश ने ऑक्सफोर्ड से राजनीति, दर्शन और अर्थशास्त्र में एम.ए. किया है।

नौकरी और व्यवसाय (आजीविका) – गिरीश कर्नाड की आजीविका की शुरुआत ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से होती हे। वहां उन्होंने 1963 से 70 तक करीब सात साल असिस्टेंट मैनेजर और मैनेजर की नौकरी की। 1987–88 में शिकागो विश्वविद्यालय के लिए विजिटिंग प्रोफेसर चुने गए। 1988–93 तक संगीत नाटक अकादमी के अध्यक्ष रहे। इस प्रकार कई सरकारी, गैर सरकारी संस्थाओं के सदस्य बनकर अपनी जिम्मेदारी को संभालते रहे हैं। वे सन् 1963 में ऑक्सफोर्ड यूनियन सोसाइटी के प्रेसिडेंट चुने गए

तो भारत के समाचार पत्रों में गिरीश की इस उपलब्धि और उन्नति पर गौरवपूर्ण समाचार छपे। ऑक्सफोर्ड यूनियन सोसाइटी का प्रेसिडेंटशिप आसामन्य,विरले, बुद्धिमान तथा सर्वतोमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है। गिरीश इस सम्मान को पाने वाले चौथे भारतीय थे।

कर्नाड : नायक, निर्देशक के रूप में – गिरीश कर्नाड केवल नाटक ओर रंगमंच के लिए ही नहीं बल्कि फिल्म और धारावाहिक के नायक, निर्देशक के रूप में काम कर चुके हैं। उन्होंने कन्नड़, हिन्दी, तमिल, बंगला, तेलगु आदि भारत की विभिन्न भाषाओं की फिल्मों में काम किया। मद्रास में काम करते समय ही उनका फिल्मी करियर आरम्भ हो गया। नाटक लिखने और खेलने के साथ–साथ फिल्मों ने भी उन्हें ख्याति दिलाई। वे नाटक और फिल्म दोनों से जुड़े रहे हैं। सन् 1969 में उन्होंने यू.आर. अनंतपूर्ति के प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यास 'संस्कार' पर फिल्म बनाने की योजना बनाई। इस फिल्म में उन्होंने संवाद लेखन के साथ ही प्राणेशाचार्य की भूमिका भी बड़ी सफलता से निभायी। 'संस्कार' को श्रेष्ठ फिल्म का राष्ट्रीय स्वर्णकमल पुरस्कार प्राप्त हुआ। इस फिल्म के साथ कन्नड़ में कलात्मक फिल्मों का एक नया युग ही आरम्भ हो गया जिसने परोक्ष रूप से समूचे भारतीय फिल्म–संसार को प्रभावित किया।

गिरीश ने सन् 1971 में फिल्मानुभव में एक कदम और आगे बढ़ाया। कन्नड़ के लोकप्रिय उपन्यास एस.एल. भैरप्पा के 'वंशवृक्ष' को फिल्माने का निश्चय किया और उन्होंने इस बृहद उपन्यास का (स्क्रिप्ट) संवाद लिखा और उसमें राजाराव की भूमिका भी निभायी और नाट्य–निर्देशक ब.ब. कारन्त के साथ भी सफलता से काम किया। उन्हें 1972 में सर्वश्रेष्ठ भारतीय फिल्म के लिए दिया जाने वाला राष्ट्रपति स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। सन् 1973 में उन्होनें श्री कृष्ण आलनहल्ली के कन्नड़ उपन्यास 'काडु' पर आधारित फिल्म में भारत का प्रतिनिधित्व किया और उसी वर्ष उन्हें लंदन नेशनल फिल्म समारोह में गौरवपूर्वक सम्मान दिया गया।

सन् 1976–77 में भैरप्पा के एक और उपन्यास 'तब्बलिय नीनादे मगने' को कन्नड़ में तथा 'गोधूलि' नाम से हिन्दी में फिल्माया। इस फिल्म की पटकथा गिरीश ने लिखी और ब.ब. कारन्त ने इसका निर्देशन किया। गिरीश ने सन् 1978 में 'ओंदानोंदू कालदल्ली' को फिल्माया। उसकी पटकथा लिखकर स्वयं निर्देशन भी किया। इस फिल्म को सर्वोत्तम कन्नड़ फिल्म का राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ।

इसके बाद गिरीश ने 'चेलुवी' नामक लोककथा पर आधारित फिल्म का निर्देशन किया और उसकी पटकथा भी लिखी। इस तरह उन्होंने कई फिल्मों का यशस्वी निर्देशन किया और अभिनय भी महत्वपूर्ण और प्रभावी ढंग से निभाया।

सन् 1999 में गिरीश ने कुवेंपु द्वारा रचित 700 पृष्ठों के बृहद उपन्यास को फिल्माया। इस विस्तृत

उपन्यास को केवल दो घण्टे में प्रस्तुत करना एक निर्देशक के लिए मुश्किल है। इस मुश्किल को गिरीश ने आसान बनाया। इस फिल्म के यशस्वी निर्देशन के बाद, गिरीश ने दूरदर्शन के धारावाहिक के रूप में इसकी पुर्नसृष्टि की। गिरीश कर्नाड को धारावाहिकों के सफल निर्देशन, साक्ष्य चित्र, फिल्म निर्माण के लिए कई महत्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

आईये, इनकी नाट्य–रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करें :

ययाति कर्नाड का पहला नाटक है। इसे उन्होंनें 1961 में लिखा है। इस नाटक की कथा महाभारत के आदिपर्व पर आधारित है। ययाति और पुरु की कथा को नाट्य कथावस्तु का आधार बनाया गया है। इस मिथकीय नाटक के माध्यम से नाटककार ने वर्तमान मनुष्य के आंतरिक द्वन्द्व, लिप्सा, वासना, ईर्ष्या, अभिभावकों की अपनी संतान के प्रति उदंडता, तथा कर्तव्य व उत्तरदायित्वों के भंवर में फंसे मनुष्य का वर्णन किया है। इसकी कथावस्तु चार अंकों में विभाजित है। नाटक प्रायः दिन के दोपहर के करीब शुरू होकर रात को समाप्त होता है। ययाति, पुरु, शर्मिष्ठा, स्वर्णलता, चित्रलेखा, देवयानी की सम्पूर्ण कथा को एक ही दिन की घटनाओं के माध्यम से बड़ी कलात्मकता के साथ नाटककार ने अभिव्यक्त किया है। इस नाटक में अस्तित्ववाद और उससे वंचित युवा पीढ़ी का मनोविश्लेषण है।

इनका दूसरा नाटक 'तुगलक' 1964 में लिखा गया। तुगलक मानवीय शक्ति की सीमाओं की त्रासद कथा है। इसे नेहरू युगीन भारत के आदर्शवादी स्वप्नों और महत्त्वकांक्षाओं की असफलताओं का आख्यान कहा जा सकता है।कर्नाड ने तुगलक की रचना के साथ ऐतिहासिक नाट्य–धारा को एक नयी दिशा दी। इतिहास में विक्षिप्त रूप में घोषित मुहम्मद तुगलक की घटनाएँ और राजनैतिक असफलताएँ नाटककार ने केवल एक माध्यम के रूप में ली हैं। उनका लक्ष्य एक शासक के व्यक्तिगत जीवन, मानसिक संघर्ष, पारिवारिक सम्बन्धों और निकटस्थ व्यक्तियों के विरोध,विश्वासघात आदि के उद्घाटित करना है, जिसने जन–कल्याण की शपथ लेकर राजसिंहासन पर बैठने वाले शासक को मृत्यु का क्रूर नियन्ता बना दिया और इस शासक के महत्वाकांक्षी जीवन के करुण अन्त से नाटककार युगीन राजनेताओं की शासन – तंत्र की असफलताऔं पर भी प्रकाश डालता है। व्यक्ति और शासक के रूप में 'तुगलक' का ऐतिहासिक चरित्र इतने अधिक विरोधाभासों, विडम्बनाओं और विसंगतियों से घिरा हुआ है कि किसी प्रतिभावान नाटककार के लिए एक रचनात्मक चुनौती बन सकता है। नाटककार सुरेन्द्र वर्मा के अनुसार, 'तुगलक में भारतीय जन–जीवन के शाश्वत तथा चिरन्तन दुःख और स्वतन्त्र भारत के पहले प्रधानमंत्री के स्वप्न दृष्टा रूप की झलक दिखाई देती है।'

'हयवदन' नाटक (1972) इनकी एक और उत्कृष्ट कृति है। इसमें भी मानव के द्वन्द्वात्मक व्यक्तित्व का विश्लेषण किया गया है। इसकी मूल कथावस्तु कई आख्यानों से ली गयी है पर सारी कथा पर कर्नाड

की अपनी कल्पना ही अधिक काम करती दिखाई पड़ती है। यह नाटक कर्नाटक की यक्षगान शैली पर आधारित है। यक्षगान की शैली में सूत्रधार भागवत और नटों की सहायता से चरित्रों और कथावस्तु का उद्घाटन करते हुए व्यक्ति की जीवन में परिपूर्णता तथा संपूर्णता की तीव्र कामना और उसके लिए होने वाले संघर्ष का चित्रण करता है। यह नाटक कर्नाड के प्रसिद्ध नाटकों में से एक है।

'नागमण्डल' नाटक (1988) लोककथा पर आधारित है। इसमें भी दो–तीन लोककथाएँ जुड़ी हुई हैं। भारतीय आख्यानों में नाग का इच्छित रूप धारण कर लेना एक जनप्रिय और सशक्त कथावस्तु रही है। बड़े–से–बड़े लेखक भी इन मिथकों से प्रभावित होते रहे हैं। विज्ञान चाहे कितनी भी उन्नति कर ले पर साहित्यकार कल्पना जीवी ही रहेगा। इसकी दुनिया अलग ही रहेगी। वह जो कुछ कहना चाहता है उसे कल्पना और मिथक के द्वारा सशक्त और प्रभावशाली ढंग से कह देता है। यह बात इस नाटक से सिद्ध होती है। अभिनय और संवादों की दृष्टि से कर्नाड का यह नाटक भी उतना ही सफल है जितने कि दूसरे अन्य नाटक। इसके अतिरिक्त इस नाटक में नाटककार ने नारी के शोषण का दिग्दर्शन भी कराया है।

'बलि नाटक' 1980 में कर्नाड ने रचा। नाटक का विषय पशु–बलि है। कथा बताती है कि बलि आखिर बलि है, वह जीते–जागते जीव की हो या आटे से बने पशु की। हिंसा तो तलवार चलाने की क्रिया में है इसमें नहीं कि वह किस पर चलाई गयी है। हिंसा का यह विषयनिष्ठ, सूक्ष्म और उद्वेलक विश्लेषण गिरीश कर्नाड ने एक पौराणिक कथा के आधार पर किया है जिसे उन्होंने तेरहवीं शती के एक कन्नड़ महाकाव्य से लिया है।

'रक्तकल्याण' (1990) ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। बसवणा नामक एक कवि और समाज सुधारक इसका केन्द्रिय चरित्र है। रक्तकल्याण की भूमिका में गिरीश ने स्पष्ट किया है – "तलेदंड शीर्षक से मैंने यह नाटक कन्नड़ में सन् 1989 में लिखा था, जब मंडल और मंदिर का प्रश्न ज्वलन्त था।" ईस्वी सन 1106–1168 के बीच मौजूदा बसवणा के जीवन मूल्यों कार्यों और उसके द्धारा रचित पदों की जितनी प्रासंगिकता तब थी उतनी ही आज भी है। बसवणा के जीवन मूल्य हैं– सामाजिक असमानता का विरोध धर्म–जाति लिंग– भेद आदि से जुड़ी रुढ़ियों का त्याग और ईश्वर भक्ति के रूप में अपने– अपने कर्मों का निर्वाह। आकस्मिक नहीं की उसके जीवनादर्शों में यदि गीता के कर्मवाद की अनुगूंज है जो परवर्ती कबीर भी सुनाई पड़ते हैं।

अग्नि और वर्षा नाटक (1995)–इतिहास पुराण जातक और लोककथाएं गिरीश कर्नाड के लिए सबसे प्रिय विषय रहे हैं। यह नाटक इसी कड़ी में से एक हैं। नाटक के केन्द्र में महाभारत का एक महापर्व है। अपने वनवास काल में देशाटन में पांडव इधर – उधर भटक रहे हैं। संत लोमेश इन्हे यवक्री अर्थात

यवक्रत की कथा सुनते हैं। इस कथा के भीतर कई गंभीर अर्थ विद्यमान हैं। नाटक में उस काल में स्त्री जाति पर होने वाले अत्याचारों का भी जीवंत चित्र खींचा गया है

टीपू सुल्तान के खवाब (2018)– इस नाटक में टीपू सुल्तान के जीवन के अन्तिम दिनों का चित्रण है। टीपू मैसूर का सुल्तान था। उसे भारतीय इतिहास के प्रमुख व्यक्तित्वों मे स्थान प्राप्त है। उसने भारत मे अंग्रेजी शासन का विरोध किया। नाटक में उसके जीवन और भारत के इतिहास की कुछ प्रमुख घटनाओं को साकार किया गया है।

उपर्युक्त नाटकों के अतिरिक्त कर्नाड ने शादी के एलबम, बिखरे बिम्ब और पुष्प आदि कई महत्वपूर्ण नाटक लिखे हैं।

गिरीश कर्नाड ने मुख्यतः नाटक लेखन ही किया है। इसके अतिरिक्त इनकी एक आत्मकथा 'आडआडता आयुष्य' है जिसमें उन्होंने अपने बाल्यकाल से घटित घटनाओं को एक सुंदर मोती के हार की भांति पिरोया है। गिरीश कर्नाड के 2008 में प्रकाशित 'आगोम्मे इगोम्मे' में उनके प्रमुख भाषण, लेखन, व्यक्तिचित्र आदि महत्वपूर्ण संग्रह हैं। गिरीश के लेख आज भी श्रेष्ठ विमर्श के रूप में प्रस्तुत होते हैं।

7.4 सारांश

गिरीश कर्नाड एक सफल नाटककार के रूप में समाने आते हैं। जिन्होंने अपने नाट्य लेखन द्वारा केवल कन्नड़ साहित्य को ही नहीं बल्कि भारतीय नाटय साहित्य तथा रंगमंच की सफलता की बुलंदी तक पहुँचाया है। इनके नाट्य साहित्य की सबसे बड़ी खासियत विभिन्न भाषाओं में उनका अनुवाद होना है। यह अपने नाटकों की रचना सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुसार करते हैं। इन्होंने अपने नाटकों की पृष्ठभूमि का आधार मिथक व इतिहास को बनाया तथा आधुनिक समकालीन जीवन की विसंगतियों को दर्शक/पाठक के सामने प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया।

7.5 कठिन शब्द

मेधावी, सर्वतोमुखी, विरोधाभास, द्वन्द्वात्मक

7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1 गिरीश कर्नाड के व्यक्तित्व पर विचार करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र.2 नायक, निर्देशक के रूप में गिरीश कर्नाड का विश्लेषण करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र.3 'गिरीश कर्नाड एक सफल भारतीय नाटककार हैं' सिद्ध कीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

7.7 पठनीय पुस्तकें/संदर्भ

1. गिरीश कर्नाड, ययाति, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. गिरीश कर्नाड, तुगलक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
3. डॉ. (श्रीमती) शिल्पा बशेट्टी, मोहन राकेश और गिरीश कर्नाड के नाटकों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, विकास प्रकाशन,कानपुर
4. डॉ. व्ही.व्ही हेब्बल्ली, हिन्दी और कन्नड़ के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, साहित्य रत्नालय, कानुपर
5. Tutan Mukherjee, Girish Karnad's Plays : Performance and Critical Perspectives, Pencraft International Publications, New Delhi, 2005

……

गिरीश कर्नाड की नाट्यकला

8.0 रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 नाट्य–कला क्या है?

8.4 कन्नड़ नाटक और रंगमंच : एक परिचय

8.5 सारांश

8.6 कठिन शब्द

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.8 पठनीय पुस्तकें/संदर्भ

8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययन उपरान्त आप :–

(i) नाटक का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

(ii) नाट्य–कला के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

(iii) कन्नड़ नाटक और रंगमंच का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

(iv) गिरीश कर्नाड की नाट्य कला को जान सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही नाटक भी साहित्य के अन्तर्गत आता है किन्तु इसकी अपनी कुछ निजी विशेषताएँ हैं जो इसे साहित्य की अन्य विधाओं से भिन्नता प्रदान करती हैं। नाटक दो आयामी विधा है यह अपने लिखित रूप में अपूर्ण तथा एकांगी है। इसमें तभी पूर्णता आती है जब इसे मंच पर प्रस्तुत किया जाता है। साहित्य की अन्य विधायें जहां पढ़ने, लिखने तक ही सीमित हैं वहीं नाटक पढ़ने, लिखने, सुनने के साथ–साथ देखने के तत्व से भी सम्पन्न है। नाटक के भीतर बनता–ढलता छोटा–सा जीवन, हमारे जीवन के विभिन्न आयामों को स्पर्श करता हुआ हमें जीने की एक नयी समझ और चेतना प्रदान करता है जिससे उपजते भाव, विचार और चेतना हमें उच्च मानवीय भूमि पर पहुँचा देते हैं। यह अपनी तीव्र संप्रेषणीय क्षमता द्वारा जीवन की चुनौतीपूर्ण स्थितियों को अभिव्यक्त करने में पूर्णता सक्षम है।

8.3 नाट्य–कला क्या है?

नाट्य–कला एक ऐसी विशिष्ट कला है, एक ऐसा उपकरण है जिसके माध्यम से मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्त किया जा सकता है। विभिन्न संस्कृतियों में नाट्य–कला मानवीय व्यवहार के दर्पण के रूप में उपयोग में लायी गई। जीवन के हर क्षेत्र को समझने और उसे अपने साथ लेकर चलाने के लिए गणित, भाषा, सामान्य विज्ञान, सामान्य इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र आदि की जानकारी अनिवार्य होती है, उसी तरह नाटक की जानकारी भी अनिवार्य है। जिस तरह इतिहास हमें अपने समय के साथ–साथ आज के भी राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिदृश्य को समझने में हमारी मदद करता है। ठीक इसी तरह नाटक हमें अपने जीवन को रचनात्मक तरीके से सोचने और उसके सहारे आगे बढ़ने के लिए रास्ता दिखाता है। यह केवल मनोरंजन का साधन भर नहीं है बल्कि यह मनुष्य के भीतर मानव गढ़ता है। नाट्य विधा की रमणीयता को स्पष्ट करते हुए बाबू गुलाबराय ने लिखा है – "नाटक में सभी कलाओं का समावेश होता है। इसमें साहित्य, चित्रकला, संगीत नृत्य, काव्य, इतिहास, समाज शास्त्र, वेशभूषा की सजावट कपड़ों का रंगना आदि सभी शास्त्रों और कलाओं का आश्रय लिया जाता है।"

यह सामान्यतः कला का वह रूप है जिसमें दर्शकों के बीच एक कहानी का प्रस्तुतीकरण, संवादों एवं शारीरिक क्रियाओं के माध्यम से किया जाता है। नाटक मंचन के दौरान विभिन्न रंगमंचीय अवयवों जैसे अभिनय, वेशभूषा, दृश्य, प्रकाश, ध्वनि एवं संवाद के माध्यम अपनी बात संप्रेक्षित करता है। नाटक एवं उसके द्वारा संप्रेषित संदेश का बौद्धिक एवं भावनात्मक प्रभाव नाटक के कलाकारों एवं दर्शकों/श्रोताओं दोनों पर होता हे। नाटक एक दर्पण के समान है जिसमें हम अपनी छवि का मूल्यांकन कर सकते हैं एवं मानव व्यवहार तथा भावनाओं को गहराई से समझ सकते हैं।

8.4 कन्नड़ नाटक और रंगमंच : एक परिचय

कन्नड़ नाट्य–लेखन का आरम्भ संस्कृत नाटकों के अनुकरण पर लिखे गए नाटकों से हुआ। सन् 1689 में चिक्कदेवराय के दरबारी कवि सिंगराचार्य ने संस्कृत के मूल नाटक से 'मित्राविन्दा गोविन्द' शीर्षक से एक नाटक का अनुवाद किया। यही कन्नड़ का प्रथम नाटक है। कन्नड़ का रंगमंच बहुत पुराना है परन्तु उसका आधुनिक रूप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से दीखने लगा। उसी समय एक पारसी नाटक कम्पनी कर्नाटक में भ्रमण के लिए आयी। उसने राजमहल में कुछ नाटकों का अभिनय किया जिससे मैसूर महाराजा और उनके दरबारी बड़े प्रभावित हुए। राजदरबार के विद्वान बासप्पा शास्त्री ने कालिदास के 'शाकुन्तलम्' नाटक का अनुवाद प्रस्तुत किया। उन्नसवीं सदी के अन्त में कुछ और संस्कृत नाटकों का अनुवाद और रूपान्तर हुए। लेकिन ये नाटक कन्नड़ रंगमंच से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए नहीं थे। कन्नड़ में ग्रामीण नाटकों की परम्परा ही रंगमंच से जुड़ी हुई थी। उन्नीसवीं सदी में इस परम्परा से जुड़े कलाकारों ने अपने व्यवसायिक दल बना लिए, जिन्हें 'नाटक मण्डलियाँ' कहा जाता था।

लोकप्रिय रंगमंच के नाटकों और पारम्परिक लिखित नाटकों के बीच बहुत अन्तर था। 'नाटक मण्डलियों द्वारा मेलों और ग्रामीण क्षेत्रों में लोकप्रिय नाटकों के लगातार प्रदर्शन हो रहे थे, जबकि लिखित नाटक दरबारी पण्डितों की साहित्यिक गतिविधियों तक ही सीमित रहे। नंदालिके नारनप्पा जैसे कुछ आधुनिक लेखकों ने लोकप्रिय रंगमंच और लिखित नाटकों के बीच की खाई को पाटने की दृष्टि से कई यक्षगानों की रचना की, लेकिन उनके ये प्रयास भी इस दिशा में कोई बड़ी सफलता नहीं प्राप्त कर सके।

बीसवीं सदी में एम. गोविन्द ने अतुकान्त काव्यात्मक शैली में कुछ नाटक लिखे। इस शैली का प्रभाव आधुनिक कन्नड़ नाट्य लेखकों पर व्यापक रूप से पड़ा। इस दौर में अंग्रेजी नाटकों के अनुवादों और रूपान्तरों ने भी कन्नड़ नाट्य लेखन को प्रभावित किया। गुरू वासुदेवाचार्य इस तरह के रूपान्तरकारों में अग्रणी थी। 1930 ई. में धारवाड़ के श्रीरंग ने कन्नड़ में एकांकी लेखन की शुरूआत की।

आधुनिक समाज और उसकी समस्याओं को प्रस्तुत करने वाले नाटकों के लेखन और अभिमंचन का आरम्भ 20वीं सदी में हुआ। कन्नड़ में इस प्रकार की विषयवस्तु वाले नये नाट्यलेखन का आरम्भ 1918 ई. में प्रकाशित टी.पी. केलाराम के नाटकों से माना जाता है। शिवराम कारन्त ने कन्नड़ में पद्य और गीति नाटक लिखे। ए.एन. कृष्णराव, श्रीकष्ठप्य, गोविन्द पाई, के.वी. पुटप्पा आदि ने सामाजिक समस्याओं के चित्रण को अपने नाटकों का आधार बनाया। शिवराम कारन्त ने संगीत एवं नृत्य नाटक लिखे तथा आद्य रंगाचार्य ने प्रयोगधर्मी नाटकों के माध्यम से कन्नड़ नाटक और रंगमंच को समृद्ध किया।

नयी पीढ़ी के नाटककारों में गिरीश कर्नाड, लंकेश तथा चन्द्रशेखर कंबार के नाटकों से कन्नड़

नाटक और रंगमंच को नई पहचान मिली। नाट्यलेखन के साथ–साथ नाट्य निर्देशन में ब.ब. कारन्त, के. वी सुबप्पा, प्रसन्ना, आर नागेश, टी.एम. नरसिंहम्, सुरेन्द्र नाथ, भागीरथी कदम, रघुनन्दन, सुरेश आचार्य, सुरेश अनागली इत्यादि ने आधुनिक कन्नड़ नाटक और रंगमंच तथा भारतीय नाट्यजगत् को नए आयाम दिये हैं।

8.5 गिरीश कर्नाड की नाट्य–कला

अपने समय के नाटककारों में गिरीश कर्नाड कन्नड़ नाटक और रंगमंच को नये प्रतिमानों से प्रतिष्ठित करने वाले श्रेष्ठ नाटककार सिद्ध हुए। गिरीश के नाटक काल परिधि की सीमा लाँघकर व्यापक फलक पर प्रस्तुत होते हैं। उन्होंने अपनी समकालीन चेतना के प्रदर्शन से भारतीय रंगमंच की जड़ें इतनी मजबूत कर दी हैं जो भविष्य में भी अपना एक प्रभाव परिलक्षित करेंगी। कर्नाड की कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं जो उनकी नाट्यकला को प्रभावशाली बनाती हैं। जैसे – समकालीन यूरोपीय रंगमंच का विशेष ज्ञान, पश्चिमी नाटक साहित्य के प्रदर्शन का ज्ञान और सबसे महत्वपूर्ण उनकी रंगमंचीय विवेकशीलता। उन्होंने भारतीय और पश्चिमी रंगमंच की साझेदारी में वर्तमान और भूतकाल को सम्मिलित करके हमारे वर्तमान को अर्थ–अस्तित्व प्रदान किया है। ज्ञानपीठ पुरस्कार पाने वाले कर्नाड बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व हैं। भारतीय रंगमंच में कर्नाड का योगदान विस्तीर्ण/असीम है। भारतीय रचनात्मक नाटककारों में ही नहीं बल्कि संसार के नाटककारों में उनका अद्वितीय स्थान है। यद्यपि वे नाटककार के अतिरिक्त एक कुशल अभिनेता, निर्देशक, अनुवादक भी हैं परन्तु संसार भर में उन्हें एक नाटककार के रूप में ही प्रसिद्धि प्राप्त है। उन्होंने चार दशकों में लगभग 10 नाटकों की रचना की। अपनी नाट्य–कला के विषय में चमन आहूजा के साथ एक साक्षात्कार में वे कहते हैं –"मैं किसी भी रचनात्मक लेखन को अंकों के संबंध में नहीं आंकता। 'इवसने और सत्यजीत रे' ने एक वर्ष में केवल एक नाटक और एक फिल्म से ज्यादा प्रकाशित नहीं की। एक नाटक की रचना ऐसे नहीं होती कि बैठ गए और झपट्टा मारकर पांडुलिपि निकाल दी; क्योंकि अच्छी कल्पना व विचारों का प्रतिदिन साक्षात्कार नहीं होता। अवलोकन, अध्ययन, चिंतन, शोध, रूपरेखा लेखन और कई बार प्रारूप की पुनरावृत्ति – इस सब के लिए समय की आवश्यकता होती है।''गंभीर चिंतन मनन के पश्चात ही वे सृजन को आकार देते हैं। वह रंगमंच को एक स्वतन्त्र विधा के रूप में देखते हैं– "मैं अभिनेता प्रकाशक, चित्र निर्णायक, निर्देशक यह सब हूँ लेकिन मुझे इनमें किसी भी क्षेत्र में स्वतन्त्रता का एहसास नहीं हुआ।" इस प्रकार नाटक और रंगमच ही ऐसा स्थान है जहां कर्नाड स्वतन्त्र रूप से अपनी प्रतिभा को उकेर पाते हैं।

जब वह अध्ययनरत थे तभी उन्होंने अपने पहले नाटक 'ययाति' की पांडुलिपि तैयार कर ली थी और हमेशा सृजनात्मक नाट्य लेखन में प्रयासरत रहे तथा नाट्य रचना को अपने जीवन में सर्वोपरि स्थान

देते हैं। इस बात को स्वीकार करते हुए उन्होंने एक साक्षात्कार में स्वीकार किया है – "बेशक, क्यों नहीं? अक्सर, मैं दुःख महसूस करता हूँ, जब मैं नाटक रचना के स्थान पर ... जिसका मैं चिंतन करता हूँ, कर सकता हूँ और हमेशा करता रहूँगा... मैं टी.वी. धारावाहिक में अभिनय करता हूँ इसके संदर्भ में यद्यपि मैं फिल्मों में भी अभिनय करता रहा जो पूर्णरूप से धनोपार्जन का अच्छा साधन हैं, किंतु यह आत्माघात से अधिक था। यह इसलिए था क्योंकि मैं एक अभिनेता नहीं बनना चाहता था किंतु आजीविका कमाने के लिए अभिनय करता हूँ। इसके साथ ही मैंने अपने ऊपर एक कृपा करके अपनी आत्मा को बचा लिया, नाटकों की पुनर्रचना करके, जो मैं कभी भी कर सकता था। थियेटर मेरा पहला प्यार है और हमेशा पहला आवेश रहेगा।"उपरोक्त वार्तालाप से यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्नाड हमेशा से ही एक नाटककार के रूप में अपनी प्रतिभा को उभारना चाहते हैं और उन्होंने ऐसा किया भी, जिसका ज्वलंत उदाहरण उनके नाटक हैं। लेकिन एक साहित्यकार को लेखन उतना पारिश्रमिक नहीं दिला पाता जिससे वे अपने परिवार की सुख–सुविधाओं को जुटा सकें। इसलिए कर्नाड ने आजीविका के लिए अभिनय का क्षेत्र चुना किन्तु इसके बावजूद भी वे अपने पथ से विचलित नहीं हुए और नाटक लेखन को भी अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया। उन्हें रंगमंच, फिल्म की अपेक्षा अधिक जीवंत,प्रत्यक्ष और उत्तेजक माध्यम लगता है। जिसमें किसी भी प्रकार का ग्लैमर नहीं होता, जो कलाकारों को सम्मोहित करे। रंगमंच तो केवल लोगों के पैशन के कारण ही जीवित है और रहेगा। यह उनकी नाट्यकला की खासियत है कि जब उनके मन में किसी नाटक की कथावस्तु आती तो वे इसे अपने मित्रों या निर्देशक से चिंतन–मनन के साथ उसका विश्लेषण करते तथा नाटक की पांडुलिपि की रचना करते समय अपने अनुभव से भिन्न–भिन्न चीजों, तकनीकों से उसमें रोचकता लाने का प्रयास करते हैं क्योंकि उनके अनुमान में अनुभव ही व्यक्ति को अधिक सजग व प्रतिभाशाली बनाता है। वे नाटक रचना में ही अनुभव के पक्षपाती नहीं है बल्कि फिल्म निर्देशन में भी वह अपना अनुभव प्रयोग करते हैं और यही कारण है कि वे एक नाटककार के साथ–साथ एक कुशल फिल्म निर्देशक भी है। बहुप्रतिभा के धनी होने के कारण उन्हें पता था कि एक नाटक को किस प्रकार से दर्शक/पाठक के समक्ष प्रस्तुत करना है जिससे वे उन पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाए। यह वे भली प्रकार जानते हैं कि रंगमंचीय प्रदर्शन को प्रभावशाली बनाने के लिए रंग–नृत्य, रूप–सज्जा, रोशनी व दृश्यों का विभाजन आदि विधियों का प्रयोग किया जा सकता है और इसके लिए एक नाटककार को अनुभव की आवश्यकता होती है।

किसी भी रचना की सर्वप्रथम विशेषता यह होती है कि वह पाठक/दर्शक को जागृत करे तथा उसकी विषयवस्तु प्रेरणादायक हो क्योंकि इसके बिना किसी भी रचना को मूर्त रूप नहीं दिया जा सकता। लेकिन गिरिश कर्नाड के अनुसार एक दूसरा तत्व है जो रचना को जीवंत बनाता है वह है, नाटककार की रुचि, जो किसी भी रचना को मूर्त रूप प्रदान करती है। कर्नाड अधिकतर पश्चिमी देशों में रहे और अनेक पश्चिमी नाटककारों का अध्ययन किया जैसे – शेक्सपीयर, शॉ, अनोयूलह, ब्रेख्त, सार्त्र, कामू आदि। लेकिन

कर्नाड ब्रेख्त के नाटक लेखन की तकनीक से बहुत प्रभावित थे। रंगदर्शन की गहराई से अवलोकन करने के बाद उनका कहना है कि –

"जब मैं इंग्लैंड में था तो मैंने अनुभव किया पश्चिमी नाटक हमारी भारतीय संस्कृति, समाज और रीतिरिवाजों के बिल्कुल अनुकूल नहीं हैं। क्योंकि उस समय ब्रिटिश रंगमंच काफी संकीर्ण था और यह केवल ड्राईंग रूम और रसोईघर तक ही सीमित था। यूरोपीयन रंगमंच इससे कहीं अधिक प्रेरणादायक था विशेषताः फ्रैंच नाटककार जैसे कोकटीऊ, अनोयूलह आदि। क्योंकि उन्होंने यथार्थवादी दर्शन को नकार कर, मिथक को अपने कथानक में प्रयोग करके आधुनिक जीवन को दर्शाने का प्रयत्न किया। यहाँ तक कि शॉ ने भी सामाजिक परिस्थितियों को अपनी रचना की विषयवस्तु बनाया, परंतु उनमें अनुभव का अभाव था। अतः पश्चिमी नाटकों में समाज के व्यक्तिवादी अस्तित्व का प्रभाव परिलक्षित होता है। लेकिन भारतीय साहित्य में हमने समाज को रिश्तों के संदर्भ में परिभाषित किया जैसे – राजत्व, वर्ग, जाति आदि। इस प्रकार की विषयवस्तु में हम अपने विचारों को अपनी भाषा में प्रस्तुत कर सकते हैं।" कर्नाड की भारतीय संस्कृति पर गहन आस्था थी जिसका प्रमाण उनके सभी नाटकों में मिलता है।

एक अभिनेता के रूप में कर्नाड ने अनूदित नाटकों में अभिनय किया। इससे उन्हें यह लाभ हुआ कि नाटकों के अनुवाद में किन–किन तथ्यों का ध्यान रखना आवश्यक है और किस प्रकार अनूदित रचना को रोचक व प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इस विषय में कर्नाड ने अपने विचार मुखर्जी से अपनी बातचीत के दौरान व्यक्त किया है –"मैंने यह सीखा कि मंच पर किस प्रकार की भाषा की आवश्यकता होती है जैसे – लय, गति, श्वास व मनोवृति की स्वीकृति ठहराव आदि। यह मेरे लिए अनूठा अनुभव था। तब मैंने अपने आप से पूछा कि क्यों न मैं अपने नाटकों का अंग्रेजी अनुवाद करूं। इस तरह मैंने 'ईवम इंद्रजीत', 'आषाढ़ का एक दिन', 'हयवदन' का अनुवाद किया।

कर्नाड अपने लेखन के साथ किसी भी तरह का समझौता करने के पक्षपाती नहीं थे, चाहे वह उनका घनिष्ठ मित्र ही क्यों न हो। प्रसन्ना कर्नाड के अच्छे मित्र थे जिन्होंने कर्नाड के नाटकों का निर्देशन किया। लेकिन एक बार उनके नाटक 'अग्नि और वर्षा' के निर्देशन के समय उन्हें लगा कि नाटक के अंत में ब्रह्मराक्षस की भूमिका को हटा दिया जाए क्योंकि इससे नाटक के निर्देशन में 35 मिनट का समय बच रहा था और उन्होंने ऐसा किया। जब कर्नाड को बात का पता चला तो वे प्रसन्ना के निर्देशन से बहुत प्रसन्न हुए परंतु इसके साथ ही उन्होंने कहा कि –"नाटक की प्रस्तुति बंद कर दें क्योंकि नाटक के अंतिम दृश्य में जो बदलाव किया, वह उसके पक्ष में नहीं है। यह मुद्दा मेरे लिए एक गंभीर विषय था।" यहां पता चलता है कि कर्नाड अपने नाटकों के साथ किसी तरह की छेड़–छाड़ पसंद नही करते।

फिल्मों में अभिनय करने के पश्चात ही कर्नाड, नाटक व फिल्म में अन्तर स्पष्ट करते हैं कि – "फिल्म व नाटक में काम करने के अनुभव के बाद, हाँ। मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि नाटक और रंगमंच वास्तव में कलाकार का माध्यम है जबकि फिल्म व्यवसायिक का। असफल होने का अधिकार कलाकार का बुनियादी अधिकार है और फिल्म कतई इसकी सुविधा नहीं देता। वहाँ, एक बार असफल होने का अर्थ है हमेशा के लिए खत्म हो जाना और मेरे विचार से जो असफल होने का खतरा नहीं उठा सकता वह शायद कलाकार नहीं होता।"

कर्नाड के विचार में नाटक में फिल्मों की अपेक्षा अधिक रोचकता व सुधार की गुंजाइश होती है क्योंकि नाटक का वास्तविक महत्व रंगमंच पर ही होता है और दर्शकों की जिज्ञासा को पूर्ण करने के लिए उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। एक कलाकार रंगमंच पर अपने अभिनय से घटनाओं को मूर्त रूप प्रदान करता है, यही कारण है कि कर्नाड अपने नाटकों के मूलकथ्य को पात्रों के माध्यम से रंगमंच पर जीवंत करते हैं। उन्होंने ऐतिहासिक, लोकगाथा व मिथक को अपने नाटकों की पृष्ठभूमि बनाकर तत्कालीन समाज की समस्याओं को सामान्य जन तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है। कर्नाड ने अपने पात्रों के बीच मतभेद, संघर्ष तथा उस संघर्ष का सामना करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरित किया है।

गिरीश कर्नाड अपने नाटकों की विषयवस्तु ऐतिहासिक तथा पौराणिक स्त्रोतों से लेते हैं और उसमें समकालीन समाज की समस्याओं को पिरोते हैं। वे आधुनिक मनुष्य समाज और राष्ट्र के कष्टों और संकटों का सामना करने के लिए ऐतिहासिक और पौराणिक चरित्रों के मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक संघर्ष की पुर्नरचना करते हैं। वे उत्कृष्ट का विशिष्ट प्रयोग करते हुए एक समग्र नाट्य कृति का निर्माण करते हैं। वे अपने नाटकों द्वारा भारत की बहुआयामी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थितियों का वृहद फलक प्रस्तुत करते हैं। बड़ा ही सुन्दर संतुलन उनके नाटकों में दिखता है जहां भारत के तथाकथित स्वर्णिम अतीत या इतिहास को कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल करते हैं पर उनके कथा की अंतर्धारा वर्तमान पीढ़ी को ध्यान में रखकर बुनी गई होती है और इसका सुन्दर उदाहरण उनके पहले नाटक 'ययाति ' में देखने को मिलता है। इस नाटक में कर्नाड ने महाभारत की आदिपर्व कथा को आधार बनाते हुए वर्तमान मानव के द्वन्द्व तथा अस्तित्व पीड़ा को सामने लाया है। इनका दूसरा नाटक तुगलक ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में लिखा गया कर्नाड के समय की विडंबनापूर्ण स्थितियों का प्रतीक है। मुहम्मद बिन तुगलक, दिल्ली सल्तन्त के ऐसे सुल्तान के रूप में जाने जाते हैं जो अति आदर्शवादी महत्त्वकांक्षा रखते हुए भी एक शासक के रूप में असफल रहे। इसी तरह इनके अन्य नाटक हयवदन, अंजुमलिगे, बलि, नागमण्डल, रक्तकल्याण टीपू सुल्तान के स्वप्न में कर्नाड ने मिथक, लोककथा और इतिहास को आधार रखते हुए अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों को उठाया है।

8.6 सारांश

अतः अपने नाटकों में कर्नाड विभिन्न परिपाटियों तथा लोक कलाओं का प्रयोग इस प्रकार करते हैं कि परस्पर असम्बद्ध दिखाई देने वाले पारम्परिक और लोक–कलाओं के साधारण तत्व भारत की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर का रूप ले लेते हैं। उनके नाटकों का मुख्य विषय ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं, चरित्रों और स्थितियों में समसामयिक भारत की समस्याओं को प्रस्तुत करना होता है। अपनी नाट्य कला में इस प्रविधि के प्रयोग से कर्नाड का ध्यान मुख्य रूप से भारत के जटिल सामाजिक–सांस्कृतिक ताने–बाने को प्रस्तुत करना रहता है।

8.7 कठिन शब्द

बौद्धिक, अनुकरण, पारम्परिक, अभिमंचन, प्रतिमान, अवलोकन, रूपरेखा, धनोपार्जन

8.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1 नाटक के स्वरूप पर विचार करते हुए कन्नड़ नाटक और रंगमंच पर प्रकाश डालिये।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र.2 नाट्य–कला से क्या अभिप्राय है, गिरीश कर्नाड के नाट्य चिंतन पर विचार करें।

उ) ____

____

____

____

प्र.3 गिरीश कर्नाड की नाट्य–कला पर विस्तृत लेख लिखें।

उ) ____

8.9 पठनीय पुस्तकें/संदर्भ

1. गिरीश कर्नाड, ययाति, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. गिरीश कर्नाड, तुगलक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
3. डॉ. (श्रीमती) शिल्पा बशेट्टी, मोहन राकेश और गिरीश कर्नाड के नाटकों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, विकास प्रकाशन,कानपुर
4. डॉ. व्ही.व्ही हेब्बल्ली, हिन्दी और कन्नड़ के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, साहित्यर रत्नालय, कानुपर
5. Tutan Mukherjee, Girish Karnad's Plays : Performance and Critical Perspectives, Pencraft International Publications, New Delhi, 2005

……

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**

Semester-III **Lesson No. 9**

ययाति में मिथकीय चेतना

9.0 रूपरेखा

9.1 उद्देश्य

9.2 प्रस्तावना

9.3 मिथक : अर्थ एवं स्वरूप

9.4 ययाति में मिथकीय चेतना

9.5 सारांश

9.6 कठिन शब्द

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.8 पठनीय पुस्तकें/संदर्भ

9.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरान्त आप :

(i) मिथक का अर्थ जान सकेंगे।

(ii) मिथक के स्वरूप को समझ सकेंगे।

(iii) मिथक में कथात्मकता, प्रतीकात्मकता, धार्मिकता, आलौकिकता, लोक विश्वास एवं प्रासंगिकता से परिचित हो सकेंगे।

(iv) गिरीश कर्नाड के नाटक 'ययाति' की मिथकीय चेतना से अवगत हो सकेंगे।

9.2 प्रस्तावना

पुराकथाओं का वह तत्व जो नयी स्थितियों में नए अर्थ को वहन करे, मिथक कहलाता है। मिथ या मिथक का शाब्दिक अर्थ है परम्परागत, पौराणिक या लोक विश्वासमूलक संदर्भ। मिथक ऐसे संदर्भ हैं जिनके पीछे पूर्वधारणा या विश्वास की शक्ति निहित होती है। प्रत्येक युग का साहित्यकार अपने समय का सच व्यक्त करने के लिए मिथक में नया अर्थ भर कर उसे प्रस्तुत करता है। मिथक साहित्यकार का प्राणवान शस्त्र भी है जिसके माध्यम से वह न केवल पाठकों को संस्कृति और अतीत से जोड़े रखता है बल्कि अपने परिवेश में मौजूद अन्तर्विरोधों की ओर उसका ध्यान भी आकर्षित करता है।

9.3 मिथक : अर्थ एवं स्वरूप

मिथक शब्द अंग्रेजी के मिथ (myth) का हिन्दी प्रतिरूप है "मिथ (myth) शब्द का उद्‌भव यूनानी शब्द 'मिथस' (mythos) से हुआ है जिसका अर्थ है मुँह से निकला हुआ" इस प्रकार इसका संबंध मौखिक कथा से जुड़ गया। हिन्दी में मिथक के लिए पुराणकथा; पूर्ववृत; आख्यान; धर्मकथा जैसे शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं। इन शब्दों से मिथक का अर्थ संप्रेषण नहीं हो पाता। प्रारंभ में मिथक को अलौकिक या दैवीय कथाएँ कहकर इसका संबंध धर्म से जोड़ा जाता था। इसे काल्पनिक और अतर्क्य समझा जाता रहा है। विश्वकोश ब्रिटेनिका के अनुसार, "मिथक एक अज्ञात कथा है जो आंशिक रूप से पारंपरिक और कुछ मान्यताओं, विश्वासों संस्थानों और प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या द्वारा वास्तविक घटनाओं को सामने लाता है और विशेष रूप से धार्मिक संस्कारों और मान्यताओं से जुड़ा होता है।" उपर्युक्त परिभाषा में मिथक को धर्म के साथ संबंधित माना गया है किन्तु कालान्तर में इसके सामाजिक और सांस्कृतिक पक्ष को समझते हुए धर्म के संकुचित दायरे से निकालकर मिथक की व्याख्या होने लगी। वृहद हिन्दी कोश में मिथक को स्पष्ट करते हुए कहा गया है – "प्राचीन पुराकथाओं का तत्व जो नवीन स्थितियों में नये अर्थ का वहन करे।" प्रत्येक युग का रचनाकार मिथक का प्रयोग एक नये अर्थ में करता है जिसके द्वारा वह अपने युग के संदर्भों को वाणी प्रदान करता है। मिथक की इसी गतिशील प्रवृत्ति के कारण मिथक यथार्थ का बोध कराने का शक्तिशाली माध्यम बना है।

मिथक के तत्व :– मिथक के स्वरूप का निर्धारण तभी हो सकता है जब उसके तत्वों का विश्लेषण किया जाए। आइए, मिथक के तत्वों का परिचय प्राप्त करें :

कथात्मकता :– मिथक की विभिन्न परिभाषाओं में इसे धार्मिक एवं प्रतीकात्मक कथा माना गया है। वस्तुतः मिथक में कथा–तत्व अवश्य ही विद्यमान रहता है। इसके अभाव में यह सामान्य वर्णन, विचारों का विश्लेषण अथवा प्रतीक मात्र बनकर रह जाएगा। मिथक में कथानक का घटना–क्रम महत्वपूर्ण नहीं

होता, उसके माध्यम से व्यक्त तत्व एवं सत्य महत्वपूर्ण होते हैं। ये घटनाएं ऐतिहासिक रूप से सत्य हो या न हों, किन्तु जिस जनसमूह में मिथक प्रचलित होता है, वहां उसके प्रतीक ही प्रमुख होते हैं। तथ्य कथन मिथक का गौण लक्षण है। मिथक के अन्तर्गत कथा–तत्व की स्थिति अवश्य रहती है परन्तु उसका महत्व गौण रहता है। मिथक में कथा की अपेक्षा उसके भीतर व्यंजित मूल्यगत अर्थ का ही महत्व होता है। किन्तु फिर भी कथात्मकता का तत्व मिथक में अनिवार्य है।

प्रतीकात्मकता :– मिथक में प्रतीक विधान का भी महत्वपूर्ण स्थान है। प्रतीक एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त किया जाता है। मिथकीय कथाएँ, घटनाएँ और उसके पात्र अपना प्रतीकात्मक अस्तित्व रखते हैं। मिथक में समाहित उद्देश्य और उसके महत्त्व तक मिथक की प्रतीकात्मकता को बिना समझे नहीं पहुँचा जा सकता। प्रत्येक साहित्यकार मिथकीय प्रयोग द्वारा मिथक में नवीन प्रतीकात्मकता का सृजन करता है। उदाहरण के लिए कृष्ण को परमात्मा का प्रतीक माना जाता है किन्तु सृजनकर्ता अपनी युगीन परिस्थितियों के अनुकूल कृष्ण को एक कूटनीतिज्ञ के प्रतीक रूप में चित्रित करता है तो मिथक में नवीनता बनी रहती है। 'यदि मिथक म्रें प्रतीक का पुनर्निर्माण या अभिव्यक्ति की नवीन सम्भावना न हो तो वह रूढ़ होकर अपनी अर्थवत्ता खो बैठता है किन्तु नवीनता की ग्रहण–शक्ति के बल पर वह अनन्त सम्भावनाओं से युक्त अर्थ सम्प्रेषण की सामर्थ्य हासिल कर लेता है।

धार्मिकता और आलौकिकता :– मिथक का एक अन्य तत्व इसकी धार्मिकता और आलौकिकता है। मिथक का धर्म से निकट सम्बन्ध है।प्राचीन काल में कला और धर्म में एकरूपता थी इसलिए मिथक भी धर्म से जुड़े थे। धर्म से संबंधित होने के कारण मिथकीय पात्र और घटनाएं आलौकिक होती हैं। इस प्रकार देखा जाए तो माना जा सकता है कि मिथक में धार्मिकता तो होती ही है किन्तु उन्हें पूर्ण रूप से धर्म के साथ नहीं जोड़ा जा सकता। मिथक में किसी एक धर्म के लोगों के नहीं सम्पूर्ण समाज के मूल्य, गहन आस्था एवं विश्वासों की अभिव्यक्ति भी होती है। मिथकीय पात्र आलौकिक होते हुए भी मनुष्य जीवन के निकट होते हैं और मानवीय संवेदनाओं, मूल्यों को प्रभावित करते हैं।

लोक विश्वास :– जिस समाज में मिथक प्रचलित रहता है वहां उसे पूर्ण विश्वसनीयता प्राप्त होती है। चाहे इतिहास इसे सत्य माने न माने; जन सामान्य का अटूट विश्वास एवं आस्था इसमें रहती है। इतिहास की अपेक्षा मिथक जनसामान्य के अधिक निकट होता है, अपनी इसी विशेषता के कारण मिथक साहित्य में सम्प्रेषण का सशक्त माध्यम है। यदि मिथक के प्रति समाज में विश्वास न हो तो उसका आधार ही समाप्त हो जाता है तब वह मिथक न रहकर केवल कोरी कल्पना मात्र रह जाएगा।

प्रासंगिकता :– मिथक की प्रासंगिकता ही इसकी सार्वकालिकता और सार्थकता को प्रमाणित करती है। साहित्यकार युगानुकूल संदर्भों में मिथकों का प्रयोग करते हुए उसे प्रासंगिक बना देता है। तुलसी

के राम का मिथक मध्यकालीन बोध को दर्शाता है और निराला के राम का मिथक अपने युग की माँग को पूरा करता है। इस प्रकार मिथक केवल अतीत को जानने का ही नहीं बल्कि वर्तमान का बोध कराने का भी माध्यम है। मिथक की अर्थवर्त्ता इसी में है कि वह वर्तमान से नये स्तर पर जुड़े और अपनी प्रासंगिकता को बनाए रखे।

अतः कहा जा सकता है कि मिथक प्राचीन समय में प्रचलित लोक कथाएँ हैं जो भीतर शाश्वत सत्य लिए रहती है। मिथक अतीत का आवरण लेकर वर्तमान संदर्भों के साथ जुड़कर मानवीय जीवन में अपनी प्रासंगिकता को बनाए रखते हैं।

9.4 ययाति में मिथकीय चेतना

आज उत्तर–आधुनिकता और वैश्वीकरण के दौर में हर कोई भौतिकवाद और पश्चिमी सभ्यता को अपनाकर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ में लगा है ऐसे में गिरीश कर्नाड एक समर्थ नाटककार के रूप में मिथक, नीति कथाओं, दंत कथाओं, लोक कथाओं का प्रयोग कर वर्तमान मनुष्य को व्यापक फलक पर प्रस्तुत करते हैं। कर्नाड ने वर्तमान विसंगतियों तथा विद्रुपताओं को उद्घाटित करने के लिए मिथकीय घटनाओं को माध्यम रूप में अपनाया है, जिसमें इन्होंने कल्पना का समावेश किया है। कर्नाड ने ययाति, पुरु, देवयानी और शर्मिष्ठा के अलावा कुछ काल्पनिक पात्रों जैसे चित्रलेखा एवं स्वर्णलता की सर्जना की है। नाटक में मिथक द्वारा वर्तमान जीवन की निरर्थकता, संवेदनहीनता, आक्रोश, व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। 'ययाति' गिरीश कर्नाड का प्रथम नाटक है जिसका प्रकाशन 1961 में हुआ। मिथकीय पृष्ठभूमि में लिखे गए इस नाटक द्वारा नाटककार ने समकालीन जीवन की असंगतियों – छटपटाहट, ईर्ष्या, लिप्सा, अन्तर्द्वन्द्व को उकेरा है। इस नाटक की रचना कर्नाड ने किशोरावस्था के उत्साह में मात्र 22 वर्ष की आयु में की थी जब वे 'रोडस छात्रवृत्ति' प्राप्त करके आगामी अध्ययन के लिए इंग्लैंड के आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में जा रहे थे लेकिन नाटक की रचना से पूर्व वह इस बात से अनभिज्ञ थे कि उन्हें भविष्य में एक विशिष्ट पहचान मिलेगी। एक श्रेष्ठ नाटककार के रूप में कर्नाड ने मिथक का प्रयोग करके ययाति, हयवदन, नागमण्डल और अग्नि और वर्षा आदि महत्वपूर्ण नाटक लिखे हैं।

ययाति नाटक की कथा के मूल में महाभारत के आदिपर्व की मिथक कथा वर्णित है। ययाति चन्द्रवंश का यशस्वी तथा शक्तिशाली राजा था, जो कुशलता और पराक्रम के लिए प्रसिद्ध था, जिसकी चर्चा कर्नाड ने पुरु द्वारा उसकी महानता का गुणगान करते हुए प्रस्तुत की है – ''पुरु : मेरे पिता जी ने किस प्रकार पहली बार ही पचास ऋचाओं को कंठस्थ कर लिया था। एक बरगद पर आपके खड्ग का गहरा चिन्ह अब भी है। मेरे पिता जी ययाति महाराज का केवल बारह वर्ष की आयु में किया गया खड्गाघात!'' लेकिन अपनी कामुक प्रवृत्ति व यौवन लिप्सा के कारण अपने अस्तित्व को समाप्त कर लेता है। वह अपने

राज्य के कल्याण के लिए प्रतिबद्ध है परन्तु यौवन लिप्सा तथा लंबे समय तक जवान बने रहने की प्रबल इच्छा से बढ़कर उसके जीवन में कुछ नहीं। जब उसे शुक्राचार्य की संजीवनी विद्या का पता चलता है तो वह (ययाति) देवयानी (शुक्राचार्य की पुत्री) से विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है और गन्धर्व विवाह करता है। देवयानी एक ब्राह्मण कन्या और ययाति एक क्षत्रिय, वह स्वार्थ–सिद्धी के लिए देवयानी से विवाह करता है ताकि संजीवनी विद्या का ज्ञान प्राप्त करके अमरता प्राप्त कर सके। शुक्राचार्य (असुरों के गुरू) की महानता और शक्ति की व्याख्या धर्मिक ग्रंथों एवं पुराणों में वर्णित है। वे राक्षसों के गुरू थे जिनके पास संजीवनी विद्या थी जिसका ज्ञान प्राप्त कर कोई भी अमर हो सकता था लेकिन संजीवनी का ज्ञान प्राप्त करना सरल कार्य नहीं था। ययाति में अमरत्व को प्राप्त करने की प्रबल इच्छा थी जिसके स्वार्थ में ही वह क्षत्रीय होते हुए भी देवयानी (ब्राह्मण कन्या) से विवाह करता है। मिथकीय कथा की भांति ही नाटक में ययाति अमरत्व प्राप्त करने के लालच में देवयानी से विवाह करता है। देवयानी को इस सत्य का आभास शर्मिष्ठा द्वारा कराया जाता है। शर्मिष्ठा देवयानी से कहती है – "शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या थी . .. समझीं? संजीवनी मिलने पर तुम्हें क्यों न स्वीकार करे? अक्षय पुष्प के साथ मिले कीड़े की तरह।" शर्मिष्ठा के इस कथन से देवयानी सोचने को विवश हो जाती है, क्या सचमुच उसके साथ धोखा हुआ है और ययाति पर संदेह करने लगती है। वह ययाति से स्पष्ट शब्दों में पूछती है – "मैं क्षत्रिय कन्या नहीं हूँ फिर आपने मुझसे विवाह क्यों किया" ययाति अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए देवयानी से विवाह करता है। उसके मन में केवल संजीवनी का लालच बसा है।

वर्तमान समय में भी ययाति जैसे पुरुष देखे जा सकते हैं जिनके कारण दाम्पत्य सम्बन्धों में धोखा, अविश्वास तथा स्वार्थपरता जैसी विसंगतियां आ गई हैं। नाटक में शर्मिष्ठा ययाति की यौवन लिप्सा की ओर संकेत करती हुई उसकी पत्नी देवयानी को सचेत करती है– "यदि तुम शुक्राचार्य की कन्या न होती तो वह तुम्हें वहीं छोड़कर चला जाता तुम्हारे कौमार्य पर अपने रथचक्र की कीचड़ उछालकर तुम्हारा नाम तक बिना पूछे चला जाता।" यहां ययाति का मिथक ऐसे विलासी तथा कामुक व्यक्ति के रूप में चित्रित है जो अपनी भोग प्रवृति तथा लिप्सा के लिए कुछ भी करने को तैयार है। वह देवयानी को केवल इसलिए स्वीकारता है ताकि उसे संजीवनी मिल सके और वह अमर हो जाए।

भारतीय समाज में विवाह पश्चात् पति–पत्नी एक–दूसरे के लिए पूरी तरह समर्पित होकर रहते हैं। उनके मध्य तीसरे व्यक्ति के लिए कदाचित कोई स्थान नहीं होता या होना चाहिए लेकिन 'ययाति' नाटक में गिरीश कर्नाड ने महाभारत की मिथकीय कथा के माध्यम से वर्तमान दाम्पत्य जीवन की यथार्थ स्थिति का अंकन किया है। नाटक में राजा ययाति देवयानी पत्नी के होते हुए भी उसकी सखी शर्मिष्ठा के साथ संबंध बनाता है। जिसका उल्लेख नाटककार ने इस प्रकार किया है – "शर्मिष्ठा : आप मुझे अपनी रानी के रूप में स्वीकार करें, ऐसी इच्छा भी मेरी नहीं है। मैं एक दासी बनकर रहूँगी।" लेकिन देवयानी (ययाति

की पत्नी) के लिए यह अपमान की स्थिति है। एक पतिव्रता नारी अपने पति को दूसरी स्त्री के साथ नहीं देख सकती और शर्मिष्ठा को महल से जाने के लिए कहती है – "मन हो तो अपनी इच्छा से फाँसी लगा लो। पर यह राज्य छोड़कर चली जाओ।" लेकिन ययाति के लिए भोग–विलास ही प्रमुख है। वह शर्मिष्ठा को राजमहल न छोड़ने की आज्ञा देता है – "रुको शर्मिष्ठा। राजाज्ञा बदल गई है। जाओ मत। ... मैंने शर्मिष्ठा को अपनी रानी के रूप में स्वीकार किया है।" एक परायी स्त्री को अपनी रानी कहना, आज के सम्बन्धों के खोखलेपन को उजागर करता है।

कर्नाड ने मिथकीय कथा द्वारा आज के व्यक्ति के अस्तित्ववादी चिंतन को उभारा है। अस्तित्ववादी लेखक सार्त्र, कामू आदि ने चुनाव की स्वतन्त्रता एवं उत्तरदायित्व की भावना पर अधिक बल दिया है। सार्त्र का मानना है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने दायित्व का 'क्रूस' स्वयं ही ढोना पड़ेगा। कर्नाड ने नाटक के सूत्रधार द्वारा यही कहलवाया है – "इस दायित्व के भार से न रसिक बच सकता है न विद्वान। इस प्रकार के दायित्व में ही हमारे जीवन का आनन्द है। मानो गत यौवन को ढूँढने के लिए झुका वृद्ध, पाप के अंधकार से ठोकरें खाकर थका ... वैरागी, मृत्यु की चेतावनी के समान और अविस्मरणीय याद की भांति मेरे पीछे चुपचाप चली आने वाली यह मूक नटीं, इन सबके रास्तों में एक ही बात थी। बोधिवृक्ष नहीं, जिम्मेदारी की सलीब। उसी को उठाकर घूमना पड़ता है और अन्त में उसी पर लटक जाना पड़ता है।" यहां वृद्ध पिता'ययाति', वैरागी पुत्र 'पुरू', मृत्यु का वरण करती 'चित्रलेखा' सभी पात्र अपनी जिम्मेदारी की सलीव उठाने में छटपटाते नज़र आते हैं।

कई पौराणिक कथाओं व मिथकों जैसे रामायण, महाभारत में वचन और शाप की घटनाएँ उद्घाटित होती हैं। इस नाटक में कच का उल्लेख मिलता हे। देवयानी ययाति से विवाहपूर्व अपने ही पिता के शिष्य कच से प्रेम करती है , कच वृहस्पति का पुत्र है जिसके प्रेम को देवयानी ने ठुकरा दिया था। जिसके लिए कच देवयानी को शाप देता है कि वह (देवयानी) ब्राह्मण पुत्री होकर भी क्षत्रिय से विवाह करेगी। नाटक में इस मिथक को शर्मिष्टा उद्घाटित करती है – "तुममें पुरुष जाति के प्रति जो तिरस्कार था, वह भूल गई। कच ने जब तुम्हारा तिरस्कार किया था और तब तुमने प्रतिज्ञा की थी, वह भूल गई।"

शर्मिष्ठा द्वारा अपने पिता को दिए गए वचन का उल्लेख हमें मिथकीय कथा में मिलता है, मिथकीय कथा में वर्णित है कि शर्मिष्ठा ने अपने पिता को वचन दिया था कि वह उम्र भर देवयानी की दासी बनकर रहेगी। शर्मिष्ठा ने देवयानी को सूखे कुँए में धकेल दिया था और ययाति द्वारा उसे कुँए से बाहर निकाला जाता है। इसी कुकृत्य से कुद्ध होकर देवयानी दण्ड के रूप में शर्मिष्ठा को आजीवन अपनी दासी बनाने का प्रस्ताव अपने पिता शुक्राचार्य तथा शर्मिष्ठा के पिता के समक्ष रखती है। अपने परिवार पर आए संकट को टालने के लिए शर्मिष्ठा पिता को वचन देती है जिसका नाटक में शर्मिष्ठा उल्लेख करती है – "मैं

देवयानी की दासी बनकर रहूँगी। यह वचन मैं अपने पिताजी को दे चुकी हूँ।" पिताजी को दिए गए वचन को निभाने के लिए शर्मिष्ठा देवयानी के विवाह के उपरान्त महल में रहने लगती है परन्तु शर्मिष्ठा और ययाति के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जिससे क्रोधित होकर देवयानी शर्मिष्ठा तथा ययाति के अनैतिक सम्बन्धों का सच पिता शुक्राचार्य को बताती है। ययाति के इस कपटी तथा अनैतिक आचरण के लिए शुक्राचार्य उसे शाप देते हैं कि वह आयु से पहले ही बूढ़ा हो जाएगा और शाप का निवारण यह बताया कि यदि कोई अपना यौवन ययाति को दे दे तो वह पुनः यौवन प्राप्त कर लेगा। नाटक में पुरु ययाति का छोटा पुत्र पिता का बुढ़ापा ग्रहण करता है, यह घटना महाभारतीय कथा से आधार ग्रहण करती है। नाटककार ने पुरु के माध्यम से एक सहनशील, बुद्धिमान व आज्ञाकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया है। पुरु के पास धन वैभव की कोई कमी नहीं है लेकिन वह स्वयं को महापुरुष और महापराक्रमी नहीं समझता। उसका मानना है कि वह एक साधारण पुरुष है जिसे किसी वस्तु का मोह, लालच घृणा, द्वेष और ईर्ष्या नहीं है। वह शांत और साधारण जीवन जीने का पक्षपाती है। इसी कारण वह निस्वार्थ भाव से अपने पिता के शाप को ले लेता है, अपनी नवविवाहित पत्नी की भी परवाह नहीं करता। पुरु के माध्यम से कर्नाड ने उद्घाटित किया है कि संतान अपने माता–पिता का सहारा होती है। जिसे आज के अधिकांश युवा विस्मृति करते जा रहे हैं। पुरु के साधारण व्यक्तित्व को उसकी पत्नी चित्रलेखा भी नहीं समझ पाती और आत्महत्या कर लेती है। आत्महत्या की घटना मिथकीय कथा में वर्णित नहीं है। नाटककार ने ययाति को उसके कृकृत्यों का अहसास दिलाने के लिए चित्रलेखा की मृत्यु दिखाई है। जिसके कारण ययाति को अपने कर्मों का अहसास होता है और वह शर्मिष्ठा के साथ वानप्रस्थ जाता है, वानप्रस्थ जाने का दृश्य पूर्णतः मिथकीय घटना है। नाटक में इसकी पुष्टि ययाति के संवाद द्वारा होती है – 'अपने किए पापों को अरण्य में व्रत करके धोना है।' अंत; कर्नाड ने ययाति में महाभारत के आदिपर्व की मिथकीय कथा के माध्यम से वर्तमान समाज की भौतिकतावादी सोच, स्वार्थ, लिप्सा, द्वेष, अभिभावकों की अपने संतान के प्रति उदण्डता, कर्तव्यहीनता अस्तित्ववादी सोच को दर्शाया है।

9.5 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि इस नाटक में गिरीश कर्नाड महाभारत के आदिपर्व की पौराणिक विषयवस्तु को नाटक का आधार बनाकर युगीन विसंगतियों और विद्रूपताओं को प्रबलता से प्रस्तुत करते हैं। नाटककार ने मिथकीय कथा द्वारा व्यक्ति की यौवन लिप्सा, अनैतिक सम्बन्धों की वजह से बिखरते दाम्पत्य रिश्ते, अस्तित्ववादी चिंतन, अभिभावकों की अपनी संतान के प्रति उदंडता, नश्वरता व अनश्वरता के बीच फंसे मनुष्य को प्रस्तुत किया है। अपने अन्य नाटकों की तरह गिरीश कर्नाड इस नाटक में भी पौराणिक कथा भूमि मे माध्यम से जीवन की शाश्वत छटपटाहट को संकेतिक करते हुए अपनी कल्पना शक्ति से एक अविस्मरणीय नाट्यानुभव की रचना करते हैं।

9.6 कठिन शब्द

भौतिकतावाद, उत्तराध्सुनिकता, अन्तर्द्वन्द्व, कंठस्थ, उदण्डता, कर्तव्यहीनता

9.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मिथक की परिभाषा देते हुए ययाति की मिथकीय चेतना स्पष्ट कीजिए।

उ)

2. मिथक के अर्थ और स्वरूप पर विचार करते हुए ययाति नाटक में आए मिथकीय संदर्भों पर प्रकाश डालिए।

उ)

3. 'ययाति एक मिथकीय नाटक है' विचार कीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

9.8 पठनीय पुस्तकें/संदर्भ

1. गिरीश कर्नाड, ययाति, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. गिरीश कर्नाड, तुगलक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
3. डॉ. (श्रीमती) शिल्पा बशेट्टी, मोहन राकेश और गिरीश कर्नाड के नाटकों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, विकास प्रकाशन, कानपुर
4. डॉ. व्ही.व्ही हेब्बल्ली, हिन्दी और कन्नड़ के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, साहित्यर रत्नालय, कानुपर
5. Tutan Mukherjee, Girish Karnad's Plays : Performance and Critical Perspectives, Pencraft International Publications, New Delhi, 2005

……

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**

Semester-III **Lesson No. 10**

ययाति के प्रमुख चरित्र

10.0 रूपरेखा

10.1 उद्देश्य

10.2 प्रस्तावना

10.3 प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

10.4 सारांश

10.5 कठिन शब्द

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.7 पठनीय पुस्तकें/संदर्भ

10.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप ::–

(1) नाटक में पात्रों की भूमिका को समझ सकेंगे।

(2) ययाति नाटक के पात्रों से परिचित हो सकेंगे।

(3) पौराणिक पात्रों को आधुनिक संदर्भों में व्यक्त होता, देख सकेंगे।

10.2 प्रस्तावना

नाटककार अपने नाटक की केन्द्रीय समस्या या संवेदना को दर्शकों तक पहुँचाने के लिए पात्रों का सहारा लेता है। वह अपने मन के भावों को अपने पात्रों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इन्हीं पात्रों

के द्वारा वह नाटक की कथावस्तु को विकास देते हुए पात्रों को नाटकीय समस्याओं के अनुरूप ढालने की कोशिश करता है। नाटक में नाटककार अपने पात्रों के विषय में कुछ कह नहीं सकता क्योंकि वह नाटक में स्वयं उपस्थित नहीं रहता इसलिए वह अपने पात्रों के माध्यम से अपने मन के भाव या विचार को प्रस्तुत करता है। नाटककार का यह प्रयास रहता है कि उसके पात्र उसके भावों या विचारों को प्रभावशाली बनायें और नाटक को सजीवता प्रदान करें।

10.3 प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण

ययाति कर्नाड का प्रथम नाटक है। इसे उन्होंने आक्सफोर्ड में रहते हुए ही 1961 में लिखा था। इसमें उन्होंने महाभारत से सम्बन्धित एक प्राचीन लोककथा के मिथक की आधुनिक सन्दर्भों में पुनर्व्याख्या की है। "राजा ययाति की यौवन लिप्सा, देवयानी और चित्रलेखा की प्रेमाकांक्षा, असुरकन्या शर्मिष्ठा का आत्मपीड़न और दमित इच्छाएँ और पुरू का सत्ता और शक्ति विरोधी अकिंचन भाव – ये सब मिलकर जीवन की ही तरह इस नाटक को बनाते हैं, जो जीवन की ही तरह हमें अपनी अकुंठ प्रवहमयता से छूता है। ययाति नाटक में चित्रलेखा तथा स्वर्णलता को छोड़कर बाकि सारे पात्र ययाति, पुरु, देवयानी, शर्मिष्ठा महाभारत के आदिपर्व से लिए गए हैं।

1. ययाति

ययाति नाटक का प्रमुख पात्र है। वह चन्द्रवंशी राजा तथा नहुष के छः पुत्रों में से एक था। ययाति की कथा महाभारत के आदिपर्व भागवत पुराण तथा मत्स्य पुराण में वर्णित है। नाटक में चित्रित ययाति महाभारत के आदिपर्व की मिथकीय कथा से लिया गया है। ययाति के चरित्र की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

(i) यौवन की लालसा –वृद्धावस्था से सब भयभीत रहते हैं और युवा बने रहना चाहते हैं। ययाति को अपने यौवन से बहुत प्रेम था, लम्बे समय तक भोग विलास में लिप्त रहने के बाद भी सुखोभोग की उसकी कामना तृप्त नहीं होती। वह अपने यौवन को जी भर कर जीने का अभिलाषी है लेकिन नाटक में जब शुक्राचार्य को शर्मिष्ठा और ययाति के अनैतिक सम्बन्धों की सच्चाई पता चलती है तो वह ययाति को समय से पहले ही बूढ़ा होने का शाप दे देता है। ययाति में यौवन प्रियता इतना बलवती है कि वह दूसरों से प्रार्थना करता है कि उसके शाप को कोई स्वीकार कर ले ताकि स्वयं विलासपूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। ययाति सदा जवान बने रहने के लिए छटपटाता है उसकी छटपटाहट को इस कथन द्वारा देखा जा सकता है – "मेरे बुढ़ापे को स्वीकार करने वाले के परिवार को जागीर दूंगा। एक सम्पूर्ण ग्राम ... दस ग्राम, सो ग्राम ... यहा ंतक कि आधा राज्य ... वह जो माँगे, वह दूंगा।" ययाति पराक्रमी और कुशल राजा है लेकिन यौवन लालसा उसे पतन एवं विनाश की ओर ले जाती है। और वह अपने पुत्र पुरु का तारुण्य ग्रहण कर उसे वृद्ध बना देता है इस तरह वह अपनी जवान बने रहने की इच्छा पूरी करता है।

(ii) स्वार्थी व्यक्तित्व – नाटक का पात्र ययाति एक स्वार्थी व्यक्तित्व के रूप में उभरता है। वह शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से संजीवनी विद्या के स्वार्थ में विवाह करता है। नाटक में शर्मिष्ठा देवयानी को पति ययाति की स्वार्थप्रवृति का यथार्थ सामने रखती है – "तुमने समझा, उस महान सौन्दर्य पर ययाति लट्टू हो गया था? वह तो तुम्हें वहीं छोड़कर चला जाता। तुम देवयानी हो, यह मालूम होते ही उसमें मृत्यु को जीतने की इच्छा तीव्र हुई ...।" इस प्रकार देवयानी को ययाति की स्वार्थ भावना का सच पता चलता है। ययाति संजीवनी की लिप्सा के कारण क्षत्रिय होते हुए भी देवयानी (ब्राह्मण कन्या) से विवाह करता है।

(iii) कामुक प्रवृत्ति – ययाति पत्नी देवयानी के होते हुए शर्मिष्ठा का प्रयोग अपनी कामुकता को पूरी करने के लिए करता है। वह देवयानी की सखी दासी शर्मिष्ठा को अपनी कामुकता का मोहरा बनता है। देवयानी को जब ययाति –शर्मिष्ठा के अनैतिक सम्बन्धों का पता चलता है तो वह शर्मिष्ठा को राजमहल छोड़ने की आज्ञा देती है तब ययाति उसे रोक लेता है और कहता है – "रुको शर्मिष्ठा राजाज्ञा बदल गई है। जाओ मत। मैंने शर्मिष्ठा को अपनी रानी के रूप में स्वीकार किया है।" इस प्रकार ययाति नाटक में एक कामुक चरित्र के रूप में सामने आता है।

(iv) प्रक्षेपण प्रवृति – ययाति 'प्रक्षेपण' से प्रभावित है। ऐसे लोग अपनी वंश जाति या गुणों को दूसरों पर आरोपित या लागू करके देखना चाहते हैं। वह पुरु को गुरूकुल इसलिए भेजता है ताकि वह चंद्रवंश के यश और पिता के यश का गुणगान करे, पर उसका यह प्रयास विफल साबित होता है। पुरु अपने को चन्द्रवंश में जन्म लेने के लायक नहीं समझता। वह बचपन से अपने वंश की कीर्ति और गुणगान सुनकर तंग आकर कुंठाग्रस्त हो जाता है। इधर उसकी पुत्रवधु चित्रलेखा अपने पति का अंतःपुर में प्रवेश निषिद्ध करती है तो राजा ययाति उसे भी प्रक्षेपण के कारण चंद्रवंश मर्यादा के अनुकूल बर्ताव करने की सलाह देने जाता है'' अब जो अंगकुल की राजपुत्री को, भरतकुल की बहु, को शोभा दे ऐसा व्यवहार करो'' लेकिन अंत में उसकी मृत्यु से ययाति का मोहभंग हो जाता है और वह पुरु को यौवन वापस लौटाकर वानप्रस्थ चला जाता है।

(v) चतुर व्यक्तित्व – ययाति अत्यन्त चतुर है उसे लगा था किर चित्रलेखा परिस्थिति से समझौता कर लेगी परन्तु वह विद्रोह कर देती है, उसने युवा पुरु से विवाह किया था न कि वृद्ध पुरु से। ययाति बड़ी चतुराई से उसे मनाने का प्रयास करता है कि यौवन का उपभोग वह केवल पाँच–छह वर्षों तक करेगा, इसके पश्चात पुरु को लौटा देगा। वह अपनी बात मनवाने के लिए चित्रलेखा को तर्क पर तर्क प्रस्तुत करता है, "तुम समझदार हो। मेरे कारण तुम्हें दुःख हुआ। पर एक वचन देता हूँ चित्रलेखा। पुरु के तारुण्य को मैं अधिक वर्ष नहीं रखूँगा। मेरे उद्देश्य पूरे होते ही लौटा दूंगा।" इस प्रकार नाटक में ययाति एक चतुर व्यक्ति के रूप में उभरता है।

2. पुरु

पुरु राजा ययाति तथा शर्मिष्ठा का पुत्र है। पूरे नाटक में अपनी बलहीनता के लिए निराश नज़र आता है। कई वर्ष गुरुकुल में शिक्षण पाकर वह अंगदेश की राजकुमारी से विवाह कर राज्य लौटता है। यहां आने पर गोपनीय ढंग से वह पता लगा लेता है कि शर्मिष्ठा तथा ययाति के प्रेम प्रसंग के कारण राजमाता देवयानी महल छोड़कर चली गयी है। इससे वह बहुत निराश होता है। उसके चेहरे पर न नवविवाहित का आकर्षण है और न घर लौटने का आनंद। जीवन के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाला पुरु पिता के बुढ़ापे को स्वीकार करता है।

(i) ममता से वंचित चरित्र – पुरु के हृदय में माता के प्रति अपार आदर और प्रेम है। वह अपनी माँ की धुँधली छवि मन में लिए जी रहा है। बचपन से ही माँ को देखने की लालसा उसके मन में है। इसलिए जब विवाह के पश्चात महल लौटता है तो अपनी मां के विषय में ययाति से प्रश्न करता है – "पिताजी, फिर एक अंतिम बार पूछता हूँ, मेरी माँ कौन थी, अब मुझे उसका सम्पूर्ण उत्तर मिलना ही चाहिए।" ययाति के शर्मिष्ठा के साथ अनैतिक सम्बन्ध है। इसलिए वह पुरु को आजीवन उसकी माँ से दूर रखता है। जब पुरु को पता चलता है कि उसकी माँ असुर कुल की थी तो उसके मन में असुरों के प्रति सम्मान और आदर बढ़ता है। नाटक के अंत में ययाति गुस्से में शर्मिष्ठा को मारने के लिए बढ़ता है तो पुरु उसकी रक्षा करता है और उसे माता कह कर सम्मान देता है।

(ii) अस्तित्ववादी – अस्तित्ववाद व्यक्ति के अस्तित्व को महत्व देता है। दूसरे शब्दों में किसी व्यक्ति की महानता को स्वीकारने का सीधा अर्थ है अपने व्यक्तित्व को कुचलना या अपनी वैचारिकता खोना। नाटक में पुरु अपने पिता की महानता को स्वीकारने के लिए विवश है। बचपन से यौवनावस्था तक पिता के पराक्रम की सैंकड़ों कहानियाँ सुन–सुन कर ऊब चुका है। पिता की महापुरुष छवि के सामने उसे अपना अस्तित्व हीन और निरर्थक लगने लगता है। पुरू इन शब्दों में अपनी स्थिति स्पष्ट करता है – "मैं अपने अस्तित्व से ही घबराता हूँ। इस देह की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए जब मैं अपने भीतर झाँकता हूँ तो वहाँ कुछ नहीं दीखता, अपने आपसे प्रश्न पूछने का साहस भी यदि हो तो वह भी बहुत है, पिता जी ...।" उसे विशेष अवसर की प्रतीक्षा है जब वह यह सिद्ध कर सके कि वह अपने पिता से भी महान बन सकता है अपने अस्तित्व के खोखलेपन के कारण वह हमेशा बेचैन रहता है। अंतः जब यौवन और बुढ़ापा की अदला–बदली का प्रसंग आया तो उसने सहर्ष अपना यौवन पिता को सौंपकर, उसके बुढ़ापे को चुना। जनता की नजर में शायद यह पितृभक्ति का अद्वितीय उदाहरण हो, किन्तु ऐसा करके पुरु अपनी हीनग्रस्तता और पिता के व्यक्तित्व की प्रभुता से मुक्त हो जाता है।

(iii) हीन भावना से ग्रस्त – पुरु हमेशा यह मानता हैं कि वह चंद्रवंश का लायक क्षत्रिय व्यक्ति नहीं है। इसलिए उसमें हीनता ग्रंथि हमेशा प्रबल रहती है, यही हीन भावना उसे बार–बार याद दिलाती है कि वह अपूर्ण है। वह पिता से अपनी अकर्मण्यता इन शब्दों में ज़ाहिर करता है – "मेरा तो दिल बैठ गया है। पुरु ने क्या किया? कुछ भी तो नहीं" इसी अकर्मण्यता तथा अपूर्णता को पूर्ण करने के लिए वह पिता के शाप को बड़े गर्व और अभिमान से स्वीकारता है। वह एक क्षेत्र में असफल रहने पर उत्पन्न हीनता की भावना के निवारण के लिए किसी दूसरे क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने का प्रयास करता है। जिसके तहत वह अपने पिता का बुढ़ापा सहर्ष स्वीकार करता है लेकिन अंत में पत्नी चित्रलेखा की आत्महत्या उसके शाप से भी बड़ी नज़र आती है। इसलिए वह अन्त में कहता है – 'किसी पूर्व जन्म के ऋण के समान आकर तुमने हमें सही पाठ पढ़ाया'।

(iv) अलगाववादी चरित्र – पुरु का स्वभाव अंतर्मुखी है। वह किसी से खुलकर बात नहीं करता। वह अलगाववादी समस्या से ग्रस्त है। ऐसे व्यक्ति दूसरों से बचकर रहना चाहते हैं। दूसरों से संवेगात्मक दूरी रखते हैं। अपने एकांकी जीवन में खलल न पड़े इसलिए वह हर प्रकार की प्रतियोगिता से दूर रहता है न तो वह दूसरों के मामले में हस्तक्षेप करता है और न किसी को अपने मामले में हस्तक्षेप करने देता है। वह अपनी भावनाओं को दबाता है। इस प्रकार नाटक मे पुरु ममत्व से वंचित, अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने वाले, हीन भावना से ग्रस्त एक अलगाववादी चरित्र के रूप में सामने आता है।

3. देवयानी

देवयानी शुक्राचार्य की इकलौती बेटी है। एक बार शर्मिष्ठा और उसके बीच झगड़ा होने के कारण शर्मिष्ठा उसे सूखे कुएँ में धकेलती है वहाँ उसी रास्ते में आते चंद्रवंश का राजा ययाति उसका दाहिना हाथ पकड़कर ऊपर उठाता है। तब से वे दोनों पति–पत्नी बनते है।

(i) अहंकारी व्यक्तित्व – देवयानी पिता के पास रहने वाली संजीवनी की शक्ति से लोगों को अपने वश में रखने का प्रयास करती है। अपनी बचपन की सहेली को वह आजीवन दासी बनाकर अपने पास रखना चाहती है। पुरु के आगमन का विषय सुनकर उसके स्वागत के लिए भी वह नहीं रुकती। कई बार दास्यवृत्ति से तंग आकर शर्मिष्ठा वहाँ से जाना चाहे तो भी उसे मुक्त नहीं करती। शर्मिष्ठा के विषय में देवयानी के द्वारा दिया गया दास्य उसके अहंकार को सूचित करता है, क्योंकि एक असुर राजकन्या को आजीवन दासी बनाकर रखना उसके अहंकार की पुष्टि करता है।

(ii) पर–पीड़न – देवयानी का व्यक्तित्व पर–पीड़क है, अर्थात ऐसा चरित्र जो दूसरों को दुख में, या पीड़ा में देखकर सुख अनुभव करता है। देवयानी जब कच से तिरस्कृत होती है तो बहुत दुखी होती

है। कच द्वारा तिरस्कार का उस पर गहरा असर पड़ता है। वह मन में कोलाहल लिए ययाति से शादी करती है। लेकिन इस बवंडर की बली बनती है शर्मिष्ठा। देवयानी को तब बहुत सुकून मिलता है जब दासी के रूप में एक राजकन्या उसके चंगुल में फँस जाता है। वह अपनी भड़ास दूसरों पर निकालने के मार्ग ढूंढ लेती है। उसका व्यक्तित्व पर पीड़क है।

(iii) पतिव्रता नारी – देवयानी एक पतिव्रता नारी के रूप में नाटक में नज़र आती है। वह अपने पति ययाति के प्रति पूर्ण समर्पित है। जब उसे शर्मिष्ठा और ययाति के अवैध सम्बन्धों के विषय में पता चलता है तब वह एक आदर्श पत्नी की भांति अपने पति को चेतावनी देती है कि वह शर्मिष्ठा को छोड़ दे और शर्मिष्ठा को भी महल छोड़ने की आज्ञा देती है। इस प्रकार नाटक में देवयानी का अहंकारी पड़–पीड़क तथा पतिव्रत्ता नारी का चरित्र उभरता है।

4. शर्मिष्ठा

शर्मिष्ठा एक पौराणिक चरित्र है`जिसकी कथा ब्रहम पुराण तथा महाभारत के आदिपर्व में वर्णित है यह असुर राजा वृषपर्वा की कन्या है। देवयानी और शर्मिष्ठा एक समय सहेलियाँ हुआ करती थीं। लेकिन अब शर्मिष्ठा देवयानी की दासी बनकर रहती है।

(i) दासी – शर्मिष्ठा जन्म से राजकन्या है। एक बार गलती से उसने देवयानी के कपड़े पहन लिए इस पर देवयानी उसका घोर अपमान करती है। गुस्से में शर्मिष्ठा उसे खाली कुँए में धकेलती है। जिसका उसे आजीवन दण्ड भोगना पड़ता है इसके दण्ड स्वरूप देवयानी उसे आजीवन दासी बनाकर रखती है , देवयानी का यह व्यवहार शर्मिष्ठा के भीतर वितृष्णा की भावना भर देता है। जब देवयानी की शादी होती है तब शर्मिष्ठा को उसकी दासी बनाकर भेजा जाता है। पिता राजा होने पर भी शुक्राचार्य के डर से बेटी की नादानगी का यह दण्ड शिक्षा के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। जब देवयानी कई वर्षो बाद उसे दास्य से मुक्त करने का प्रस्ताव रखती है तो शर्मिष्ठा उसे इंकार करती है। दास्य अब उसकी आदत बन चुकी है। शर्मिष्ठा के शब्दों में–"मुझे स्वतन्त्रता नहीं चाहिए। मुझे अब दासता का अभ्यास हो गया है।"

(ii) यथार्थवादी चरित्र – शर्मिष्ठा का चरित्र उसके कठोर शब्दों से ही प्रक्षकों पर प्रभाव डालता है। वह कठिन परिस्थितियों के कारण मुँहफट बन चुकी है। उसके कटु वचनों से राजा से लेकर रंक तक यानी ययाति, देवयानी और दासी स्वर्णलता सब परेशान रहते हैं। शर्मिष्ठा का मानना है कि जो वह कहती है वह सच है। नाटक में वह एक यथार्थवादी व्यक्तित्व के रूप में उभरती हैं। तथा अपने आपको तर्कसंगत विचारक की तरह प्रदर्शित करते हैं।

(iii) निस्वार्थपरता – शर्मिष्ठा का जीवन अपने लिए नहीं बल्कि दूसरों के लिए समर्पित है।

जब वह दासी बनकर देवयानी के साथ आती है तब यथासभव उसकी ईर्ष्या को स्वीकार कर अपना जीवन बलिदान कर देती है। जब राजा ययाति उसको पत्नी के रूप में स्वीकार करता है और शुक्राचार्य ययाति को दण्ड स्वरूप शाप देते हैं, ययाति वृद्ध हो जाने की भावना से विचलित हो जाता है। तब उसको यह सलाह देती है कि अपने आपको यह खुद स्वीकार करे और दूसरे व्यक्ति के ऊपर उस शाप के बोझ को न डाले और नाटक के अंत में ययाति पुरु से अपना शाप वापस लेता है और वानप्रस्थ जाने की इच्छा व्यक्त करता है। उसके साथ शर्मिष्ठा भी वानप्रस्त चली जाती है। उसका पूरा जीवन दूसरों के लिए निस्वार्थ सेवा करने में गुजरता है।

5. स्वर्णलता

स्वर्णलता चंद्रवंश महल की दासी है। उसका पति उस पर व्यर्थ संशय करके उसे छोड़कर चला जाता है। वह जीवनसाथी के बिना दुखमय जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।

स्वर्णलता स्वभाव से संवेदनशील है। वह देवयानी की दासी है। शर्मिष्ठा कई बार स्वर्णलता की भावनाओं को ठेस पहुँचाकर उसे दुःखी करती है तब वह अपनी रानी देवयानी से उसकी शिकायत करती है। जब अंत में राजा ययाति दासी शर्मिष्ठा को रानी घोषित करता है तो स्वर्णलता उसे भी उतने ही समर्पण के साथ उसका अनुसरण करती है। वह अपने अधिकार का लिहाज रखते हुए डरते–डरते ही देवयानी को घर छोड़कर न जाने की सलाह देती है।

स्वर्णलता श्रमिक वर्ग की मानसिकता लिए हमारे सामने प्रस्तुत होती है। वह अपने गरीब पिता की इकलौती संतान है। उसके पिता एक गरीब युवा ब्राह्मण से उसका शिक्षार्जन कराते हैं। कालांतर में उसकी शादी होती है। वह सैनिक पति के साथ खुशी से दस साल बिताती है। कुछ दिनों के बाद उसके पति को पता चलता है कि उसे अक्षरज्ञान देने वाला शिक्षक युवा ब्राह्मण था। वह स्वर्णलता को शक की दृष्टि से देखने लगता है और उससे विरक्त हो जाता है। न वह ठीक से खाना खाता है न सो पाता है। उसकी इस दशा से छुटकारा दिलाने के लिए वह पति से झूठ बोलती है कि ब्राह्मण शिक्षक से उसका कौमार्य टूटा है। उस दिन शांत होकर वह सो जाता है और दूसरे दिन सुबह ही हमेशा के लिए वह घर छोड़कर चला जाता है। तब से स्वर्णलता घुटन, अकेलेपन में जीवन जीने के लिए अभिशप्त है।

6. चित्रलेखा

'चित्रलेखा' अंगदेश की राजकन्या है। वह चंद्रवंश के राजकुमार पुरु की पत्नी है। वह शास्त्रविद्या में प्रवीण है। चित्रलेखा को चंद्रवंश के प्रति अपार गौरव है। लेकिन वह अभिमान उसे पति पुरु के प्रति नहीं होता।

(i) स्वाबलंबी – चित्रलेखा स्वाबलंबी नारी है। शादी के पंद्रह दिन में ही उसका पति पुरु पिता का शाप ग्रहण कर बूढ़ा हो जाता है। बड़े अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए जब छोटों का अधिकार यहाँ तक कि जीवन भी छीन लेते हैं तब छोटों को अपने हक के लिए आवाज़ उठानी पड़ती है ऐसे में चित्रलेखा ययाति का प्रतिकार करती है। वह पुरु की वृद्धावस्था से दुखी होकर ययाति से इन शब्दों में प्रश्न पूछती है– ''उनको चिता के समीप धकेलने वाले आप हैं , मैं नहीं तिस पर मुझे सीख दे रहे हैं'' चित्रलेखा ययाति को उसकी गलती का अहसास कराती है और एक स्वाबलंबी नारी के रूप में नाटक में प्रस्तुत होती है।

(ii) अस्तित्व की खोज – जब चित्रलेखा विवाह के पश्चात पहली बार महल में प्रवेश करती है तो उसे देवयानी के गले से टूटी हुई मंगलसूत्र की मणि मिलती है। शर्मिष्ठा के हाथों से गिरे विष की डिबिया उसे मिलती है। जब ययाति के शाप को पति पुरु स्वीकारते हैं तो वह पहले खुश होती है। बाद में पुरु के बुढ़ापे के विकृत आकार को देखती है तो डर जाती है और उसे कक्ष से बाहर निकाल देती है। इस बात से क्रोधित जब ययाति उसे समझाने आता है तो वह उसे भी सवालों के कटघरे में खड़ा कर देती है। उसे चित्रलेखा एहसास दिलाती है कि उसका इस प्रकार पुरु से यौवन छीनना महज पाप होगा। वह अपने और पति पुरु के लिए लड़ते हुए अपने अस्तित्व को ही मिटा देती है।

10.4 सारांश

इस प्रकार ययाति नाटक के सारे पात्र आंतरिक द्वन्द्व, लिप्सा, स्वार्थ, आत्मपीड़न एवं तनाव से छटपटाते नज़र आते हैं। ययाति की भोग की लालसा, देवयानी का परपीड़क तथा अहंकारी व्यक्तित्व, शर्मिष्ठा का आत्मपीड़न, चित्रलेखा का अस्तित्वबोध तथा पुरु का अलगाववादी तथा हीन भावना से ग्रस्त चरित्र ये सब मिलकर जीवन की ही तरह इस नाटक को आकार देते हैं।

10.5 कठिन शब्द

आत्मपीड़न, कुंठाग्रस्त, अस्तित्ववाद, हीनग्रंथि, प्रक्षेपण

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ययाति का चरित्र–चित्रण करें।

उ) ____

____

____

____

2. पुरु के चरित्र की विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

उ)

3. शर्मिष्ठा का चरित्र–चित्रण करें।

उ)

4. संक्षेप में चित्रलेखा का परिचय दें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

10.7 पठनीय पुस्तकें/संदर्भ

1. गिरीश कर्नाड, ययाति, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. गिरीश कर्नाड, तुगलक, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
3. डॉ. (श्रीमती) शिल्पा बशेट्टी, मोहन राकेश और गिरीश कर्नाड के नाटकों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, विकास प्रकाशन,कानपुर
4. डॉ. व्ही.व्ही हेब्बल्ली, हिन्दी और कन्नड़ के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन, साहित्यर रत्नालय, कानुपर
5. Tutan Mukherjee, Girish Karnad's Plays : Performance and Critical Perspectives, Pencraft International Publications, New Delhi, 2005

……

रवीन्द्रनाथ टैगोर का साहित्यिक परिचय

11.0 रुपरेखा

11.1 उद्देश्य

11.2 प्रस्तावना

11.3 रवीन्द्रनाथ टैगोर का साहित्यिक परिचय

11.3.1 रवीन्द्रनाथ टैगोर का व्यक्तित्व

11.3.2 रवीन्द्रनाथ टैगोर का साहित्यिक परिचय

11.4 निष्कर्ष

11.5 कठिन शब्द

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.1 उद्देश्य

प्रस्तुत अध्याय के अध्ययनोपरान्त आप

- रवीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- टैगोर के साहित्य से परिचित होंगे।
- टैगोर की साहित्यिक विशेषताओं से अवगत होंगे।

11.2 प्रस्तावना

भारत को विश्व ख्याति का प्रथम, नोबल पुरस्कार दिलाने वाले 'गुरूदेव' के नाम से ख्याति प्राप्त रवीन्द्रनाथ टैगोर का नाम पूरे भारतवर्ष में गर्व से लिया जाता है। यह महान साहित्यकार, संगीतकार, नाटककार, कवि, दार्शनिक

और चित्रकार थे। अपनी साहित्य प्रतिभा द्वारा इन्होंने भारत की संस्कृति और सभ्यता को पश्चिमी देशों में फैलाया ही नहीं, बल्कि दोनों संस्कृतियों के मध्य एक सेतु का कार्य भी किया।

इन्होंने अपने जीवन का अधिकतर समय यूरोप और एशिया के अनेक देशों में भ्रमण करने तथा अमरीका में पर्यटक के रूप में व्यतीत किया।

विदेशों में इनका परिचय बौद्धिक ज्ञान, साहित्यिक रचनाओं तथा अनुवादित कृतियों द्वारा हुआ। जिसकी भरपूर सराहना की गई। इनके काव्य में विद्यमान रहस्यात्मकता का पुट प्रभाव उत्पन्न करने वाला था लेकिन हिन्दोस्तान विशेषतया बंगाल में इन्हें सांस्कृतिक एवं साहित्यिक क्षेत्र की अन्य विधाओं में ख्याति प्राप्त हुई । 1901 ई॰ में इन्होंने प्रयास स्वरूप शांति निकेतन नामक स्कूल की नींव रखी। जिसमें हिन्दोस्तानी दार्शनिकता तथा पश्चिमी विचारों एवं प्रभावों का संगम था । इसमें न तो केवल हिन्दोस्तानी सभ्यता तथा संस्कृति का प्रदर्शन किया जाता था और न ही मात्र पश्चिमी सोच का दिखावा, बल्कि पूर्व तथा पश्चिम की उत्कृष्ट नवीन सोच को उभारने का प्रयास किया जाता था। यही स्कूल 1921 ई॰ में विश्व भारती यूनिवर्सिटी नाम से प्रख्यात हुआ।

11.3 रवीन्द्रनाथ टैगोर का साहित्यिक परिचय

11.3.1 रवीन्द्रनाथ टैगोर का व्यक्तित्व

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जन्म सन् 1861 ई॰ में एक संभ्रात बंगाली परिवार में हुआ । इनके पिता महाऋषि देवेन्द्रनाथ टैगोर तथा माता जी का नाम श्री सरदा देवी था । रवीन्द्रनाथ टैगोर अपने माता पिता की चौहदवीं संतान थे। माता की अकाल मृत्यु के कारण यह बाल्यावस्था में ही मां की ममता से वंचित हो गए । जिसका इन के कोमल बाल मन पर गहरा प्रभाव पड़ा ।

टैगोर खानदान बंगाली समाज में धार्मिक, सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में एक विशिष्ट पहचान प्राप्त कर चुका था । आस–पास के निकटवर्ती वर्ग में उनका प्रभुत्व एवं आधिपत्य स्थापित हो चुका था । उनके दादा द्वारकानाथ टैगोर (1794–1846) न केवल सामाजिक क्षेत्र में पहचाने जाते थे बल्कि समय के उच्चकोटि के ज़मींदारों में शामिल थे। उनका परिवार ज्ञान, विद्या एवं साहित्य का केन्द्र था। उनके पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर (1817–1905) पर्यटन में विशेष रूचि रखते थे। परिणामतः उन की प्रकृति में अनेक संस्कृतियां समाहित हो चुकी थीं। इसलिए उनको महाऋषि की उपाधि से अलंकृत किया गया । उनकी धार्मिक वृत्ति ने उन्हें अपनी विशेष राह अपनाने को बाध्य किया। 23 जनवरी 1880 ई॰ को उन्होनें ब्रह्म समाज की स्थापना की तथा जीवन पर्यंत इसी तत्वज्ञान एवं दर्शन के मार्ग पर अग्रसर रहे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्राथमिक शिक्षा घर के वातावरण में ही हुई । उनके पठन कार्य के लिए गुरुजनों की नियुक्ति घर पर ही कर दी गई । उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए 1879 ई॰ में इन्हें लंदन यूनिवर्सिटी भेजा गया, लेकिन 1880 ई॰ में वर्ष उपरांत ही यह कलकत्ता वापिस लौट आए।

टैगोर परिवार के अत्याधिक सदस्य उच्च शिक्षा प्राप्त कर ऊंचे–ऊंचे पदों पर विद्यमान थे। उनमें कलाकारों की सी अनेक प्रतिभायें छिपी थीं। वे लेखक, साहित्यकार, नाटककार तथा संगीतकार भी थे तथा ज्ञान के क्षेत्र में अपना विशेष स्थान रखते थे। हिन्दोस्तान के प्रथम आई. सी. एस. सतीन्द्रनाथ टैगोर हुए तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर प्रथम भारतीय थे जिन्हें नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने का श्रेय हासिल हुआ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का बाईस (22) वर्ष की आयु में विवाह कर दिया गया, जबकि उनकी पत्नी मात्र दस वर्ष की थी। इस कालावधि में उन्होंने अपना ध्यान साहित्य सृजन की ओर केंद्रित किया।

नई सदी के प्रथम में टैगोर पर आपदाओं का पहाड़ टूट पड़ा। पहले इनकी धर्मपत्नी का आकस्मिक देहांत, फिर इनके पिता जी की मृत्यु (1905 ई॰) तदुपरांत इनके तीन बच्चों का इस नश्वर संसार को छोड़ जाना। लेकिन इस सहिष्णु इंसान ने अपना धैर्य कभी न खोया तथा ऐसी विकट परिस्थितियों में दृढ़ संकल्प हो अपने पथ पर निरंतर अग्रसर रहे। William Words Worth के कथनानुसार (vini-vddi-vici) I came, I saw, I conquered के अनुसार वह चले ही नहीं अपितु निरंतर चलते ही रहे। अनेक साहित्यिक और कला विधाओं का यह अमर चितेरा 7 अगस्त, 1941 को दोपहर 12 बजकर 10 मिनट पर, अपने पैतृक घर जोड़ासांचो में संसार को अलविदा कह गया।

टैगोर अपने देश को स्वतंत्र देखने के इच्छुक थे। किन्हीं विषयों पर इनका महात्मा गांधी के साथ मतभेद भी था जिनका प्रकटीकरण इन्होंने स्वयं किया था । वास्तव में राजनैतिक स्तर पर बंगाल की धरती का एक महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यहां के किसान तथा कामगार मज़दूर हड़ताल आदि हिंसावादी कार्यों में लिप्त थे जबकि गांधी जी अहिंसावादी सोच के समर्थक थे। इसी कारण इनका गांधी जी की अहिंसावादी सोच से टकराव था। रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा लिखित गीत 'जन–गण–मन' को स्वतंत्र भारत का राष्ट्रीय गान होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त बंगला देश की स्वतंत्रता की घोषणा भी इन्हीं के गीत 'अमार बांगला, सोनार बांगला' के साथ हुई।

टैगोर भारत को रंग–नसल, भेद, जात–पात आदि विषमताओं से शुद्ध देखना चाहते थे। इसलिए इन्होंने इस निकृष्ट विचारधारा का जोरदार खंडन किया।

11.3.2 रवीन्द्रनाथ टैगोर का साहित्यिक परिचय

टैगोर ने अपना सारा जीवन साहित्य सृजन को समर्पित कर दिया था, इसीलिए लेखन का विपुल भंडार अपने पीछे छोड़ा। जिसमें उपन्यास, नाटक, गीत, कवितायें अनगिनत कृतियां सम्मिलित हैं। जीवन के अंतिम पहर में इन्होंने अपना रूख चित्रकारिता की तरफ मोड़ा तथा इस क्षेत्र को भी बड़ी निपुणता से निभाया। इनके द्वारा चित्रित चित्रों की प्रदर्शनी को मास्को, बरतानिया, पेरिस, बरहिंघम तथा न्यूयार्क आदि अनेक देशों में प्रदर्शित किया गया। इनके लगभग साठ के करीब काव्य संग्रह तथा बहुत–सी गिनती में गद्य का सरमाया है जिसे विश्व–भर के साहित्यिक क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है।

टैगोर : कहानी साहित्य

टैगोर सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक यथार्थ के समर्थक थे। इनकी कहानियां सरल, साधारण मानवीय संबंधों पर आधारित थीं।

टैगोर का कहानी साहित्य :

रवीन्द्रनाथ टैगोर संसार–भर में उच्चकोटि के कहानीकार माने जाते हैं। उनकी कहानियों की परख–पड़ताल करने से पहले हमें यह बात याद रखनी चाहिए कि मात्र कहानियां लिखना ही उनके जीवन का ध्येय नहीं था। टैगोर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे स्वयं लिखते हैं – "मैंने इस धरती से प्रेम किया है और इसके महत्त्व के सामने श्रद्धा से सिर झुकाया है। मैंने मुक्ति की कामना की है। बचपन से ही मैं बड़ी लग्न से साहित्य–साधना में संलग्न हूं, अब उसकी सारी सीमाएं लांघ आया हूँ और अपने सामर्थ्य के अनुसार जो भी लिखा है, उसे और अपने त्याग को ईश्वर के समक्ष नवैद्य भेंट करने के लिए इक्ट्ठा किया है।"

टैगोर की कहानियों में उनके आगे–पीछे का वातावरण, उनके विचार उनके भाव और उन, समस्याओं की झलक दिखाई देती है। जिन्होंने उनके कोमल ह्दय को प्रभावित किया। उनके अनुसार – "मैं धीरे–धीरे एक कहानी की साधना के लिए लिख रहा हूँ। मेरे आगे–पीछे की रोशनी, छांव और रंग मेरे शब्दों में घुल रहे हैं। दृश्य, पात्र और घटना जिनकी कल्पना में पानी से लबालब भरे नदी–नाले, बरसात का निर्मल गगन, पानी से सरोबर लहलहाते अनाज के खेत, जीवन और वास्तविकता प्रदान करने और उनकी पृष्ठ–भूमि दिखाने का कार्य करते हैं। यदि मैं अपनी कहानी के पात्रों के माध्यम से पाठकों के सामने बरसात के दिनों के इस निर्मल स्वच्छ आकाश वाले दिन को, सामने बह रहे छोटे–छोटे झरनों के धूप में झिल–मिलाते पानी की उपस्थित कर सकता तो वह झट से ही मेरी कहानी की सच्चाई को पूरे रूप में ग्रहण कर सकते।" (इक्कीस कहानियां, परिचय)

उनकी अधिकतर कहानियों के पात्र गांव से संबंध रखते हैं। यह पात्र गांव की यात्रा के दौरान उन्हें मिले थे। जिनमें औरतें–मर्द, लड़के–लड़कियां, बच्चे–बूढ़े, निम्न वर्ग के लोग और कुछ ऐसी घटनाएं हैं जो गरीब लोगों के जीवन में साधारणतया घटित होती रहती हैं। 'शक्ति' कहानी में एक ऐसे निम्न परिवार की कथा है जो क्रूर हिंसा से हारा है एक निर्दय झूठ दो असहाय विवाहित नारियों की मृत्यु का कारण बनता है। 'पोस्टमास्टर में एक अशिक्षित एक अनाथ लड़की रतन के लिए लेखक का हृदय वेदना से भर उठा है। 'संस्कार' कहानी में एक वृद्ध अछूत की वेदना का चित्र अंकित किया गया है। स्वयं को देशभक्त और धर्मनिष्ठ मानने वाले लोगों द्वारा वृद्ध सफाई वाले का अपमान करना उन लोगों के भीतर की निर्दयता एवं संवेदनहीनता को सामने लाता है। काबुलीवाला काबुल से आए एक संवेदनशील मेवा–विक्रेता की कथा है, जो अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के उद्देश्य से व्यापार हेतु अपने प्रियजनों व परिवार से बहुत दूर कोलकाता की सड़कों पर दर–दर भटकता है। इन सभी कहानियों में टैगोर ने समाज के कुरूप चेहरे को सामने लाने का प्रयास किया है क्योंकि वह समाज में एकता और समानता के

पक्षधर हैं। इसलिए इनकी कहानियों में समाज की उन बुराइयों को सामने लाया गया है जो मनुष्य के स्वार्थ, धन–लिप्सा और दूसरों के शोषण के आधार पर अपनी महत्वकांक्षाओं को पूर्ण करने के प्रयास से उपजी हैं। जिससे समस्त समाज की हानि हो रही है। अतः इनकी कहानियों में अधिकतर सामाजिक न्याय, असहायों की सहायता, शिक्षा–प्रसार, आर्थिक अभाव की पूर्ति तथा नारियों व बच्चों के सम्मान की अपील की गई है।

टैगोर का काव्य साहित्य :

टैगोर ने 1000 से भी अधिक कविताएँ लिखी और 2000 से अधिक गीतों की रचना की। रवीन्द्र नाथ टैगोर एक सफल साहित्यकार, संगीतकार, चित्रकार, नाटककार और निबन्धकार थे। भारत में टैगोर ने 1880 के दशक में कविताओं की अनेक पुस्तकें प्रकाशित करवाई तथा मानसी 1890 की रचना भी कर डाली। यह संग्रह उनकी प्रतिभा का तथा उनकी परिपक्वता का परिचायक सिद्ध हुआ । इसमें कुछ सर्वश्रेष्ठ कविताएँ शामिल हैं। वे पारम्परिक ढाँचे के लेखक नहीं थे। वे एकमात्र ऐसे कवि हैं जिनकी दो रचनाएं दो देशों का राष्ट्रगान बनी । भारत का राष्ट्रगान जनगण – मन और बाँगलादेश का राष्ट्रीयगान 'आमार सोनार बांग्ला' गुरूदेव की रचनाएँ है।

टैगोर को बंगाल के ग्राम्याँचल से प्रेम था । जिन की छवि उनकी कविताओं में बार – बार उभर कर आती है। टैगोर वास्तव में सभी वर्गो के जनप्रिय साहित्यकार थे। सोनारतरी 1894 तथ चित्रांगदा (1892) उनकी प्रसिद्ध काव्य संग्रह है। इन कविताओं में भावावेश की आशा है और यह भावावेश ही है जो चिंतन में परिव्याप्त होता हुआ विमर्श द्वारा दमित हो जाता है। यहीं से विमर्श की छाया धीरे–धीरे उनकी कविताओं पर फैलती चली गई है। इनकी कविताओं का दूसरा प्रमुख संकलन चैताली 1886 में प्रकाशित हुआ । चैताली का शब्दिक अर्थ है – रबी की फसलों की कटाई, धान की बिनाई और ओसाई का काम जो कि चैत के महीनें में किया जाता है। इस संकलन की लगभग सभी कविताएँ आकार में छोटी हैं। एक और काव्य संग्रह है 'कल्पना' इस संग्रह में प्रकृति विषयक सुन्दर कविताएँ हैं, विशेषकर ' वर्ष के अन्त' को संबोधित एक उत्कृष्ट रचना।

इनकी तीन गंभीर पद्य कृतियां 'सेंजुती' के बाद आई 'आकाश दीप' 1939 'नवजातक' 1940 और 'सामाई' 1940। इन कविता संकलनों में 'प्रातिक' की विषादपूर्ण श्रेष्ठता नहीं थी । कविताओं का अगला संकलन था 'नवजातक' जो कवि की विशिष्ट मनोदशा को दर्शाता है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर बंधनहीन किन्तु मर्यादित मानव समाज की परिकल्पना करते हैं। जीवन की विभिन्न परिधियों में रहकर मानव अपने सुख के परिकल्पित संसार में जीता है। जीवन यापन की दो मुख्य विचारधाराओं अथवा पद्धतियों को आधार बनाकर कवि ने प्राकृत टकराव को अपनी कविता 'दुई' में बेहर पट्ता से उकेरा है । दो पंछियों के प्रछन्न प्रतीक द्वारा उन्होंने जीव की स्वरचित मर्यादाओं का सहज चित्रण किया है।

कश्मीर के प्राकृतिक सौंदर्य की कशिश एवं डल झील में हाऊसबोट में ठहरना ही टैगोर की भीतर की कला की शायरी की तरह आकर्षित करने के लिए काफी था । टैगोर ने कश्मीर पर एक कविता लिखी जिस काव्य संग्रह

का शीर्षक 'मानसी' तथा बलाका था उनकी एक महत्वपूर्ण कविता दम तोडती उन्नीसवीं सदी के ठीक अंतिम दिन लिखी गई थी इसे उन्होंने बड़ा ही उपयुक्त शीर्षक दिया था 'शताब्दी का सूर्यास्त'।

1906 में एक और महत्वपूर्ण काव्य संकलन 'खैया' 'नदी के पार' शीर्षक से प्रकाशित हुआ । यह प्रतीकात्मक शीर्षक कवि की मनोदशा की उत्कट अपेक्षा का घोतक है और नदी के उस पार ले जाने के लिए किसी मांझी की प्रतीक्षा से जुड़ा है।

गुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक बहुत ही विशिष्ट कृति का नाम है 'वनवाणी'। पेड़ पौधों और फलों के जीवन पर ऋतुओं के प्रभाव की कविताओं का संकलन।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की प्रसिद्धि एक कवि के रूप में अधिक है। साहित्य की अन्य विधाओं में उनका पर्याप्त योगदान है। उनका रचनात्मक लेखन साहित्य का महत्वपूर्ण अंग है। 'गीतांजलि' पर 'नोबेल' पुरस्कार मिलने से उनकी ख्याति को चार चांद लग गए गीतांजलि में उन्होंने 1901 ई॰ से 1912 ई॰ तक लिखी अपनी गीतियों को संकलित किया है, ये गीतियां मूल्तया बंगाल में लिखी गई, जिनका अंग्रेज़ी में अनुवाद डब्लयु बी यीटस ने किया। गीतांजलि के विषय में मधुकर के शब्द इस प्रकार हैं, "बंगला भाषा की इस सभी कविताओं में अपनी सादगी, सदाबहार, खुलापन और बेबाकी, मस्ती और आपमुहारापन अर्थों की कोमलता, ऊंची उड़ान, भाषा की गति, शब्दों का चयन, संगीत और सुरताल का मन मोहक इस युक्त मधुर संगीत लाजबाब मिश्रण है।"

गीतांजलि में कवि ने धर्म, दर्शन त्याग, प्रकृति, परमात्मा, देश, धर्म और उस समय हो रही राजनीति पर सब कुछ कह दिया है। पश्चिम से आने वाले मेघ दलों से भविष्य में आने वाले खतरों से भी देशवासियों को खबरदार किया है।

टैगोर : नाटक एवं रंगमंच

रवीन्द्रनाथ अपने नाटकों के बारे में कहते हैं कि "मैं नाटक नहीं लिख सका। वह मन मुझ में नहीं है। नाटक के मुख्य पिंड को तोल कर दिखाने की कला मुझ में नहीं हैं । मेरे नाटक में कल्पना लोक की छाया है। इस छोटे से कोने पर मेरा हक है।'' वैसे रवीन्द्रनाथ के व्यक्तित्व में अनेकानेक रंग समाये हुए हैं, इसलिए उनकी प्रत्येक साहित्यिक कृति में विविध रंगों का मेल होता है। ध्वनि प्रतिध्वनियों का संगीत होता है । मन को छू लेने वाली भावानओं का खेल होता है।

उन्होंने सन् 1858 में 'वाल्मीकि प्रतिभा' नामक का गीती – नाट्य लिखा। तब उनकी उम्र थी सिर्फ 20 साल । 25 फरवरी 1881 को जोराशांको हवेली के छत पर स्टेज बनाकर इस नाटक की पहली प्रस्तुती हुई।

इनके लिखे नाटकों में अधिकतर पाँच–अंकीय नाटक, हास्य, एलीज़ाबैथ की शैली पर आधारित नाटक, दुखांत, हास्य एवं व्यंग्य नाटक, पद्यात्मक तथा गद्यात्मक दोनों ही शैलियों में नाटकीय संवाद, प्रतीकात्मक तथा

आध्यात्मिक विषयों पर आधारित नाटक, उस समय की सामाजिक व राजनैतिक समस्याओं आदि पर आधारित नाटक सम्मिलत हैं।

शांतिनिकेतन में निवास के दौरान इन्होंने नाटकों की एक शृंखंला बाँध दी थी जिसमें से ऋतुरंग, बसंत, फाल्गुनी, सेष वर्षा आदि नाटक उल्लेखनीय हैं।

इन सब नाटकों में ऋतु–गीतों के मोतियों को महीन नाटकीय धागों में बड़ी सहजता से पिरोया गया है। इनके नृत्य–नाटकों में से चंडालिका, तषर–देश, चित्रांगदा एवं श्यामा आदि प्रमुख हैं जो 1930 के दशक में लिखे गए थे। यूं तो इन नाटकों में सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं परंतु टैगोर ने इनमें जिन नाटकीय तत्वों को उजागर करने का प्रयास किया है, वे हैं – नृत्य, मूक–अभिनय, संगीत तथा नृत्य–निर्देशन।

'अचलायतन' में राजा की अपेक्षा दार्शनिक पुट कुछ अधिक था तथा नाटकीय गुणवत्ता में भी यह उससे उत्तम था। इनका दूसरा नाटक 'डाकघर' तो बंगाल में ही नही विश्व–भर के साहित्य जगत में अत्याधिक चर्चित है। डाकघर इन्होंने तब लिखा था तब यह पद्य के क्षेत्र में 'गीतांजलि' व 'गीताली' की रचना कर रहे थे जिस पर इन्हें 1913 ई॰ में नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

'डाकघर' की कथा अमाल नाम के बच्चे पर केंद्रित है जो शारीरिक रूप से भयंकर रोग–ग्रस्त है तथा राजवैध के आदेशानुसार एक ही कमरे में सीमित है। वह राजा के पत्र की प्रतीक्षा में है जो उसे उस कैद से मुक्त कराएगा। नाटक के अंत में एक सूचक द्वारा पत्र उस तक पहुँचता है परंतु उसके पहुँचते ही अमाल लम्बी–निद्रा सो जाता है। अमाल की मृत्यु के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। अमाल की मृत्यु को लेखक ने 'सांसारिक कष्टों से आत्मिक मुक्ति' कह कर नाटक का सुखद अंत माना है। डाकघर प्रतीकात्मक शैली में लिखा गया एक सफल नाटक है जो लोकप्रियता की दृष्टि से देश–विदेशों में पाँव पसारे हुए हैं।

'अचलायतन' :– 'अचला' अर्थात् दृढ़, अचल तथा 'आयतन' का अर्थ है – गृह, घर या निवास। अचलायतन अर्थात् निवास जो 1912 ई॰ में लिखा गया था, रूक्ष एवं अति दृढ़ विश्वासों का दृश्य प्रस्तुत करता है। अचलायतन का कथा महापंचक, सोनपंगशु तथा डॉरवाक्स इन तीन पात्रों के इर्द–गिर्द घूमती है। 'जीवन क्या है' ये तीनों इस तथ्य की खोज में निकल पड़ते हैं, परंतु अंत में तीनों को असफलता ही प्राप्त होती है। वास्तव में जीवन की सत्यता को प्राप्त करने के लिए ज्ञान, कार्य–शान्ति एवं अनुशक्ति तीनों का संयोग अनिवार्य है और इन तीनों तत्वों के संचय के लिए सच्चे गुरू का मार्गदर्शन वांछनीय है। यह नाटक नीति – धर्म एवं शिक्षण प्रणाली के प्रति कड़ा रोष व्यक्त करता है। जिसने नीति व अनुशासन के नाम पर नियमों एवं सिद्धांतों को मनुष्य पर थोप कर जीवन को रक्तहीन, रूक्ष एवं नीरस बना दिया है।

टैगोर के प्रतीकात्मक नाटकों का कारवां 1924 ई॰ में अपने उच्चतम शिखर पर पहुँचा, जब नाटक 'रक्तकरबी' लिखा गया।

'रक्तकरबी' का ताना–बाना एक ऐसे दास–वर्ग के ईद–गिर्द बुना गया है जिसके हर–एक सदस्य को क्रूर राजा सोने की खानों में काम करने के लिए विवश करता है तथा अपने ज़ालिम निरीक्षकों द्वारा उन पर अत्याचार भी करवाता है।

'मुक्तधारा' की कथा भी ज़ालिम राजा द्वारा लोगों पर किए जाने वाले अत्याचार तथा अंत में उनसे मिलने वाली मुक्ति पर आधारित है। 1892 ई॰ में लिखे नाटक चित्रांगदा का अनुवाद 'चित्रा' 1913 ई॰ में सामने आया जो एक गीति – नाट्य था जिसकी कथा महाभारत में पाण्डवों के अज्ञातवास के दौरान अर्जुन और चित्रा के प्रणय – संबंधों पर आधारित है। क्योंकि टैगोर स्वंय एक उच्चकोटि के अभिनेता थे तथा उनके पास नाटक लेखन एवं निर्देशन का एक लंबा अनुभव था, इसलिए इन नाटकों का मंचन, उन्होंने बड़ी सतर्कता से किया।

चिरकुमार सभा तथा सेष – रक्षा : ये दोनो नाटक काफी लोकप्रिय रहे हैं। इनका मंचन विभिन्न मंचों पर किया गया था।

समय के साथ–साथ टैगोर के नाटकों का प्रभाव इतना बढ़ता गया कि उनको देखने हेतु उस समय की महान हस्तियों को भी आना ही पड़ता । सन् 1917 ई॰ में जोरासांको निवास के विचित्र सभागार में टैगोर के नाटक 'डाकघर' की प्रस्तुति हुई तो उसे देखने वालों के मध्य महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, पं॰ मालवीय तथा श्रीमती ऐनी बसंत भी सम्मिलित थे।

टैगोर : बाल साहित्य

'गीतांजलि' के रचनाकार, अंग्रेज सरकार द्वारा सर की उपाधि से सम्मानित, प्रसिद्ध चित्रकार, उपन्यासकार, नाटककार, गीतकार, कवि और कुशल अभिनेता श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बाल साहित्य के क्षेत्र में भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

साहित्य अकादमी दिल्ली द्वारा प्रकाशित "रवीन्द्रनाथ का बाल साहित्य" भाग एक और दो में छपी कवि – कथा से ज्ञात होता है कि उन्होंने शिशु और शिशु भोलानाथ नाम से कविता संग्रह और राजऋषि राम से उपन्यास छपवाया । जिसे उन्होंने बाद में विसर्जन नाटक का रूप देकर छपवाया था । वैसे साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित इन दोनों संग्रहों में टैगोर की कविताएं, कहानियां, उपन्यास और नाटक कुल 18 रचनाएं हैं। इसी कवि–कथा से यह भी ज्ञात होता है कि बच्चों के लिए लिखी उनकी पहली कविता 'विष्टि पड़े टापुर–टुपुर' थी जो मेह बरसता टापर–टुपुर द्वारा नाम से प्रकाशित हुई, जिसमें कवि ने वर्षा और आकाश पर छाये बादलों का ज़िक्र किया है।

इस कविता को पढ़कर लगता है कि गुरू रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा बच्चों के लिए रची इस कविता ने उनके सृजन रूपि अन्नभंडार का मुंह खोलने का काम किया और फिर क्या था दाने रूपी रचनाओं का ढेर लग गया।

अर्थात् उन्होंने बच्चों के लिए अनेंकों रचनाएं रच डालीं। बाल–साहित्य के नाम पर इतनी रचनाएं रचने के पीछे एक तो उनका बच्चों के प्रति गूढ़ प्रेम था, जिसके माध्यम से वे उन्हें साहसी, धैर्यवान, ईमानदार, आत्मसम्मानी और सच्चे देशभक्त बनाना चाहते थे और दूसरा वे बच्चों को शिष्टाचार, भलाई, आपसी भाईचारा और सहनशीलता जैसे सद्‌गुणों की शिक्षा भी देना चाहते थे। यह सब तभी सम्भव हो पाया था जब उन्होंने बच्चों की मानसिकता को आत्मसात कर लिया था जैसे दाल नमक–मिर्च को या आटा पानी को आत्मसात कर लेता है। वे यह भी जानते थे कि बच्चों के कोमल मन को साहित्य किस प्रकार आनन्द दे सकता है। यह भी हो सकता है कि इस लेखन के पीछे बचपन में भूत–प्रेतों, राजे–रानियों या शेरों – मगरमच्छों और दूसरे जानवरों के बारे से सुनी मनोरंजन और शिक्षाप्रद कहानियां भी रही हों।

रवीन्द्रनाथ टैगोर हर तरह का साहित्य रचने में सिद्धहस्त थे। वे जब प्रबुद्ध लोगों के लिए साहित्य सृजन करने लगते तो महाज्ञानी पंडित की तरह उनकी सोच अंतरयामी बनकर ऐसे विषय, प्रसंग और भाषा–शैली की फ़ुहार बरसाती कि हर कोई पाठक, श्रोता आग बरसाती गर्मी में हिमखण्ड के शून्य डिग्री से भी नीचे वाले वातावरण में पहुँच जाने का आनंद महसूस करता और जब वे बाल साहित्य का सृजन करने लगते तो सच में ही एक भोला बच्चा बन जाते । उनके इस भाव की सटीक वकालत करती उनकी 'छोटा बड़ा' है, जिसमें घर से डांट खाने पर या मोज मस्ती करने के पलों में पढ़ने का आदेश सुन कर ऐसे सिकुड़ जाता जैसे जरा–सी आंच से ही ऊन का धागा सिकुड़ जाता है पर उसके मन का घटोत्कच अपना शरीर बढ़ा मौन रह कर यह सोच बम्हीरी घुमाता है कि कभी मैं पिता जी जितना बड़ा हो जाऊं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बच्चों के लिए छोटे–छोटे नाटक भी लिखे हैं। इन नाटकों में उन्होंने बच्चों का डांट – डपट कर पढ़ाने वाले शिक्षकों, कंजूसों, बिना सोचे–समझे हर बात पर विश्वास कर लेने वाले, दानी और राजकुमारों की पढ़ाई, उनके अहम और कुचालों की तस्वीरें उभारी हैं या हम सब भी कह सकते हैं कि उन्हें अपने इन नाटकों के माध्यम से बच्चों के कोमल मनों में दया, परोपकार, ईश्वर भक्ति, गुरू निष्ठा और लोक सेवा आदि के आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया है। अपने एक नाटक 'मुकुट' में उन्होंने गुरू भक्ति और गुरू के अनादर की तस्वीर खींचते हुए दिखाया है।

टैगोर : उपन्यास साहित्य

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लगभग 12 उपन्यासों की रचना की जिनमें प्रमुख उपन्यास इस प्रकार है।

'दुई बोन' एक लघु उपन्यास है, इसका परिवेश मुख्य रूप से मनोवैज्ञानिक है, सामान्य जीवन के त्रिकोण को लेकर लिखा गया है इसमें दो बहनों का एक ही व्यक्ति से प्रेम दिखाया गया है। इस उपन्यास में दो प्रति स्पर्धी बहनों ने, जो अपनी वेशभूषा और तैयारी में समान रूप से आकर्षक हैं, परिस्थिति को और भी जटिल बना देती हैं, वैवाहिक प्रेम के प्रति निष्ठा तथा निर्द्वंद्व मुक्त प्रेम के प्रति निष्ठा के संघर्ष से जो अंतर्द्वन्द्व उत्पन्न होता है उस मनोवैज्ञानिक परिस्थिति का सामना लेखक ने बड़े साहस के साथ किया। 'मालंच' इन दोनों से छोटा है लेकिन इसकी स्थितियां अधिक नाटकीय हैं। यह उपन्यास संवादप्रधान है। इसकी कहानी प्रायः 'दुईबोन' जैसी ही है।

'घर बाहरे' उपन्यास का परिपार्श्व था बंगाल का एक गुप्त क्रान्ति आंदोलन । शौर्य और आतंकवाद की पृष्ठभूमि में प्रेम की विफलता तथा मानवीय मूल्यों का क्रमशः अधः पतन का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास ने लेखक की गहन मनौवैज्ञानिक अंतदृष्टि का परिचय दिया है। इस उपन्यास ने बंगाल में जबरदस्त विवाद एवं आलोड़न पैदा कर दिया और लेखक की बड़ी निर्ममता से भर्त्सना की गई, क्योंकि उन्होंने कई अप्रिय सत्य कहे थे।

'योगायोग' उपन्यास एक नए आर्थिक वर्ग के विकास से एक अनिवार्य युद्ध कुलीन के अभिजात घराने जिसने अपनी संपदा तो खो दी थी लेकिन अपनी मर्यादा नहीं खोई कथा में समेटे हुए है।

एक ऐसा उपन्यास है जिसमें कविता की सदानीरा धारा प्रवाहमान है और इतना ही नहीं यह विशुद्ध रूप से कविता की विषयवस्तु पर लिखा गया है और शायद ही विश्व में कोई ऐसा उपन्यास लिखा गया हो। डा॰ सुकमार सेन ने कहा "यह एक ऐसी प्रेम कहानी है जो सारी प्रेम कहानियों का अंत कर देगी।"

'नष्ट नीड़' और 'चोखेर बालि' दो उपन्यास लिखे। 'नष्टनीड़' (उजड़ा घोसला) का कथानक एक दैनिक अखबार के व्यस्त संपादक की पारिवारिक त्रासदी से जुड़ा है जिसके पास अपनी युवा और बेहद प्रेमातुर पत्नी के लिए तनिक अवकाश नहीं। इस समस्या का विश्लेषण 'चोखेर बाली' (आँख की किरकिरी) में किया गया है । इसकी कहानी मानवीय सम्बन्धों की दुविधा के इर्द–गिर्द घूमती है और धीरे–धीरे एक मध्यवर्गीय बंगाली परिवार के सौम्य और गंभीर नज़र आने वाले परिवार में अचानक जड़ जमाने लगती है।

'नौका डूबी' यह उनका ऐसा उपन्यास था जो उनके पाठकों के विशुद्ध मनोरंजन के लिए लिखा गया था। इसकी कथा बड़ी ही सीधी सादी थी । इसमें किसी तरह का दर्शन नहीं बघारा गया था । इसकी कहानी गलत पहचान से जुड़ी दुविधा पर आधरित थी जिसके फलस्वरूप दो पत्नियों की परस्पर अदला बदली हो जाती है । बड़े सहज ढंग से कही गई यह कहानी प्रकृति चित्रण की असाधरण रमणीयता को भी प्रस्तुत करती है।

उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'चार अध्याय' जो बाद में 'चतुरंग' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास रवीन्द्रनाथ की सर्वोत्तम कृतियों में से एक है। इस कृति में चार अध्याय है और चार ही पात्र हैं। उपन्यास में सत्य और आंतरिक परिपूर्णता के प्रति अनुसंधान को विभिन्न स्तरों पर देखा जा सकता है।

'कौन किसका' उपन्यास मनुष्य के अस्तित्व के खालीपन या अकेलेपन का अहसास अपनी पूरी शिद्धत से करवाता है । उपन्यास के पात्र भूपित बाबू और चारूलता जो अंतरात्मा की गहराई तक जलते हुए मनुष्य है । मनुष्य का अपना अस्तित्व ही उसका आदि अंत है।

"गोरा" उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की परिकल्पना की पृष्ठभूमि में गुरूदेव की सोच में उनके समकालीन भारतीय समाज पर विदेशी सम्राज्यवाद द्वारा किये जा रहे अत्याचारों द्वारा होने वाली दयनीय स्थिति की तस्वीर थी, जिसे उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से प्रबुद्ध समाज के कान खोलने का मुख्य उद्देश्य बनाया था यह एक कालजयी रचना है।

इसके अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ टैगोर ने निबन्ध साहित्य पर भी लेखनी चलाई 'महात्मा गाँधी' 'सत्य का आह्वान', इनके उल्लेखनीय निबन्ध हैं।

11.4 निष्कर्ष

अतः कह सकते हैं कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर साहित्य में अनुपम स्थान रखते हैं। यथार्थ को चित्रित करने की जो सूक्ष्म दृष्टि और सजीव कल्पना, सार तत्व को ग्रहण करने की क्षमता, अतिशयोक्ति एवं भावुकता से दूर रहने का स्वभाव एवं अन्याय को सहन न करने का जज्बा उनकी प्रतिभा के विशेष गुण हैं।

11.5 कठिन शब्द

तत्वज्ञान, सेतु, आकस्मिक, सहिष्णु, सूक्ष्मता, परिपक्वता, ग्राम्याँचल, परिव्याप्त, अज्ञातवास, अंतर्द्वन्द्व

11.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र॰ रवीन्द्रनाथ टैगोर का साहित्यिक परिचय दीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र॰ टैगोर के कहानी साहित्य पर प्रकाश डालें।

उ) ____

____

____

____

प्र॰ टैगोर के बाल साहित्य पर चर्चा करें।

उ)

प्र॰ टैगोर के उपन्यास साहित्य का परिचय दीजिए।

उ)

प्र॰ टैगोर के नाटक साहित्य पर टिप्पणी कीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र॰ टैगोर के काव्य पर प्रकाश डालें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

……

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**
Semester-III **Lesson No. 12**

रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियों की विकास–यात्रा

12.0 **रूपरेखा**

12.1 उद्देश्य

12.2 प्रस्तावना

12.3 रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियों की विकास–यात्रा

12.4 निष्कर्ष

12.5 कठिन शब्द

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप–

– रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियों के मूल विषयों से अवगत होंगे।

– टैगोर ने कहानियों का आरम्भ कब से हुआ है, इसकी जानकारी प्राप्त करेंगे।

– टैगोर की कहानी की विकास यात्रा से अवगत होंगे।

– टैगोर के कहानी शिल्प को जान पायेंगे।

12.2 प्रस्तावना

टैगोर की साहित्य–साधना का मूल आधार मनुष्य जीवन तथा प्रकृति हैं। उनके अनुसार समग्र मनुष्य को प्रकाश में लाने की चेष्टा ही साहित्य का प्राण है। वे अपनी

कहानियों के विषय में कहते हैं कि ''...... जो कुछ मैंने लिखा है, अपनी आँखों से देखा हुआ, हृदय से अनुभव किया हुआ–वह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव था। कहानियों में मैंने जो कुछ लिखा है उसके मूल में मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है– अपनी आँखों देखी घटनाएँ और चरित्र है; उनको केवल रागात्मक कल्पना से प्रेरित मानना ठीक नहीं होगा। सोचकर देखने से तुम्हें पता लगेगा कि जो छोटी–छोटी कहानियां मैंने लिखी हैं, उन्हीं में सबसे प्रथम बंगाली समाज के वास्तविक जीवन का यथार्थ चित्र चित्रित हुआ है।''

12.3 रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियों की विकास यात्रा

कहानीकार के रूप में टैगोर की गिनती विश्व के महान् कहानीकारों में होती है। इनका कहानी लेखन 1877 में रचित 'भिखारिणी' कहानी से माना जाता है। उस समय यह मात्र 16 वर्ष के थे। सियालदह और राजादपुर स्थित अपनी जागीर की देखरेख हेतु वे 1891 में पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्ला देश) में अगले 10 वर्षों तक रहे। इस दौरान इन्हें बंगाली किसानों की दैनिक गतिविधियों तथा प्रकृति के विभिन्न रूपों और ग्रामीण जीवन को गहराई से देखने–समझने का अवसर मिला जिससे उनकी संवेदना तीव्र हुई और उन्हें अपनी रचनाओं के लिए पर्याप्त विषयवस्तु उपलब्ध हुई। इसी दौरान उन्होंने कहानियाँ लिखकर बांग्ला कहानी विधा के विकास में अपना ऐतिहासिक योगदान दिया। इस दौरान हुए अनुभवों को उन्होंने अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी। एक ओर प्रकृति और ग्रामीण जीवन के प्रति प्रेम तथा दूसरी ओर ग्रामीण लोगों की समस्याओं को दूर करने की आवश्यकता ने उन्हें कहानियाँ लिखने हेतु प्रेरित किया।

मई 1891 में इनके परिवार ने एक नई मासिक पत्रिका 'साधना' की शुरूआत की। टैगोर इस पत्रिका के लेखक तथा बाद में सम्पादक बन गए। 1891 से 1895 तक यह पत्रिका प्रकाशित हुई और यह समय टैगोर के लिए बहुत रचनात्मक साबित हुआ। इस दौर में उनकी 36 कहानियाँ प्रकाशित हुई; जिनमें 'मुक्ति उपाय', 'त्याग', 'काबुलीवाला', 'महामाया', 'सम्पादक' और 'शास्ति' आदि कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। कुछ वर्षों बाद एक अन्य पारिवारिक पत्रिका 'भारती' के प्रकाशन के साथ उसके कहानी लेखन का दूसरा दौर आरम्भ हुआ। जिनमें 'अध्यापक', 'उद्धार', 'दुर्बुद्धि', आदि विशेष हैं। इनकी कुछ कहानियाँ 'प्रदीप', 'प्रवासी' और 'सबुजपुत्र' नामक पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई हैं।

रवीन्द्रनाथ टैगोर को जहाँ आधुनिक बांग्ला कहानी का आविष्कारक माना वहीं बांग्ला साहित्य में देशज भाषा–प्रयोग की शुरूआत का श्रेय भी प्राप्त है। टैगोर सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक यथार्थ के समर्थक थे। इनकी कहानियाँ सरल, साधारण मानवीय संबंधों पर आधारित हैं। 'पोस्टमास्टर' (1891) कहानी एक अति साधारण कथानक की कहानी है। दूर–दराज

के किसी गाँव की एक अनाथ बच्ची जिसकी देख–रेख पोस्ट मास्टर अपनी बेटी की भांति करता है। मगर जब उसका स्थानांतरण कलकत्ता हो जाता है तो वह उस बच्ची को वहीं छोड़ जाता है। बच्ची प्रतीक्षारत है कि वह उसे अपने परिवार के सदस्य के रूप में अपनाकर अपने साथ ले जाएगा, परन्तु इस इच्छा को न भांपते हुए पोस्टमास्टर उसकी अवहेलना करता है। यह कहानी इस बात का भी सजीव उदाहरण है कि स्नेह और प्रेम द्वारा अजनबी भी अपना बन जाता है। जैसै रतन के लिए पोस्टमास्टर अजनबी होकर भी इतना अपना है कि वह उसके साथ जाने का आग्रह करती है।

1892 में प्रकाशित 'काबुलीवाला' कहानी प्रौढ़ व्यक्ति तथा एक छोटी सी बच्ची मिनी को लेकर लिखी गई है। इस कहानी में काबुलीवाला के प्रति समाज की संवेदनशीलता को दर्शाया गया है। मिनी बाल मन का जीता–जागता उदाहरण हैं कि कैसे एक छोटी लड़की दूसरों को अपने स्नेह प्यार में बांध लेती है। लेखक रहमत और मिनी के माध्यम से पिता–पुत्री के मर्मस्पर्शी सम्बन्धों पर भी प्रकाश डालता है।

'खोका बाबू' (The return of Khoka Babu) कहानी में एक नौकर का चरित्र–चित्रण हुआ है। जिसे एक अमीर परिवार के बच्चे की देख–रेख करने हेतु रखा गया है। एक दिन बच्चा तालाब में डूब जाता है जिसके मृत शरीर को लेकर नौकर भाग जाता है। किसी अन्य स्थान पर जाकर वह विवाह करता है और बच्चा पैदा होने के उपरान्त जब वह बड़ा होता है तो उसे लेकर अमीर दम्पत्ति के पास आता है और कहता है कि यह उनका ही बच्चा है जिसे मैं अपने साथ लेकर भाग गया था, मगर अब मैं इसे आपको लौटाने आया हूँ। 'सुभा' कहानी एक गुंगी लड़की की मार्मिक वेदना को वर्णित करती है तथा 'कंकाल' (The skeleton) कहानी एक बाल विधवा लड़की के जीवन पर आधारित है जिसके विवाह के दो महीने पश्चात् ही पति की मृत्यु हो जाती है। ससुराल वाले उसे विषकन्या कहकर घर से निकाल देते हैं। मायके में वह अपने भाई के मित्र शशि शेखर से प्रेम करने लगती है लेकिन जब उसे ज्ञात होता है कि शशि शेखर दहेज हेतु किसी अन्य से विवाह कर रहे है, तो वे उसे जहर दे देती है और स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है। 'दृष्टिदान' (Vision) कहानी एक विवाहित युवती पर केंद्रित है। जिसकी आँखों की रोशनी छिन जाती है। उसका पति उसकी अवहेलना कर दूसरी शादी कर लेता है। एक तिरस्कृत नारी के क्रंदन एवं लाचारी से संबंधित घटनाओं से ओत–प्रोत है। इस कहानी का कथानक 'नं॰1' (Number one) शीर्षक के अतंर्गत एक चरित्रहीन नारी के चरित्र को चित्रित किया गया है जो अपने पति की अनदेखी कर पर पुरुष के प्रेमपाश में बंधी है। अपने इस कुकृत्य का मान भी हैं कि उसे तो केवल अपने पति भारतीय संस्कारों में पली–बढ़ी उस नारी को अपने पति की आज्ञाकारी रहना चाहिए। अंततः इसी कारण वह आत्म हत्या कर लेती है।

एक अन्य कहानी 'सजा' (Punishment) के कथनानुसार दुखीराम क्रोधवश अपनी पत्नी राधा रानी की हत्या कर देता है। उसका भाई उसे कैद की सज़ा से बचाने हेतु कत्ल का जिम्मा अपने सिर लेने के लिए अपनी पत्नी को राज़ी कर लेता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की अनेक कहानियों का ताना–बाना सामाजिक समस्याओं को लेकर बुना गया है। जिनमें भारतीय समाज में औरतों, बच्चों संबंधी समस्याओं को उजागर किया गया है। बहुत सी कहानियाँ शादी–विवाह आदि समस्या पर आधारित हैं जिन में कुछेक तो विवाह की चाह पर केंद्रित हैं तथा कुछ में विवाहोपरांत वैचारिक असमानता अथवा विवाह संबंध विच्छेद का उल्लेख हुआ है जो 'Wife's letter' के संदर्भ से कहानी को जन्म देता है।

इनके अतिरिक्त टैगोर की कुछेक कहानियाँ उनकी स्वयं की प्रकृति को प्रकट करती दिखाई देती हैं जो उनके साहित्यिक ज्ञान की उड़ान को उजागर करती है। अमरीकन लेखक 'Edgar Allan Poe' (रहस्यमयी एवं भयावह कहानियों के लिए प्रसिद्ध है) की कहानी की तरह टैगोर की कहानी 'क्षुधित पाषाण' (The hungry stone) भी इसी तरह की रहस्यमयी घटना को प्रस्तुत करती है। 'कंकाल' (The Skeleton) शीर्षक के अन्तर्गत कहानी में एक ऐसे आदमी का चरित्र–चित्रण किया गया है जो भूत से बातें करता है।

उनके अधिकतर पात्र गाँव से संबंध रखते हैं। यह पात्र गाँव की यात्रा के दौरान उन्हें मिले थे। जिनमें औरतें–मर्द, लड़के–लड़कियाँ, बच्चे–बूढ़े, निम्न वर्ग के लोग और कुछ ऐसी घटनाएँ है जो गरीब लोगों के जीवन में साधारणतया घटित होती रहती है। उन्होंने भोले–भाले लोगों के जीवन को बड़े प्यार, सहानुभूति और सद्भावना से देखा और पूरी सच्चाई के साथ बिना लाग–लपेट के आकर्षक ढंग से चित्रित किया जिससे पाठक पढ़ते समय पात्रों की खुशी और दुख को महसूस कर पाता है। 'स्त्री का पत्र', 'वर और कन्या', 'जिंदा और मरी हुई सजा समाप्ति', 'नष्टनीड़', 'दृष्टि दान', 'रास रानी का लड़का' ऐसी ही कहानियाँ है जो यथार्थ को चित्रित करती हैं। इन कहानियों में नारी की मनोदशा, बच्चों का मनोवैज्ञानिक चित्रण, नारी, चेतना, नारी शोषण, नैतिक मान–मूल्य, बाल विवाह, दहेज प्रथा आदि विषयों को बड़ी सूक्षमता से उकेरा गया है।

टैगोर ने अपनी कहानी–यात्रा का आरम्भ स्त्रियों के उद्धार, जाति–भेद, लिंग भेद की समाप्ति, विधवाओं के अधिकारों का समर्थन और बाल–विवाह के विरोध में किया था लेकिन आगे चलकर उनकी कहानियाँ के केन्द्र में राजनैतिक संकट, अंग्रेजी राज के प्रभाव, सामाजिक आन्दोलन आदि व्यापक विषय केन्द्र में रहे। इन्होंने विधवा पूनर्निववाह, शैक्षणिक सुधारों, जाति व धार्मिक विद्वेष; वैयक्तिक स्वार्थपरता जैसे विषयों पर कहानियाँ लिखकर समय के साथ मानसिक

बदलाव की आवश्यकता के प्रति लोगों को जागरूक किया। टेगौर ने प्रायः चरित्र प्रधान कहानियाँ लिखी जिसमें मुख्य चरित्र को किसी भावनात्मक व आध्यात्मिक संकट का सामना करते दिखाया गया। ऐसे चरित्र का निर्माण करने के पीछे उनका उद्देश्य संकट से घिरे पात्र के संघर्षरत रहकर उस संकट से बाहर निकलने या उस संकट के साथ जीने की कला को दिखाना रहा है। बाहर से साधारण दिखने वाली उनकी कहानियाँ भीतर से गहन जटिलताओं से पूरिपूर्ण मानव मन के उलझे पक्ष को स्पष्ट करती हैं। भाषा की सरलता, साधारण विषयवस्तु का चयन तथा अनेकों कहानियाँ लिखने के उपरान्त भी उनकी कोई दो कहानियाँ एकदम समान न होना टैगोर की कहानी कला की मुख्य विशेषताएँ हैं।

12.4 निष्कर्ष

एक सुधारवादी लेखक व चिन्तक होने के कारण टैगोर अपने साहित्य में मानवीय मूल्यों को सदैव प्राथमिकता देते हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियों में मानव सम्बन्धों और मानवीय प्रकृति की जटिलता के व्यापक चित्रण के साथ उस युग की सामाजिक–सांस्कृतिक समस्याओं को भी उकेरा गया है। यह साधारण व निम्न सामाजिक–आर्थिक स्तर के लोगों में महान् मानवीय गुणों की तलाश करते हैं चूंकि टैगोर साधारण व्यक्ति की खुशी और समस्याओं के प्रति एक संवेदनशील लेखक हैं।

12.5 कठिन शब्द

1. रागात्मक
2. मनोवैज्ञानिक
3. स्थानांतरण
4. प्रतीक्षारत
5. अवहेलना
6. मार्मिक
7. विषकन्या
8. तिरस्कृत
9. प्रेमपाश
10. मनोदशा

12.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र० रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानी यात्रा पर टिप्पणी कीजिए।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र० टैगोर की कहानियों की विकास यात्रा पर प्रकाश डालें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र० टैगोर की कहानियों के विषय किस से सम्बन्धित हैं?

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

……

M.A. Hindi | **Course Code : Hin-304**
Semester-III | **Lesson No. 13**

निर्धारित कहानियों में बंगाल की पृष्ठभूमि

13.0 रूपरेखा

13.1 उद्देश्य

13.2 प्रस्तावना

13.3 निर्धारित कहानियों में बंगाल की पृष्ठभूमि

  13.3.1 'पोस्टमास्टर' कहानी में बंगाल की पृष्ठभूमि

  13.3.2 'काबुलीवाला' कहानी में बंगाल की पृष्ठभूमि

  13.3.3 'दहेज' कहानी में बंगाल की पृष्ठभूमि

  13.3.4 'कंकाल' कहानी में बंगाल की पृष्ठभूमि

13.4 निष्कर्ष

13.5 कठिन शब्द

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप रवींद्रनाथ टैगोर की निर्धारित कहानियों में बंगाल की पृष्ठभूमि का बोध कर सकेंगें।

13.2 प्रस्तावना

रवींद्रनाथ टैगोर विश्वविख्यात कवि, साहित्यकार तथा दार्शनिक के रूप में जाने जाते हैं। महात्मा गांधी ने इन्हें गुरूदेव की उपाधि भी दी है। बंगला साहित्य और संगीत को नई दिशा प्रदान

करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। इन्होंने गद्य की अनेक विधाओं में रचनाएँ लिखी हैं जिनसे इन्हें काफी प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

13.3 निर्धारित कहानियों में बंगाल की पृष्ठभूमि

टैगोर बंगाल के निवासी थे इसलिए इनके साहित्य में बंगाली पृष्ठभूमि होना स्वाभाविक है। इनकी कहानियाँ बंगाल की समाजिक स्थिति को सामने लाने में सफल हुई हैं। विशेष रूप से नारी की जो स्थिति बंगाल में उस समय थी उसका चित्रण हमें इनकी कहानियों में मिलता है। अपनी कहानी यात्रा की शुरूआत ही इन्होंने नारी उद्धार, जाति–भेद और लिंग–भेद की समाप्ति, विधवाओं के अधिकारों के समर्थन तथा बाल–विवाह के विरोध में कहानियां लिखकर की है। सन् 1891 से 1895 तक इन्होंने बंगाल की ग्रामीण पृष्ठभूमि पर केन्द्रित अनेक कहानियां लिखी हैं। इनके पात्र समाज के वंचित व पिछड़े क्षेत्रों से सम्बन्धित मिलते हैं। ग्रामीण बंगाल के सामाजिक जीवन के चित्रण में इनका योगदान अतुलनीय है।

13.3.1 'पोस्टमास्टर' कहानी में बंगाल की पृष्ठभूमि

'पोस्टमास्टर' कहानी 1891 में लिखी गई है। 1890 में रवीन्द्रनाथ को उनके पिता ने बंगाल के सिआलदा गांव अपनी जागीर की देखभाल में भेजा। यहां इन्हें बंगाली किसानों की दैनिक गतिविधियों, प्रकृति तथा ग्रामीण जीवन को नजदीक से देखने–समझने का अवसर मिला। जिसे उन्होंने अपनी आरम्भिक दौर की कहानियों में व्यक्त किया। यह कहानी भी इनकी ग्रामीण पृष्ठभूमि पर आधारित है। इस कहानी का जो रचनाकाल रहा है वह समय भारत पर ब्रिटिश शासन था। भारत में अंग्रेजों का आगमन व्यापार के उद्देश्य से हुआ था। उन्होंने भारत में कई व्यापार किए जिनमें नील, कपास, रेशम प्रमुख हैं। बंगाल जैसी उच्च गुणवत्ता वाली नील किसी अन्य देश में नहीं थी। 'पोस्टमास्टर' कहानी में भी 'नील–कोठी' का उल्लेख हमें बंगाल में नील उत्पादन का बोध करवाता है। अंग्रेजों ने भारत में नील उत्पादन के लिए नील कोठियों का निर्माण करवाया। यहीं से किसानों को नील की खेती करने का आदेश जारी किया जाता और उस आदेश को न मानने वाले को कठोर सजा भी यहीं दी जाती थी। इस कहानी में 'पोस्मास्टर' एक भारतीय व्यक्ति है जो ब्रिटिश सरकार के लिए पोस्टमास्टर के रूप में कार्य करता है। पोस्टमास्टर को नौकरी के शुरूआत में ही जिस गांव में आना पड़ा वह एक पिछड़ा हुआ गांव है। इसलिए यह कहानी बंगाल के ग्रामीण परिदृश्य को सामने लाती है। यह कहानी बंगाल के छोटे से गांव उलापुर की वास्तविक स्थिति सामने लाती है। यहाँ अंग्रेजों द्वारा नील का उत्पादन तो होता है लेकिन इस गांव का विकास नहीं हुआ है। नील कोठी के मालिक ने अपने प्रयासों से यहां पोस्ट–ऑफिस तो खुलवाया पर उसमें जो पोस्टमास्टर आया वह कलकत्ता शहर का था इसलिए इस अविकिसत गाँव में उसका रहना ऐसा ही है जैसे पानी बिना मछली। अर्थात् सुविधाओं में रहने वाले व्यक्ति का इस सुविधाहीन गांव में रहना

कठिन है। पोस्टमास्टर की यह कठिनता तथा गाँव के प्रति अलगाव इस गांव की दयनीय स्थिति को व्यक्त करता है साथ ही यह बोध भी करवाता है कि सरकार जिस गाँव में नील का उत्पादन करवा रही है उस गाँव तथा वहाँ के लोगों को कितनी असुविधाओं में रहना पड़ रहा है।

पोस्टमास्टर द्वारा इस गाँव के डाली–कोंपलों के साथ इन सारे पेड़–पौधों को काटकर पक्का रास्ता तथा बड़ी–बड़ी इमारतों के बनने की कल्पना करना, गांवों को शहरों में परिवर्तित करने के दृष्टिकोण को व्यक्त करता है। पोस्टमास्टर का इस गाँव में आना तथा रतन की भावनाओं को ठेस पहुँचाकर वापिस कलकत्ता लौटना शहरी लोगों के स्वार्थीपन तथा गाँव की मासूमियत को भी सामने लाता है। पोस्टमास्टर निराश्रित रतन को अपने पास रहने की सुविधा देता है किन्तु इसके पीछे उसका स्वार्थ निहित है वह उस पिछड़े गांव में अपने अकेलेपन तथा खाने की सुविधा चाहते थे जिसके लिए उन्होंने रतन का चुनाव किया। जब उनका स्वार्थ सिद्ध हो गया तो वह उसकी भावनाओं को दरकिनार करके चले जाते है। रतन ने पोस्टमास्टर के साथ जो सुखद जीवन का सपना देखा वह पोस्टमास्टर के स्वार्थ की बलि चढ़ गया। एक तरह से देखा जाए तो पोस्टमास्टर को हम अंग्रेजों का प्रतिनिधित्व करते देख सकते हैं क्योंकि अंग्रेजों ने भी अपने स्वार्थ के लिए भारत की ग्रामीण जनता को विकास के सपने दिखाकर उनका शोषण किया और चले गए। शहरी परिवेश में रहे पोस्टमास्टर का उलापुर गाँव में निराश रहना तथा अन्ततः उस गांव की छोड़ कर चले जाना शहर और गांव के मध्य बढ़ते अन्तर को भी दर्शाता है।

ऐसे तो सावन का महीना खुशहाली का प्रतीक है किन्तु इस अविकसित गाँव की स्थिति ऐसी थी कि इन दिनों गांव भर के गड्ढे, नाले, तालाब तथा रास्ते पानी से भर जाते जिससे लोगों का बाहर निकलना बंद हो जाता है। यदि कोई बीमार पड़ जाए तो यह लोग वैद्य का सहारा लेते थे जिससे इन्हें स्वस्थ होने में समय लगता है अर्थात आधुनिक चिकित्सा यहाँ तक नहीं पहुँची थी।

अतः इस कहानी में बंगाल के ऐसे अविकसित गाँव की दशा हमारे सामने आती है यहाँ नील कोठी तो है पर गाँव के लोगों के लिए सुविधाएँ नहीं है। विकास के नाम पर यदि पोस्ट–ऑफिस खुलवाया भी गया है तो वहां पोस्टमास्टर शहर का व्यक्ति लगाया गया है जो उस गाँव से अलगाव बनाए हुए हैं। पोस्टमास्टर उस गाँव का न रखना इस बात को स्पष्ट करता है कि उस गाँव के लोग शिक्षित नहीं है। लेकिन उन लोगों में शिक्षा के प्रति रूचि है जिसका स्पष्टीकरण रतन की पढ़ाई में रूचि से मिलता है।

13.3.2 'काबुलीवाला' कहानी में बंगाल की पृष्ठभूमि

सन् 1892 में प्रकाशित 'काबुलीवाला' कहानी अफ़गानिस्तान की राजधानी 'काबुल' से आए एक अनपढ़ फेरीवाले के साथ पाँच वर्षीय बंगाली बालिका की मित्रता को पूर्ण मानवीयता के साथ चित्रित करती

है। यह कहानी एक ओर जहाँ धर्म, जाति तथा नस्ल–भेद से ऊपर उठकर मानवीयता का जीवन्त रूप सामने लाती है वहीं दूसरी तरफ पिता पुत्री प्रेम को भी व्यक्त करती है।

रहमत तथा मिनी के मध्य जो स्नेह व लगाव है वह नस्लीय, क्षेत्रीय और भाषाई बन्धनों को तोड़ मानवता के व्यापक स्वरूप को प्रदर्शित करता है। 'रहमत' एक भावुक व्यक्ति है। मिनी से वह बहुत स्नेह रखता है। मिनी की मासूम बातों को धैर्यपूर्वक सुनता रहता, जबकि वह उम्र में उससे बहुत बड़ा है, फिर भी मिनी के साथ बात करते हुए वह भी बच्चा बन जाता है। जिसका वर्णन लेखक ने इस प्रकार किया है ''रहमत काबुली को देखते ही मेरी लड़की हँसती हुई पूछती, ''काबुलीवाले ओ काबुलीवाले! तुम्हारी झोली में क्या है?'' रहमत हँसता हुआ कहता, ''हाथी''। फिर वह मिनी से कहता, ''तुम ससुराल कब जाओगी?''

इस पर उलटे वह रहमत से पूछती, ''तुम ससुराल कब जाओगे?'' रहमत अपना मोटा घूँसा तानकर कहता, ''हम ससुर को मारेगा।'' इस पर मिनी खूब हँसती।'' मिनी के साथ रहमत बच्चा इसलिए बन पाता है क्योंकि उसमें उसे अपनी बच्ची दिखती है जिसे अपने गाँव छोड़ कर वह कलकत्ता व्यापार के लिए आया है। अपनी बेटी के हाथों की छाप को कागज के टुकड़े में संभाल वह इस देश में व्यापार के लिए आने को विवश है। मिनी द्वारा वह बेटी के अभाव को पूरा कर रहा था किन्तु उसके विवाह के अवसर पर रहमत का एक गहरी साँस भरकर जमीन पर बैठ जाना और यह चिंता करना कि उसकी बेटी का क्या हुआ होगा, एक पिता की पुत्री के प्रति स्नेह पूर्ण रूप स्पष्ट करता है। दूसरी तरह कथावाचक का अपने बेटी को लेकर स्नेह भी सामने आया है। आरम्भ में मिनी द्वारा रहमत को देखकर डर जाने पर कथावाचक द्वारा रहमत को घर के भीतर बुलाकर मिनी से परिचय करवा उसके डर को समाप्त करने के पीछे उनका पुत्री स्नेह स्पष्ट होता है। मिनी के पिता पत्नी के सन्देह के उपरान्त भी मिनी को रहमत से मिलने तथा खेलने की अनुमति देते हैं क्योंकि मिनी को रहमत के साथ खुश देखकर उन्हें भी प्रसन्नता होती है। बेटी की खुशी के लिए ही वह रहमत को अपने घर आने–जाने के लिए मना नहीं करते। मिनी द्वारा पिता के समक्ष अपनी जिज्ञासाओं को रखना तथा कथावाचक का व्यस्तता के उपरान्त भी बेटी की प्रत्येक बात को सुनना, पिता–पुत्री स्नेह को प्रकट करता है। इस कहानी में पिता–पुत्री प्रेम सम्बंधी तीन उदाहरण हैं–कथावाचक और मिनी, रहमत और उसकी बेटी तथा रहमत और मिनी। इन तीनों के माध्यम से जो पिता–पुत्री स्नेह सम्बन्ध प्रकट हुआ है उससे यह तथ्य स्पष्ट होता है कि पिता का प्रेम देशकाल की सीमा तथा सभी सांस्कृतिक भेदों से ऊपर तथा एक समान है।

यह कहानी पिता–पुत्री स्नेह संबध के साथ–साथ स्वतन्त्रता पूर्व उपनिवेशकालीन बंगाल के सामाजिक व राजनैतिक जीवन को भी प्रतिबिम्बित करती है। कोलकता परिवेश में रचित इस कहानी में

वह समय चित्रित है जब अफ़गानिस्तान के घुमंतू व्यापारी अपने देश से छोटी–मोटी वस्तुओं तथा सूखे मेवों को बेचने के लिए कोलकता आकर रहते थे। क्योंकि भाररत में कलकत्ता व्यापार का केन्द्र रहा है। इसलिए भिन्न–भिन्न देशों के लोग यहाँ व्यापार के लिए आते थे। यही कारण है कि अंग्रेजों ने भी ईस्ट इंडिया कम्पनी के माध्यम से व्यापार के लिए सर्वप्रथम कलकत्ता को ही चुना। यह कहानी अपने देश को छोड़कर परदेस में एक अनिश्चित आय के लिए आए व्यक्ति की समस्याओं को भी रेखांकित करती है। 'काबुलीवाला' के जेल जाने से पूर्व मिनी और रहमत के स्नेह व उल्लासपूर्व वार्तालाप के अतिरिक्त कहानी में संशय, विवशता और उदासी की परतें बिखरी मिलती हैं जिसका स्पष्टीकरण पात्रों की मनःस्थितियों से होता है।

कहानी में 'काबुलीवाला' अर्थ के लिए अपने परिवार को छोड़ने पर विवश है। काबुल से वह कलकत्ता व्यापार के लिए आया है। कलकत्ता की गलियों में अपने सामान को बेचने के लिए वह घूम रहा है। ''कंधे पर मेवों की झोली लटकाए, हाथ में अंगूर की पिटारी लिए एक लंबा–सा काबुलीवाला धीमी चाल से सड़क पर जा रहा था।'' रहमत की धीमी चाल उसकी विवशता तथा निराशा की ओर संकेत करती है। क्योंकि इस परदेश में लोग उन्हें शंकित नजरों से देखते हैं।

मिनी का रहमत को देखकर घर के भीतर चले जाना तथा मिनी की माँ द्वारा बेटी को काबुलीवाले से दूरी बनाकर रखने के लिए कहना, परदेस में आए इन लोगों के प्रति शंकित दृष्टिकोण को प्रकट करता है। जबकि ये लोग परदेस में भी आत्मीयता का परिचय देते हैं। रहमत का मिनी तथा उसके पिता के हृदय में स्थान पाना परदेसी लोगों की संवेदनशीलता को दर्शाता है। रहमत के जीवन की पीड़ा मात्र यहीं नहीं है कि उसे अपने परिवार को छोड़कर कलकता व्यापार के लिए आना पड़ा है। बल्कि इस शहर के लोग उसकी पीड़ा को और अधिक बढ़ाने में सक्रिय मिलते है। एक ग्राहक जिसने रहमत से शाल खरीदा था वह उसे पैसे न देकर उससे झगड़ा करने लगता है जिसमें वह ग्राहक रहमत द्वारा मारा जाता है। इस अपराध में रहमत को आठ वर्ष की सजा होती है। इन सालों में मिनी के साथ–साथ काबुल में उसकी बेटी भी विवाह योग्य हो गई होगी यह चिन्ता रहमत की वेदना का कारण बनती है। कहानी के अन्त में कथावाचक द्वारा रहमत की भावनाओं को समझते हुए उसे कुछ पैसे देकर काबुल बेटी के पास लौटने के लिए कहना, असंवेदनशील समाज में मानवीयता को स्थापित करता है। एक तरह से देखा जाए तो आपसी भाईचारा और प्रेम भी मानवीयता की पहचान है।

अतः रहमत का कथावाचक के परिवार विशेषकर मिनी के प्रति स्नेह तथा मिनी व उसके पिता का रहमत के प्रति जो स्नेहपूर्ण व्यवहार मिलता है वह जाति, धर्म, देश से ऊपर उठकर विभिन्न धर्मों के लोगों में भी आपसी सौहार्द्र व मानवीय प्रेम को उद्घाटित करता है।

13.3.3 'दहेज' कहानी में बंगाल की पृष्ठभूमि

बंगाली ब्राह्मण परिवार में जन्मे रवींद्रनाथ टैगोर ने अपनी रचनाओं में सामाजिक बुराइयों बाल–विवाह, दहेज प्रथा तथा विधवा जीवन की समस्या को भी उजागर किया। 1890 के दशक में लिखी गई इनकी 'दहेज' नामक कहानी के केन्द्र में भी दहेज समस्या ही है। बंगाल में नारी उत्पीड़न के कारणों में दहेज सबसे प्रमुख है। जबकि राजा राम मोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना नारी उद्धार के उद्देश्य से की है जिसमें वह प्रायः सफल भी रहे। एक समय वह था जब दहेज प्रथा व नारी सम्मान के लिए बंगाल में पूरे विश्व में आवाज उठाई इसलिए वहां के लोगों को सभ्य तथा समझदार माना गया। किन्तु नारी उद्धार की बात करने वाले उसी बंगाली ग्रामीण क्षेत्रों में नारी दहेज उत्पीड़न की शिकार रही है। इस दहेज के कारण लड़की के पिता को कर्ज तक लेना पड़ता है। यदि वर पक्ष की मांग पूरी न हो तो लड़की को मंड़प में ही छोड़ना या फिर विवाह पश्चात् उसे जीवन भर अपमानित करना आम बात है। यहां तक कि लड़की को इतना प्रतााड़ित किया जाता है कि वह आत्महत्या के लिए भी विवश हो जाती है। बंगाली समाज में व्याप्त इस समस्या को सामने लाने के साथ–साथ वह युवा वर्ग द्वारा इसकी समाप्ति की कल्पना भी करते हैं।

ऐसे तो 'दहेज प्रथा' किसी–न–किसी रूप में समस्त भारत में व्याप्त मिलेगी किन्तु टैगोर ने बंगाली समाज में व्याप्त दहेज प्रथा का उल्लेख इस कहानी में किया है। इसका स्पष्टीकरण लेखक के इन शब्दों से होता है, ''वह विवाह की लाल चोली–साड़ी पहने, गहना पहने, माथे पर चंदन चुपड़े चुप बैठी है।'' विवाह के लिए तैयार बैठी निरूपमा का जो वर्णन लेखक ने किया है वह हमें बंगाली समाज का परिचय देता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि इस कहानी की पृष्ठभूमि में जो समाज है वह बंगाली है।

'दहेज' रवीन्द्रनाथ टैगोर की मर्मस्पर्शी कहानी है, जिसमें नारी जीवन की उस समस्या को चित्रित किया है जो विवाह पश्चात् उसके सुखद जीवन की कल्पना को नष्ट करती है। कहानी के आरम्भ में निरूपमा के विवाह में दहेज की रकम को पूरा करने के लिए उसके पिता रामसुंदर प्रयासरत दिखते हैं। किन्तु मांग के अनुरूप धन एकत्रित न होने के कारण वह निरूपमा के ससुर रायबहादुर के समक्ष हाथ–पैर जोड़ते हैं ताकि वह विवाह में बाधा उपस्थित न करें। रामसुंदर की विवशता रायबहादुर के कठोर हृदय को पिघला नहीं सकी वह आक्रोश में बोले, ''रुपये मिले बिना वर को मंडप में नहीं लाया जाएगा।'' रायबहादुर के इस स्वर के साथ ही पूरे घर में उदासी फैल गई किन्तु इस समय वर द्वारा पिता का विरोध कर दहेज की माँग को व्यर्थ बताकर विवाह सम्पन्न होना इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि टैगोर नव–शिक्षित भारतीय युवाओं से यह आशा करते हैं कि वह अपनी शिक्षा तथा बुद्धि से समाज की इस प्रथा को समाप्त कर सकें। कहानी में निरूपमा की शादी एक सुशिक्षित ईमानदार भावी डिप्टी मजिस्ट्रेट से हुई है जिसके अनुसार

विवाह में मोल–भाव का कोई स्थान नहीं। लड़के द्वारा दहेज का विरोध करने पर विवाह तो सम्पन्न हो गया किन्तु उसी दिन से निरूपमा और उसके पिता का सम्मान ससुराल में समाप्त हो गया। निरुपमा की सुंदरता तथा गुणों को दहेज के कारण नजरअंदाज किया। एक सर्वगुण सम्पन्न नारी दहेज के कारण ससुराल में अपमानित होती रही। यहाँ तक कि बेटी से मिलने की आशा में आए उसके पिता को भी अपमानित किया जाता।

विवाह पश्चात् बेघर होकर दहेज के पैसे देने आए पिता का निरूपमा विरोध करती है। किन्तु ससुरालवालों को जब यह ज्ञात होता है कि दहेज के पैसे देने आए रामसुंदर को निरूपमा ने वापिस लौटा दिया तो उस दिन से निरूपमा को ससुराल में और भी प्रताड़ित किया गया, वह स्वयं भी एक निराशापूर्ण जीवन जीते हुए असमयिक मृत्यु का शिकार होती है। निरूपमा की मृत्यु उसके ससुरालवालों के लालच को समाप्त नहीं करती, बल्कि उन्हें दहेज लेने का दूसरा मौका देती है। रायबहादुर की पत्नी द्वारा कहे गए ये शब्द, ''बेटा, हमने तुम्हारे लिए एक दूसरी लड़की का रिश्ता तय किया है, इसलिए छुट्टी लेकर फौरन आओ। इस बार बीस हजार का दहेज और हाथों–हाथ अदायगी'' स्पष्ट करते हैं कि दहेज प्रथा से ग्रस्त मानसिकता वाले लोगों के लिए मानवीयता तथा रिश्तों से बढ़कर धन का महत्व है।

निरूपमा का ससुराल पक्ष धन तथा सामाजिक प्रतिष्ठा को महत्व देता है। दहेज न मिलने से वह निरूपमा के प्रति निष्ठुर हो जाते हैं किन्तु उसकी मृत्यु पश्चात् उसका भव्य अंतिम संस्कार करने में कर्ज लेने से भी पीछे नहीं हटते। एक तरह से देखा जो तो यह विरोधाभास निष्ठुर समाज की धन लोलुपता तथा प्रदर्शनप्रियता को सामने लाता है। एक लड़की जिसका धन के कारण अपमान तथा शोषण किया गया उसके अंतिम संस्कार को भव्य रूप देने में कर्ज लेना समाज में धन के महत्व को रेखांकित करता है।

साथ ही यह भी स्पष्ट करता है कि ससुरालवालों द्वारा भव्य संस्कार करने के पीछे उनकी सहानुभूति या पश्चाताप नहीं, बल्कि मात्र अपने संपत्ति का प्रदर्शन करना तथा भावी अमीर बहू को आकर्षित करना है।

अतः इस कहानी के माध्यम से टैगोर ने बंगाली समाज में व्याप्त दहेज प्रथा के दुष्परिणामों को रेखांकित करने के साथ–साथ शिक्षित युवा पीड़ित से इस प्रथा के समापन की आशा की है।

13.3.4 'कंकाल' कहानी में बंगाल की पृष्ठभूमि

'कंकाल' कहानी बाल–विवाह, विधवा जीवन और नारी की प्रेम–लालसा को व्यक्त करती है। बंगाली पृष्ठभूमि की बात करें तो अधिकांशतः देखने को मिलता है कि नारी बाल–विवाह तथा विधवा जीवन की समस्याओं से अधिक ग्रस्त रही। बंगाली समाज की नारी जीवन से सम्बन्धित इन्हीं समस्याओं के कारण

बंगाली नारी का जीवन किस प्रकार विकृति स्थिति में पहुँचता है, उसी का यथार्थ चित्रण इस कहानी में मिलता है। यह कहानी मानव कंकाल द्वारा नारी की व्यथा को व्यक्त करती है। टैगोर जिस समाज और समय के है वहाँ बाल–विवाह और विधवा–जीवन की समस्या व्याप्क रूप में देखने को मिलती है। टैगोर के दादा द्वारकानाथ टैगोर हिंदू समाज सुधारक राममोहन राय के कट्टर समर्थक थे। पिता देवेन्द्रनाथ टैगोर भी ब्रह्म समाज आंदोलन के स्तंभ रहे।

ब्रह्म समाज का नारी उद्धार में विशेष योगदान रहा है। टैगोर भी हिंदू समाज की विकृतियों को दूर करने में प्रयासरत रहे। इनकी कहानियों में नारी उद्धार की भावना स्पष्ट रूप से मुखरित होती है।

कहानी के आरम्भ में ही हमें ज्ञात हो जाता है कि कथावाचक जिस 'कंकाल' से डर रहा है वह अपने जीवित समय में सुंदर युवती थी। मात्र 26 वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गई। इन 26 वर्षों में उसने बाल–विवाह तथा विधवा–जीवन को जिया। वह नारी कंकाल कथावाचक को जब अपनी कहानी बताता है तब यह सत्य उद्घाटित होता है कि उसका बाल–विवाह हुआ था, ''जब मैं इंसान थी और छोटी थी, तब एक व्यक्ति से मैं यम की तरह डरती थी। वे थे मेरे पति। मछली को कांटे में फंसा लेने पर वह जैसे फड़फड़ाती है, मैं भी वैसे ही कुछ तड़पती थी।'' निश्चित आयु में लड़की का विवाह हो तो वह अपने पति के प्रति स्नेही तथा भावात्मक सम्बन्ध का अनुभव करती है किन्तु जब एक लड़की का बाल आयु में ही विवाह कर दिया जाए तो वहीं सुखद सम्बन्ध उसके दुख का कारण बनता है। उस छोटी बच्ची के लिए पति मृत्यु से कम डरावना नहीं। अल्पायु में लडकी का विवाह दाम्पत्य सम्बन्ध को सहजता से अपनाने में बाधा उपस्थित करता है क्योंकि अल्पायु में लड़की मानसिक तथा शारीरिक रूप से विवाह के लिए तैयार नहीं होती। इसलिए यदि बाल–विवाह होगा तो वह नारी के जीवन में सुखद की अपेक्षा दुख को आमंत्रित करना होगा।

कहानी की नायिका पात्र बाल–विवाह से ग्रस्त नहीं बल्कि वह तो विधवा जीवन की समस्याओं को भी सहती है। एक तो बाल–विवाह दूसरा शादी के दो महीने बाद ही पति की मृत्यु उसके जीवन को भी दुखद बनाती है। हिंदू समाज में विधवा को अपशुकनी तथा पति की मृत्यु का दोषी माना जाता था। कहानी की नायिका भी इस बात की पुष्टि करती है, ''शादी के दो महीने पश्चात् ही मेरे पति की मृत्यु हो गई। घरवालों और नाते–रिश्तेदारों ने मेरी ओर बहुत कुछ शोक–विलास किया। मेरे ससुर ने बहुत से लक्षण मिलाकर सास से कहा– ''हथियारों में जिसे विषकन्या कहा गया है, मैं वही हूँ।'' अर्थात एक नारी के लिए विधवा जीवन इसलिए भी कष्टदायक था क्योंकि उसे कड़े नियमों के साथ–साथ समाज तथा परिवार के इन क्रूर लांछनों के साथ जीवन जीना पड़ता है।

इस कहानी में नायिका विधवा जीवन से मुक्ति हेतु ससुराल छोड़ भाई के साथ रहना आरम्भ करती है। ऐसे भी देखा जाए तो जब ससुराल पक्ष बहू की भावनाओं को न समझे तो प्रायः नारियां अपने

पिता या भाई का संरक्षण लेती है। बाल–विवाह से भी अधिक भयानक है बाल–विधवा होना, क्योंकि बाल मन विधवा जीवन के नियमों को स्वीकार नहीं कर पाता, ऐसे में उस बाल–विधवा के लिए जीवन नीरस तथा निराशापूर्ण हो जाता है इसलिए स्वाभाविक है कि ऐसे जीवन से वह छुटकारा पाना चाहेगी। कहानी की नायिका भी इन नियमों से दूर भागने के लिए प्रसन्नतापूर्व मायके भाई के पास आकर रहने लगी। मायके में चाहे लोग उससे विधवा होने के कारण दूरी बनाए रखते किन्तु वह अपनी सुंदरता के कारण प्रसन्न रहती। अपने जीवन में प्रेम की पूर्ति हेतु उसे भाई का मित्र शशि शेखर मिला। शेखर को अपनी ओर अकार्षित देख उसे आशा हुई कि वह उसे अपनाकर उसके जीवन में प्रेम के अभाव को पूरा करेगा। किन्तु कुछ समय पश्चात् जब उसे ज्ञात हुआ की शेखर तो दहेज के लिए किसी अन्य स्त्री से शादी करने जा रहा है तो स्वयं को ठगा हुआ अनुभव करती है। अपने प्रेम के प्रतिदान में शेखर से प्रेम न मिलने पर उसके चरित्र में विकार आता है और वह शेखर को ज़हर देकर हत्या कर देती है स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है।

अतः यह कहानी बाल–विवाह के दुष्परिणाम को चित्रित करती है। यदि उस नारी कंकाल का बाल–विवाह न होता तो वह बाल–विधवा भी न होती और बाल–विधवा न होती तो उसकी इच्छाएँ भी अपूर्ण न रहती अर्थात् जिस प्रेम को प्राप्त करने की उसकी लालसा थी, जिसके लिए उसने डाक्टर शेखर को चुना और फिर शेखर द्वारा छले जाने पर उसकी हत्या कर खुद आत्महत्या करना, यह सब घटनाएं भी न घटती। एक तरह से बाल–विवाह के कारण ही वह युवती मानसिक रूप से अस्वस्थ हुई। वह अपने रूप सौन्दर्य के कारण अपने ही कल्पना लोक में विचरण करने लगी। अर्थात् उसका जीवन पूर्ण रूप से इस बाल–विवाह के कारण अस्त–व्यस्त होकर अन्ततः समाप्त हो गया।

13.4 निष्कर्ष

अतः कह सकते हैं कि रवींद्रनाथ टैगोर ने अपनी कहानियों में जीवन के वास्तविक चित्र अंकित करने का प्रयास किया है। एक तरफ यहाँ इनको बंगाल के ग्रामीण प्राकृतिक सौन्दर्य ने प्रभावित किया वहीं उन क्षेत्रों की समस्याओं ने इन्हें संवेदनशील हृदय को लेखन पर विवश भी किया है इसीलिए इनकी कहानियों में जो परिवेश, वातावरण तथा समस्याएँ चित्रित हुई हैं उसकी पृष्ठभूमि में बंगाली समाज स्पष्ट उजागर होता है।

13.5 कठिन शब्द

1. अतुलनीय 2. आगमन 3. नील 4. कपास 5. घुमंतू 6. प्रदर्शनप्रियता 7. धन लोलुपता 8. अल्पायु 9. विषकन्या 10. प्रतिदान

13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र. 'पोस्टमास्टर' कहानी के केन्द्र में बंगाल की पृष्ठभूमि हैं, स्पष्ट करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र. 'काबुलीवाला' कहानी में व्याप्त बंगाली पृष्ठभूमि पर चर्चा करें।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र. 'देहज' कहानी में बंगाली समाज की कौन सी मानसिकता व्यक्त हुई है।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

प्र. 'कंकाल' कहानी में बंगाली समाज की कौन सी समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

उ) ____

____

____

____

____

____

____

____

……

M.A. Hindi **Course Code : Hin-304**
Semester-III **Lesson No. 14**

निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र

14.0 रूपरेखा
14.1 उद्देश्य
14.2 प्रस्तावना
14.3 निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र
    14.3.1 'पोस्टमास्टर' कहानी के प्रमुख चरित्र
    14.3.2 'काबुलीवाला' कहानी के प्रमुख चरित्र
    14.3.3 'दहेज' कहानी के प्रमुख पात्र
    14.3.4 'कंकाल' कहानी के प्रमुख पात्र
14.4 सारांश
14.5 कठिन शब्द
14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
14.7 पठनीय पुस्तकें/संदर्भ

14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरांत आप टैगोर द्वारा रचित 'पोस्टमास्टर', 'काबुलीवाला', 'दहेज' तथा 'कंकाल' कहानियों के प्रमुख पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से अवगत हो सकेंगें।

14.2 प्रस्तावना

कहानी की कथावस्तु कैसी भी हो वह किसी न किसी पात्र पर आधारित रहती है। रचनाकार जिस उद्देश्य से किसी कृति की रचना करता है उसे उद्देश्य तक पहुँचाने वाले साधन पात्र ही होते हैं। अतः कहानी की कथावस्तु जिन पर आधारित होती है वे उस कहानी के पात्र कहलाते हैं तथा वस्तु विन्यास में उन पात्रों को जैसे रखा गया है वह उनका चरित्र–चित्रण है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियाँ प्रायः चरित्रप्रधान हैं। टैगोर कहानी में किसी एक मुख्य चरित्र को केन्द्र में रखकर उसे किसी भावनात्मक या आध्यात्मिक संकट का सामना करते हुए दिखाते हैं इसके पीछे उनका उद्देश्य संकट से घिरे पात्र के संघर्ष को दिखाना रहता है। संघर्षशील पात्रों के माध्यम से टैगोर ने अपने समय के सामाजिक यथार्थ को भी सामने लाया है।

14.3 निर्धारित कहानियों के प्रमुख चरित्र

कथाप्रधान किसी भी कृति में प्रमुख एवं गौण चरित्रों की विशेष भूमिका रहती है। प्रमुख चरित्र कथा के केन्द्र में होते हैं तो गौण चरित्र प्रमुख पात्रों के चरित्र को उकेरने तथा कथा को आगे बढ़ाने में सहायक रहते हैं।

14.3.1 'पोस्टमास्टर' कहानी के प्रमुख चरित्र

'पोस्टमास्टर' कहानी के दो प्रमुख पात्र हैं– 'पोस्टमास्टर' और 'रतन'।

(i) पोस्टमास्टर– कहानी में पोस्टमास्टर का वास्तविक नाम नहीं दिया गया है। वह कलकत्ता का एक युवा भारतीय नागरिक है जो बंगाल के एक सामान्य गाँव उलापुर में पोस्टमास्टर के पद पर कार्यरत है। पोस्टमास्टर कलकत्ता जैसे बड़े शहर का व्यक्ति है इसलिए ग्रामीण परिवेश में वह स्वयं को असहज अनुभव करता है। इस गाँव में उनकी स्थिति वैसी ही थी जैसी जल से निकाली मछली की होती है। ग्रामीण परिवेश में आकर उनके स्वभाव में इतना अक्खड़पन आ गया है कि अल्प शिक्षित ग्रामीण लोगों से वह ज्यादा मेल–जोल नहीं रखते। पोस्टमास्टर का वेतन अधिक नहीं था इसलिए स्वयं भोजन बनाकर खाने की स्थिति उनके सामने थी किन्तु उन्हें राहत यह मिली कि गाँव की बारह–तेरह वर्षीय एक अनाथ लड़की रतन उनका काम कर देती जिससे उस अनाथ को खाना मिल जाता और पोस्टमास्टर को थोड़ी राहत। चूँकि पोस्टमास्टर का काम कम था इसलिए वह खाली समय कविता लिखने का प्रयास भी करते। अपनी कविताओं का उन्हें रतन के रूप में एक श्रोता भी मिल गया था। अपनी कविताओं में वह उलापुर प्रकृति की सुन्दरता का चित्रण करते हैं किन्तु वास्तविकता में वह इस गांव में निराशापूर्ण जीवन जी रहे हैं। लेखक ने पोस्टमास्टर की इस वास्तविकता को इन शब्दों में व्यक्त किया है–

> ''.....मगर अंतर्यामी जानते हैं कि यदि अलिफ लैला का कोई दैत्य आकर एक ही रात में इन डाली–कोंपलों के साथ इन सारे पेड़–पौधों को काटकर पक्का रास्ता तैयार कर देता तथा

> पंक्तिबद्ध बड़ी–बड़ी इमारतों के द्वारा बादलों की दृष्टि से ओझल कर देता तो इस अधमरे भले व्यक्ति के लड़के को नया जीवन मिल जाता।"

पोस्टमास्टर के तनाव और अकेलेपन ने रतन के साथ उनका एक आत्मीय सम्बन्ध विकसित किया। एक अनाथ जो उनके गृहकार्य के लिए आई थी उसके साथ वह अपने जीवन के अनुभव को सांझा करते। रतन की अशिक्षा पर भी उनका ध्यान गया परिणामस्वरूप उन्हें उसे स्वयं पढ़ाना आरम्भ किया।

उलापुर में अंतहीन मानसून के कारण पोस्टमास्टर अस्वस्थ हो गए। अस्वस्थतता के समय उन्हें स्नेही परिवार की कामना हुई। चाहे रतन ने उनकी पूरी देखरेख की परन्तु वह इस गाँव से इतना निराश हो चुके थे कि उन्होंने कलकत्ता अधिकारियों के समक्ष अपने स्थानांतरण की अर्जी दी। जब उनकी अर्जी को स्वीकार नहीं किया गया तो वह नौकरी से त्यागपत्र देकर इस गाँव तथा रतन को छोड़कर चले गए। अपने इस निर्णय से पोस्टमास्टर ने रतन की भावनाओं को ठेस पहुंचाई थी क्योंकि रतन ने पोस्टमास्टर के साथ आत्मीय संबंध स्थापित कर लिया था और वह उनके साथ ही जाने की इच्छा भी प्रकट करती है लेकिन पोस्टमास्टर रतन को अपने साथ न ले जाकर उसे कुछ पैसे देने की बात करते हैं ताकि रतन के कुछ दिनों का खर्च चल सके। वह रतन को यह विश्वास भी दिलाता है कि जो नया पोस्टमास्टर आएगा उसे रतन के लिए बोल देगा ताकि उस अनाथ बालिका को जीवन में आगे कोई परेशानी न हो। किन्तु रतन पोस्टमास्टर के इन सभी कार्य को अस्वीकार करती है। क्योंकि जो आत्मीयता पोस्टमास्टर के साथ रतन की थी उसे वह पूर्ण रूप से समझ नहीं पाए थे। एक तरह से देखा जाए तो यहां पर पोस्टमास्टर का चरित्र हमें स्वार्थी प्रदर्शित होता है क्योंकि जब उन्हें रतन की आवश्यकता थी तब तो वह उसे साथ रखते हैं लेकिन जैसे ही उनकी आवश्यकता समाप्त हुई उन्होंने रतन की भावनाओं को न समझते हुए उसे छोड़कर चले गए।

कहानी के अंत में पोस्टमास्टर का दार्शनिक रूप भी दिखाई देता है जब वह नाव से उलापुर छोड़कर जा रहे थे उस समय अपनी स्थिति पर दार्शनिक सोच के माध्यम से यह प्रकट करते हैं कि जीवन क्षणभंगुर है इसलिए किसी से अधिक मोह नहीं रखना चाहिए। यह सोचते हुए वह रतन के पास वापिस न आकर कलकत्ता लौट जाते हैं। अतः पोस्टमास्टर के चरित्र के माध्यम से लेखक ने शहरी परिवेश में रहे व्यक्ति की गाँव के प्रति उदासीनता प्रकट की है। पोस्टमास्टर संवेदनशील होकर भी अपने अकेलेपन, अलगाव और उद्‌देश्यहीनता के कारण ग्रामीण अनाथ बालिका रतन का प्रयोग करते ही दिखते हैं।

(ii) रतन – रतन 'पोस्टमास्टर' कहानी की दूसरी प्रमुख पात्र है जिसके बिना यह कथा अधूरी रह जाती।

1. **अनाथ**– उलापुर गाँव में रहने वाली बारह–तेरह साल की रतन एक अनाथ बालिका है जिसके माता–पिता की मृत्यु हो चुकी है। उसका कोई सहारा नहीं है इसलिए दो वक्त की रोटी मिल जाए

इसके लिए पोस्टमास्टर का गृहकार्य करती है।

अपने माता–पिता की आंक्षिक स्मृतियों के साथ वह अपने जीवन में जी रही थी। पोस्टमास्टर द्वारा माता–पिता के विषय में पूछने पर वह कह उठती–"बड़ी लम्बी कहानी है, बहुत–सी याद है, बहुत–सी बात याद भी नहीं।" मां की अपेक्षा पिता उसे अधिक प्रेम मिला था इसलिए पिता का दिन भर मेहनत करके शाम को घर वापिस लौटना, ऐसी ही दो–तीन शामों के चित्र उसके दिल में चित्र की भाँति अंकित थे।

2. **कर्मठ सेविका–** रतन एक निष्ठावान सेविका है। वह पोस्टमास्टर का गृहकार्य तो करती ही है किन्तु पोस्टमास्टर के बीमार हो जाने पर उसने जो निष्ठा दिखाई वह उसकी कर्मठ सेविका के रूप को प्रदर्शित करता है जिसका वर्णन कहानी में इस प्रकार हुआ है–"....बालिका रतन बालिका न रही। उसने तुरन्त माता का पद ग्रहण कर लिया। वह जाकर वैद्य को बुला लाई, ठीक वक्त पर गोली खिलाई, सारी रात सिरहाने बैठी रही, अपने हाथों पथ्य तैयार किया तथा सैंकड़ों बार पूछती रही–"भैया जी, कुछ आराम है क्या ?" रतन का कुछ ही क्षणों में बालिका से माँ का रूप ग्रहण कर पोस्टमास्टर की रात भर सेवा करना और इसी सेवा के परिणामस्वरूप पोस्टमास्टर का स्वस्थ होना रतन के कर्मठ सेविका का परिचायक है।

3. **भावुक तथा स्वाभिमानी**–रतन संवेदनशील हृदय से युक्त बालिका है। अपनी संवेदनशीलता के कारण ही वह पोस्टमास्टर से आत्मीयता स्थापित कर पाई। पोस्टमास्टर द्वारा उलापुर छोड़ने का निर्णय लेने पर रतन का उनके साथ जाने की बात करना, पोस्टमास्टर के प्रति उसकी भावुकता को स्पष्ट करता है। जब पोस्टमास्टर रतन के इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर उसे नये पोस्टमास्टर के संरक्षण में रहने की बात करता है तथा जाते समय उसे कुछ पैसे देने लगता है तो पोस्टमास्टर की यह औपचारिकता रतन के हृदय को और भी ठेस पहुँचाती है। उस समय रतन की भावुकता तथा स्वाभिमान को लेखक ने इस प्रकार व्यक्त किया है–"भैया जी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मेरे प्रति किसी को कोई फिक्र करने की जरूरत नहीं।" और यह कहते–कहते सुबकते हुए वह फौरन वहां से भाग गयी। यह प्रतिक्रिया उसकी भावुकता तथा स्वाभिमान दोनों को एक साथ व्यक्त करती है। रतन पोस्टमास्टर का संसर्ग चाहती थी किन्तु अपेक्षा के प्रतिकूल पोस्टमास्टर का औपचारिक व्यवहार रतन की संवेदना तथा आत्मसम्मान को क्षति पहुँचाता है।

अशिक्षित–रतन अनाथ होने के साथ–साथ एक अशिक्षित बालिका भी है किन्तु उसके भीतर शिक्षा के प्रति रुचि अवश्य थी। इसलिए जब पोस्टमास्टर उसे पढ़ाने की बात करता है तो रतन खुश हो जाती है। इतना ही नहीं कुछ दिनों में वह संयुक्त अक्षर का ज्ञान भी प्राप्त कर लेती है। वह सदैव प्रतीक्षा में बैठी रहती कि कब पोस्टमास्टर उसे बुलाए।

अतः रतन के माध्यम से लेखक ने ऐसी अनाथ बालिका का चित्रण किया है जो स्नेह व अपनत्व के अभाव में जी रही थी। इसलिए पोस्टमास्टर की सहानुभूति यहां उसके भीतर आशाओं को जन्म देती है।

उलापुर गांव छोड़ते समय उनका औपचारिक व्यवहार रतन के भीतर निराशा का संचार भी करता है। किन्तु रतन इस निराशा व पीड़ा में भी अपने स्वाभिमान का परिचय देती है।

14.3.2 'काबुलीवाला' कहानी के प्रमुख चरित्र

'काबुलीवाला' कहानी के केन्द्रीय पात्र रहमत और मिनी हैं। मिनी के पिता (कथावाचक) तथा माँ इस कहानी के सहायक पात्र हैं।

(i) रहमत (काबुलीवाला)– रहमत इस कहानी का केन्द्रीय पात्र है जो अपने गुणों के कारण पाठकों की संवेदना को छूता है।

1. **सामान्य विक्रेता**–रहमत काबुल से आया घरेलू सामान बेचने वाला छोटा विक्रेता है। कहानी में इसे 'मिनी' द्वारा 'काबुलीवाला' सम्बोधन मिला है। रहमत का प्रथम परिचय देते हुए लेखक कहता है, ''कँधे पर मेवों की झोली लटकाए, हाथ में अँगूर की पिटारी लिए एक लंबा–सा काबुलीवाला धीमी चाल से सड़क पर जा रहा था।'' रहमत का यह परिचय पाठक को उसकी ओर आकर्षित करता है। वही मिनी को उसकी झोली देखकर डर लगता है कि कहीं वह उसे पकड़कर न ले जाए।

2. **विवश पिता**–वह अपनी बेटी से बहुत प्रेम करता है लेकिन आर्थिक अभाव तथा पारिवारिक दायित्वों से विवश वह अपना वतन काबुल तथा परिवार छोड़ कोलकत्ता व्यापार के लिए आया है। स्थितिवश बेटी के प्रति स्नेह को हृदय में छिपाने को विवश रहमान, कथावाचक की छोटी–सी बच्ची पर अपना सारा प्रेम प्रकट कर अपनी बेटी के अभाव की पूर्ति करने का प्रयास करता है। वह मिनी में अपनी बेटी की छवि देखता है। इसलिए वह प्रतिदिन मिनी को किशमिश–बादाम देता तथा खूब हँसी–मजाक भी करता। रहमत के इस स्नेह ने मिनी के हृदय पर विशेष प्रभाव डाला। कहानी के अन्त में मिनी को शादी के जोड़े में देखकर रहमत की भावुकता तथा विवशता एक साथ दिखाई देती है जिसका चित्रण लेखक ने इस प्रकार किया है, ''मिनी के चले जाने पर एक गहरी साँस भरकर रहमत ज़मीन पर बैठ गया। उसकी समझ में यह बात एकाएक स्पष्ट हो उठी कि उसकी बेटी भी इतने दिनों में बड़ी हो गई होगी। इन आठ वर्षों में उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने ? वह उसकी याद में खो गया।'' रहमत का एकाएक अपनी बेटी के विषय में सोचकर चिंता करना एक पिता की विवशता को व्यक्त करता है।

3. **भावुक**–रहमत एक भावुक व्यक्ति के रूप में भी हमारे सामने आता है। वह एक विक्रेता है फिर भी मिनी को प्रतिदिन मेवा देना और उसके बदले पैसे न लेना उसकी भावुकता को दर्शाता है। जब मिनी के पिता उसे मेवे के पैसे देते तो वह भावुकता से कह उठता, ''आपकी बहुत मेहरबानी है बाबू साहब! पैसे रहने दीजिए।'' ..... ''आपकी जैसी मेरी भी एक बेटी है। मैं उसकी याद कर–करके आपकी बच्ची के

लिए थोड़ा–सा मेवा ले आया करता हूँ। मैं यहाँ सौदा बेचने नहीं आता।'' जबकि रहमत गरीब है फिर भी कथावाचक से मेवे के पैसे न लेना उसके भावुक हृदय की पहचान करवाता है। इतना ही नहीं अपनी बेटी की स्मृति के रूप में एक कागज़ पर उसके नन्हें हाथ की छाप को बरसों से अपनी छाती से लगाकर कलकत्ते में सामान बेचने आना भी उसकी भावुकता का परिचय देता है।

4. **परिस्थिति का शिकार**–रहमत एक नेकदिल इंसान है। उसके जीवन की आर्थिक अभावग्रस्तता उसे घर, परिवार से दूर व्यापार के लिए विवश करती है किन्तु उसकी समस्या यहीं खत्म नहीं होती। परदेश में स्वार्थी इंसान जो उससे सामान तो लेता है लेकिन उसके पैसे नहीं देता। दोनों में झगड़ा होता है तो वह व्यक्ति रहमत के हाथों मारा जाता है। वह परिस्थितिवश ऐसी समस्या में घिर जाता है कि उसे कलकत्ता में ही आठ साल जेल की सजा काटनी पड़ती है। इन आठ सालों में जहां मिनी बच्ची से विवाह योग्य हो गई थी वहीं वह अपनी बेटी को लेकर चिंतित होता है कि आखिर इन आठ सालों में उसके साथ क्या हुआ होगा।

अतः रहमत एक ऐसे विवश विक्रेता की करुण जीवन को स्पष्ट करता है जो अपने पारिवारिक दायित्वों के लिए अपने ही घर, परिवार, वतन से दूर परदेस में अपनत्व को स्थापित करते हैं। परदेश में व्यापार के लिए आए ऐसे व्यक्ति किस प्रकार अपने पारिवारिक सदस्यों की स्मृतियों को अपने हृदय में छिपा लेने को विवश होते हैं तथा परदेश में आते तो वह इस उद्देश्य से हैं कि वह अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करेंगे किन्तु स्वार्थी लोगों के कारण वह और भी विकट परिस्थितियों में फंस कर अपने परिवार से और दूर हो जाते हैं।

(ii) मिनी–मिनी एक सुविधा सम्पन्न बंगाली परिवार की छोटी–सी लड़की है जो स्वभाव से अति चंचल तथा बातूनी है। काबुलीवाले से पहली मुलाकात में तो वह डर जाती है किन्तु कुछ ही दिनों में वह उससे बहुत स्नेह रखने लगती है जिसका कारण काबुलीवाले का प्रेम है। दोनों में गहरी मित्रता स्थापित हो जाती है किन्तु काबुलीवाले को जब एक ग्राहक को मारने के अपराध में आठ साल जेल की सजा होती है तब दोनों के मध्य एक अन्तराल आता है जिससे मिनी उसे पहचान नहीं पाती। मिनी उन समस्त बच्चों का प्रतिनिधित्व करती है जिनको उनके अभिभावकों का समय नहीं मिलता। ऐसे में वह स्नेही व्यक्ति का संसर्ग पाते ही उससे एक स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। मिनी के चंचल तथा बातूनी स्वभाव को भी काबुलीवाले में वह मित्र दिखता है जिससे वह अपने हृदय की प्रत्येक जिज्ञासा व्यक्त कर सकती थी। स्वाभाविक है कि एक बच्चा जिस भी व्यक्ति से स्नेह तथा समय मिलेगा वह उससे एक आत्मीय सम्बन्ध अवश्य बना लेगा जैसा मिनी ने काबुलीवाले से बनाया है।

3. **मिनी के पिता (कथावाचक)**–'काबुलीवाला' कहानी में कथावाचक ही मिनी के पिता हैं जो संभ्रान्त बंगाली परिवार से हैं। इस कहानी की पूर्ण कथा कथावाचक के दृष्टिकोण से ही व्यक्त हुई

है। वह अपनी जिज्ञासाओं को उनके सामने प्रकट करती है। काबुलीवाले को प्रथम बार देखने पर मिनी जब डर जाती है तो उसके मन से इस डर को निकालने के लिए वह काबुलीवाले को घर के अन्दर बुलाता है। कुछ दिनों में ही जब मिनी और काबुलीवाले में स्नेहपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो वह उन दोनों के सस्नेह को देख प्रसन्न होता है क्योंकि काबुलीवाले के साथ जितना भी समय मिनी रहती वह समय प्रसन्नता भरा रहता जिसका उल्लेख वह इस प्रकार करते हैं, ''काबुलीवाला प्रतिदिन आता रहा। उसने किशमिश बादाम दे–देकर मिनी के छोटे से हृदय पर काफी अधिकार जमा लिया था। दोनों में बहुत–बहुत बातें होतीं और वे खूब हँसते। रहमत काबुली को देखते ही मेरी लड़की हंसती हुई पूछती, ''काबुलीवाले, ओ काबुलीवाले, तुम्हारी झोली में क्या है ?'' कथावाचक मिनी और काबुलीवाले के स्नेह को साकारात्मक दृष्टि से देखता है। कथावाचक भावुक व्यक्ति है। जेल से छूटने पर जब काबुलीवाला मिनी से मिलने आता है तो मिनी के विवाह में व्यस्त होने के कारण पहले तो वह रहमत को मिलने से मना कर देता है किन्तु रहमत की उदासी को देखकर कथावाचक के हृदय में भी उदासी का भाव जागृत होता है। इतना ही नहीं रहमत के हाथ में एक कागज का मैला–कुचैला मुड़ा हुआ टुकड़ा, जिस पर नन्हें हाथों का छापा था उसे देखकर और भी भावुक हो उठता है उसे यह एहसास हो जाता है कि रहमत अपनी नन्हीं–सी बेटी के हाथों के छापे को अपनी छाती से लगाकर बरसों से इस शहर में सामान बेचने आता है। उस कागज़ के टुकड़े में एक पिता की विवशता कथावाचक की आँखों में आंसू ले आती है और वह भावुकतावश सब भूलकर मिनी को विवाह के जोड़े में ही रहमत को कुछ पैसे देकर उनका यह कहना कि, ''रहमत! तुम अपनी बेटी के पास देश चले जाओ।'' उनकी रहमत के प्रति पूर्ण संवेदना को व्यक्त करता है।

4. **मिनी की माँ**–मिनी की माँ का उल्लेख इस कहानी में मात्र एक पंक्ति में आया है किन्तु उस एक पंक्ति से ही उनकी पूर्ण मानसिकता का अनुमान लगाया जा सकता है। वह एक सुविधा–सम्पन्न बंगाली परिवार की स्त्री है जो अपने परिवार में अजनबिओं का आना पसंद नहीं करती। अपनी बेटी के प्रति उसका स्नेह व चिन्ता भी प्रकट हुई है। काबुलीवाले के साथ मिनी का घुल–मिल जाना उन्हें स्वीकार नहीं है इसलिए एक बार जब कथावाचक मिनी की गोद बादाम–किशमिश से भरी देखकर काबुलीवाले को अठन्नी देकर घर से बाहर जाता है तो वापिस लौटने पर देखता है कि मिनी की माँ बेटी को डांट रही है कि उसने काबुलीवाले से अठन्नी क्यों ली। मिनी की माँ काबुलीवाले को संदेह से देखती है। मिनी की मां को हम उन सम्भ्रांत परिवार की स्त्रियों में देख सकते हैं जो अपने बच्चों को निम्न लोगों से मिलने नहीं देती तथा निम्न वर्ग के लोगों को संदेह की दृष्टि से भी देखती है। एक तरह से मिनी की मां का यह संदेह बेटी के प्रति उनकी चिंता को प्रकट करने के साथ–साथ निम्न वर्ग के प्रति उनकी शंकालु दृष्टिकोण को भी सामने लाता है।

अतः 'काबुलीवाला' कहानी के पात्रों में हम मुख्य रूप से स्नेह, भावुकता तथा सहानुभूति के भावों को देख सकते हैं।

14.3.3 'दहेज' कहानी के प्रमुख चरित्र

इस कहानी के मुख्य पात्र हैं– निरुपमा, रामसुंदर और रायबहादुर हैं। रायबहादुर की पत्नी तथा बेटा इस कहानी के गौण पात्र हैं किन्तु गौण होने पर भी इन दोनों की विशेष भूमिका रही है।

1. **निरुपमा**–निरुपमा इस कहानी में दहेज उत्पीड़न की समस्या को झेलने वाली स्त्री पात्र है।

(i) रूपवती–निरुपमा रूप–सौंदर्य से सम्पन्न स्त्री है। ससुराल में आस–पड़ोस की औरतें अक्सर उसके मुख को देखकर कहती है, ''वाह, कैसा रूप है; बहू का मुख देखकर आँखें जैसे शीतल हो जाती हैं।''

(ii) विवश नारी–निरुपमा के पिता इतने अमीर नहीं थे कि ससुराल पक्ष द्वारा दहेज स्वरूप माँगे गए पैसे बिना किसी विघ्न के अदा करते। इसलिए जब रायबहादुर विवाह वाले दिन पैसे न मिलने के कारण मंडप में हलचल मचा देते हैं तब पिता को उनके सामने हाथ–पैर जोड़ते देख वह दुखी तो होती है किन्तु उस समय विरोध नहीं करती जो उसकी विवशता को व्यक्त करता है। यह विवशता निरुपमा की ही नहीं बल्कि प्रायः भारतीय नारी की रही है जो अपनों से बड़ों की बात में बोलना अपने संस्कारों के विरुद्ध समझती हैं। इतना ही नहीं वह ससुराल में पिता का अपमान होते हुए भी चुप ही रहती है। निरुपमा का इस तरह विरोध न कर चुप रहना उसके चरित्र की लाचारी को भी व्यक्त करता है।

(iii) प्रताड़ित नारी–निरुपमा सर्वगुण सम्पन्न होने के उपरान्त भी ससुराल में प्रताड़ित की जाती है। इस प्रताड़ना का कारण दहेज स्वरूप उसके पिता से माँगे गए पैसे की माँग को पूरा न कर पाना है। पति द्वारा विवाह के समय दहेज का विरोध करने पर उसके सास–ससुराल चुप–चाप विवाह सम्पन्न कर उसे घर ले जाने को विवश तो हो जाते हैं किन्तु विवाह उपरान्त बेटे के दूर शहर में नौकरी के लिए चले जाने पर वह निरुपमा को सदैव दोष देते रहते। सास द्वारा न तो उसके रूप की सरहाना की जाती न ही उसके द्वारा किए किसी कार्य की। इतना ही नहीं निरुपमा को मायके तक नहीं जाने दिया जाता है।

(iv) साहसी तथा आत्म सम्मान से परिपूर्ण–निरुपमा कहानी के आरम्भ में चाहे लाचार व विवश नारी के रूप में दिखती है जो चुप–चाप हर परिस्थिति का सामना कर रही है। किन्तु पिता द्वारा अपना घर बेचकर उसके ससुराल वालों को पैसे देने का वह विरोध अवश्य करती है। पिता जब उसे कहता है कि यदि मैं यह पैसे नहीं दे पाया तो मेरा और तुम्हारा दोनों का अपमान होगा, उस समय निरुपमा के मुख से निकले शब्द उसके साहसी तथा आत्मसम्मानी रूप को सामने लाता है। उसका पिता से कहना है, ''रुपया देना ही अपमान है, तुम्हारी कन्या का क्या कोई सम्मान नहीं। क्या मैं केवल रुपए की थैली भर हूँ, जब तक रुपए हैं; तब तक

मेरा दाम है। नहीं, बाबूजी ये रुपए देकर तुम मेरा अपमान मत करो। इसके अलावा मेरे पति तो यह रुपये नहीं चाहते। निरुपमा का यह आत्मसम्मानी रूप रामसुंदर को पैसे वापिस ले जाने पर विवश कर देता है।

अतः निरुपमा इस कहानी की केन्द्रीय पात्र है जो दहेज उत्पीड़न की त्रासदी को जी रही है लेकिन उसका साहसी रूप दहेज का विरोध भी करता है।

2. **रामसुंदर**– रामसुंदर भी दहेज कहानी का प्रमुख पात्र है जिसके माध्यम से दहेज के कारण एक विवश पिता की स्थिति को वर्णित किया गया है। रामसुंदर निरुपमा के पिता हैं। वह अपनी बेटी से बहुत प्रेम करते हैं। बेटी की शादी के लिए एक अच्छे परिवार की तलाश में जब उन्हें आखिरकार रामबहादुर के इकलौते बेटे का रिश्ता मिलता है तो वह बिना कुछ सोचे–समझे उनकी हर माँग को स्वीकार कर लेते हैं। किन्तु दहेज में माँगे गए पैसे बहुत कुछ गिरवी रखकर भी पूरे नहीं होते जिससे लड़के के पिता ने विवाह मंडप में ही पैसे न मिलने पर विवाह में विघ्न डाल दिया। उस समय रामसुंदर का रायबहादुर के पांव पकड़कर यह आग्रह करना, ''शुभ कार्य पूरा हो जाने दीजिए, आपके रुपये मैं जरुर अदा कर दूँगा।'' एक पिता की विवशता को स्पष्ट करता है।

रामसुंदर की विवशता यहीं समाप्त नहीं होती बल्कि बेटी के विवाह पश्चात् भी वह एक विवश पिता की भूमिका में दिखता है क्योंकि माँग अनुरुप पैसे न दे पाने के परिणामस्वरूप रामसुंदर जब भी बेटी के ससुराल उससे मिलने जाता तो वहां उसका अपमान ही होता। इतना ही नहीं बहुत बार तो उसे बेटी से मिलने की नहीं दिया जाता है। बेटी के ससुराल में अपने अपमान तथा बेटी का निरादर होता देख वह अपने घर को गिरवी रखने के लिए विवश होता है। पिता द्वारा घर गिरवी रखना निरुपमा को स्वीकार न हुआ इसलिए वह पिता को पैसे सहित वापिस चले जाने को कहती है। रामसुंदर बेटी के तर्कों से हार, बिना बेटी को साथ लिए पैसे सहित वापिस जाने पर विवश होता है।

अतः रामसुंदर इस कहानी में एक ऐसे विवश पिता का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो दहेज जैसी समस्या के कारण अपने तथा बेटी के अपमान को सहने हेतु विवश है।

3. **रायबहादुर**–'दहेज' कहानी में रायबहादुर दहेज का समर्थन करने वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। इनकी पैतृक जमीन–जायदाद तो कम ही रह गई थी, किन्तु अभी भी खानदानी परिवारों में स्थान रखे थे। बेटे के विवाह में दस हज़ार की रकम और अनेक दान–सामग्री की माँग रखना उनकी लालची प्रवृत्ति को सामने लाता है। अपनी इस धनलोलुपता के कारण वह इतने संवेदनहीन हो जाते हैं कि बेटे का विवाह मंडप में ही रुकवा देते हैं जिससे बेटी का पिता इनके पैरों में पड़कर विवाह सम्पन्न करने के लिए गिड़गिड़ाता है। बेटी के पिता की विवशता भी इनके स्वार्थपन पर कोई असर नहीं डालती। इतना ही नहीं जब इनका बेटा स्वयं दहेज का समर्थन न कर विवाह सम्पन्न करने की बात करता है तो यह बेटे को ही

मर्यादाहीन कहकर सबके सामने उसे दोषी ठहराने का प्रयास करता है। बेटे के दहेज विरोधी होने पर विवाह तो सम्पन्न हो जाता है किन्तु रायबहादुर का लालच समाप्त नहीं होता। वह विवाह के पश्चात् भी दहेज न मिलने के लिए बहू निरुपमा तथा उसके पिता रामसुंदर का अपमान करते हैं। यहां तक कि निरुपमा को पिता से मिलने नहीं दिया जाता। और न ही पिता दहेज के पैसे दिए बिना बेटी को अपने घर ले जा सकते थे। एक पिता का विवशता से भरा मुख भी उनके स्वार्थी हृदय को पिघला नहीं सका।

अतः रायबहादुर हमारे समाज के ऐसे लालची, धनलोलुप वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिनके लिए पैसे से बढ़कर कुछ भी नहीं। ऐसे लालची लोगों के कारण ही दहेज जैसी विषम समस्या समाज में आज भी विद्यमान है।

4. **रायबहादुर की पत्नी (निरुपमा की सास)**–'दहेज' कहानी में रायबहादुर की पत्नी उन नारियों का प्रतिनिधित्व कर रही है जो स्वयं नारी होकर भी नारी का शोषण करती हैं। इस कहानी में रायबहादुर की पत्नी अर्थात् निरुपमा की सास का उल्लेख मात्र तीन बार हुआ है लेकिन निरुपमा को ससुराल में जो प्रताड़ना सहनी पड़ रही थी। उसमें सास–ससुर बराबर के दोषी हैं। बल्कि सास तो और भी अधिक दोषी है क्योंकि बात–बात पर निरुपमा को ताने देना तथा उसकी अस्वस्थता को ढोंग कहकर नजरांदाज करना, जिसके परिणामस्वरूप निरुपमा की मृत्यु हो जाती है। जिसका उल्लेख लेखक ने इस प्रकार किया है, ''यदि भोजन के प्रति बहू की किसी प्रकार की लापरवाही देखती, तो सास कह उठतीं, ''नवाब के घर की बेटी है न। गरीब के घर का अन्न इनके मुँह में रुचता नहीं।'' ...''रोग जब गंभीर होता गया, तब सास बोलीं, ''ये सब इसके नखरे हैं।'' इस प्रकार कह सकते हैं कि निरूपमा को मरने पर विवश करने में सास का भरपूर हाथ रहा है।

अतः रायबहादुर की पत्नी पारम्परिक सास की छवि में दिखती है जो अपनी बहू में सदैव दोष निकालती तथा दहेज के लिए प्रताड़ित करती है। इतना ही नहीं बहू की मृत्यु हो जाने पर वह बेटे की दूसरी शादी करवाने की सोचती है वह भी उस लड़की के साथ यहां से हाथों–हाथों उन्हें दहेज की मोटी रकम मिलने वाली होती है। इस प्रकार रायबहादुर की पत्नी स्वयं नारी होकर भी बहू के प्रति संवेदनशील न होकर, उसके जीवन को नारकीय बनाने में कोई चूक नहीं करती।

5. **निरुपमा का पति**–'दहेज' कहानी में निरुपमा का पति दहेज विरोधी शिक्षित पात्र के रूप में सामने आया है। उसके अनुसार विवाह कोई खरीद–फरोख्त का मोल–भाव नहीं है। इसलिए वह पिता का विरोध करते हुए निरुपमा से विवाह सम्पन्न करता है। निरुपमा के लिए उसके हृदय में प्रेम है। डिप्टी मजिस्ट्रेट की नौकरी के लिए उसे दूसरे शहर जाना पड़ता है किन्तु वहाँ सारा प्रबन्ध करने के पश्चात वह घरवालों को पत्र द्वारा निरुपमा को उसके पास भेजने का आदेश भी देता है। अतः निरुपमा के पति के

माध्यम से लेखक ने दहेज समस्या का समाधान व्यक्त किया है यदि युवा वर्ग दहेज विरोधी हो तो इस समस्या को समाप्त किया जा सकता है।

14.3.4 'कंकाल– कहानी के प्रमुख पात्र

'कंकाल' कहानी के भीतर एक कहानी है जिसकी प्रमुख पात्र एक बाल विधवा युवती हैं। इस पात्र का नाम नहीं दिया गया है क्योंकि एक मृत युवती के कंकाल की आत्मकथा द्वारा वह सामने आती है। अपने जीवित जीवन की कहानी बताते हुए यह कंकाल अपने चरित्र को भी पाठक के समक्ष उभारता है।

1. **अति सुंदर**– यह कंकाल एक अति सुंदर युवती का है जिसे अपने रूप सौन्दर्य पर बहुत मान था। उसे सजना–संवरना भी अच्छा लगता है। अपनी इस विशेषता को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है, ''शाम होते ही मैं चुपके से उठकर बसन्ती रंग की साड़ी पहनती, अच्छी प्रकार जूड़ा बांधती, उस पर बेला की पुष्पों की माला लपेटती और फिर एक दर्पण लेकर बगीचे में जा बैठती।'' इतना ही नहीं आत्महत्या से पूर्व भी वह दुल्हन की भांति तैयार होती है।

2. **बाल तथा अनमेल विवाह**– इस नारी पात्र का बाल विवाह हुआ था। अपने से अधिक उम्र के व्यक्ति के साथ विवाह होने के उपरान्त इसके भीतर पति के लिए प्रेम नहीं बल्कि डर उत्पन्न हो गया था। जिसका स्पष्टीकरण वह स्वयं करती है, ''जब मैं इंसान थी और छोटी थी, तब एक व्यक्ति से मैं यम की तरह डरती थी। वे थे मेरे पति। मछली को कांटे में फंसा लेने पर वह जैसे फड़फड़ाती है, मैं भी वैसे ही कुछ तड़पती थी।'' इससे स्पष्ट होता है कि यह युवती बाल विवाह की समस्या से ग्रस्त रही है। अपनी तुलना कांटे में फंसी मछली से करना, उसके जीवन की भावनात्मक पीड़ा को व्यक्त करता है।

3. **बाल विधवा**– जब एक लड़की का छोटी उम्र में ही उससे अधिक उम्र के व्यक्ति से विवाह किया जाए तो ऐसे में उस युवती का बाल विधवा होना स्वाभाविक ही है। इस कहानी की युवती को भी इसी कारण बाल विधवा जीवन को जीना पड़ता है क्योंकि विवाह के दो महीने पश्चात् ही उसके पति की मृत्यु हो जाती है। ऐसी अवस्था में जब एक युवती में यौवन पूरे परिपक्व रूप में उपस्थित हो और उसे यौवन के सुखद क्षणों की अपेक्षा उन समस्त सुखों का त्याग करना पड़े जिसकी आकांक्षी प्रत्येक विवाहित युवती रहती है। साथ ही समाजिक बंधन उसे विधवा जीवन के नियमों में बांधते हैं दूसरा ससुराल में उसे विष–कन्या का सम्बोधन मिलना उसके जीवन की त्रासद स्थिति को व्यक्त करते हैं। पति के बिना एक स्त्री न तो ससुराल में सम्मान पाती है न समाज में, उसे मात्र लोगों के उलाहनों का सामना करना पड़ता है। ऐसे में पिता का घर ही उस युवती के लिए आखिरी सहारा बचता है। इस कहानी की पात्र भी अन्ततः भाई के संरक्षण में ही रहती है।

4. **प्रेम का आकांक्षी**—यह युवती अपने जीवन में स्नेह न मिलने के कारण जीवन पर्यान्त प्रेम की आकांक्षी रहती है। पति से तो यह भावात्मक सम्बन्ध बना न सकी। विधवा होने के पश्चात जब भाई के संरक्षण में रहती है तो वहां भाई के मित्र शशि शेखर जो डॉक्टर है के प्रति आकर्षित होती है। चाहे शेखर से उसे प्रेम प्रस्ताव न मिला हो किन्तु वह स्वयं ही शेखर के प्रेम की कल्पना में जीना आरम्भ कर देती है। यहां तक कि वह स्वयं के सौन्दर्य को दर्पण में देखकर शेखर के मन का अनुमान लगाती रहती कि मन में मुझे देखकर क्या भाव आया होगा। वह मेरे सौन्दर्य पर मुग्ध होगा कि नहीं। इस तरह शेखर प्रेम की कल्पना करना उसके प्रेम की लालसा को उद्घाटित करता है। वह शेखर के प्रेम की इतनी आकांक्षी थी कि जब उसे ज्ञात होता है कि वह किसी अन्य से विवाह करने जा रहा है तो वह उसे जहर देकर मार देती है और स्वयं भी आत्महत्या कर लेती है। इस प्रकार जीवनपर्यन्त पर प्रेम की आकांक्षा में जीती है और उसकी मृत्यु भी इसी आकांक्षा के साथ हो जाती है।

अतः इस कहानी के माध्यम से लेखक ने एक बाल विधवा युवती के जीवन को रेखांकित किया है जिसे पति की मृत्यु के बाद ससुराल में विष—कन्या कहकर निकाल दिया जाता है। अपने जीवन की वेदना को भूल जब वह अन्य पुरुष से प्रेम करती है तो वहां भी निराशा ही हाथ आती है ऐसे में उसके चरित्र में नकारात्मकता देखने को मिलती है जिसके कारण वह उस पुरुष को भी जहर देकर मार देती है और स्वयं भी आत्महत्या करती है। मृत्यु पश्चात् भी उसका अपने कंकाल की खोज करना एक तरह से उसकी अतृप्त प्रेम भावना को रेखांकित करता है।

14.4 सारांश

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियों के पात्र प्रायः मानवीय संवेदना को व्यक्त करते हैं। पोस्टमास्टर और काबुलीवाला कहानियों के पात्रों के माध्यम से यहां मानवीय संवेदना व्यक्त हुई है वहीं दहेज तथा कंकाल कहानियों के पात्र के माध्यम से संवेदनशीलता के साथ—साथ मानवीय संवेदनशून्यता को भी दर्शाया गया है। प्रायः इनकी कहानियां एक वाचक द्वारा कही जाती है, किन्तु उसके पात्र कहानी में सक्रिय और स्वाभाविक भूमिकाएँ निभाते हैं। पात्रों के जीवन का संघर्ष कहानी को चरम सीमा तक ले जाता है जिससे पाठक का हृदय इन पात्रों के प्रति संवेदनशील हो जाता है।

14.5 कठिन शब्द

1. वस्तु—विन्यास 2. असहज 3. अक्खड़पन 4. अंतर्यामी 5. पंक्तिबद्ध 6. अंतहीन 7. स्थानांतरण 8. मेवा 9. त्रासदी 10 निरादर।

14.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1. 'पोस्टमास्टर' के पुरुष पात्र पोस्टमास्टर का चरित्र–चित्रण करें।

उ) ______________________________

प्र.2. 'पोस्टमास्टर' कहानी की 'रतन' के चरित्र पर प्रकाश डालें।

उ) ______________________________

प्र.3. 'काबुलीवाला' कहानी के प्रमुख पात्रों पर प्रकाश डालिए।

उ) ______________________________

प्र.4. 'दहेज' कहानी नारी पात्र 'निरुपमा' का चरित्र–चित्रण करें।

उ)

प्र.5. 'कंकाल' कहानी की प्रमुख नारी पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

उ)

……